BAJY- 102

जन्मकुण्डली निर्माण



ज्योतिष विभाग - मानविकी विद्याशाखा



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय



तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

ISBN NO. – 978-93-84632-78-6

पाठ्यक्रम समिति

प्रोफे0 एच0पी0 शुक्ल
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य , संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
अकादमिक परामर्शदाता , ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

प्रोफे0 देवीप्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
श्री लालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय संस्कृतविद्यापीठ,नईदिल्ली

प्रोफे0 वासुदेव शर्मा
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर, जयपुर

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ नन्दन कुमार तिवारी
अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , **ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , **ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**2**	**1, 2, 3, 4**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी **अकादमिक एसोसिएट, ज्योतिष विभाग** **उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी**	**3**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , **ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**4**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , **ज्योतिष विभाग** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	**5**	**1, 2, 3**

प्रकाशन वर्ष - 2014 **प्रकाशक -** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी **मुद्रक: - उत्तरायण प्रकाशन , हल्द्वानी , नैनीताल**

अनुक्रम

बी0ए0 ज्योतिष

प्रथम वर्ष

द्वितीय पत्र

खण्ड – 1

ग्रहस्पष्टीकरण

इकाई – 1 इष्टकाल

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 इष्टकाल परिचय

1.3.1 इष्टकाल की परिभाषा एवं स्वरूप

1.3.2 इष्टकाल साधन

1.3.3 इष्टकाल का सैद्धान्तिक विवेचन

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई भारतीय ज्योतिष शास्त्र के फलित स्कन्ध के कुण्डली निर्माण प्रक्रिया से सम्बिन्धत '**इष्टकाल**' से है। इष्टकाल का ज्ञान परमावश्यक है। वस्तुत: सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक के काल को **इष्टकाल** कहते है। कुण्डली निर्माण में यह प्रथम सोपान है।

जब हम किसी जातक की कुण्डली का निर्माण करते हैं तो सर्वप्रथम इष्टकाल का गणित करते है। जैसा कि इसके परिभाषा से स्पष्ट हैं कि जातक के सूर्योदय से लेकर जन्मकाल तक के समय को इष्टकाल कहते है। इष्ट का अर्थ अभिष्ट होता हैं तथा काल का अर्थ समय होता है, अर्थात् जिस काल (समय) ज्ञान की अपेक्षा हैं, उसका साधन इष्टकाल साधन कहलाता है । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपको इष्टकाल सम्बन्धित समस्त विषयों का ज्ञान आसानी पूर्वक हो जायेगा

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत **इष्टकाल** का बोध कराने से है। अधोलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है -

1. **इष्टकाल** क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. **इष्टकाल** का संपूर्ण मान कितना होता है? इसका बोध करेंगे।
3. **इष्टकाल** से आप क्या समझते है? इसे बता सकेंगे।
4. **इष्टकाल** क्या है ? इसे समझा सकेंगे।
5. **इष्टकाल** के महत्व को समझ सकते है।
6. **इष्टकाल** ज्ञान से कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में इसके आगे की गतिविधियों का ज्ञान करने में समर्थ हो सकेंगे।

1.3 इष्टकाल परिचय

शुद्ध लग्न निकालने के लिए शुद्ध इष्ट काल की आवश्यकता है। इष्टकाल शुद्ध होगा तभी शुद्ध कुण्डली का निर्माण हो सकता है। पूर्व में विदित हैं कि सम्प्रति जो घड़ी का समय देखकर जन्म समय लिख लिया जाता हैं उसी समय के अनुसार लग्न साधन की जाए तो अशुद्ध हो जायेगी। यदि अपना समय स्टेन्डर्ड समय में हैं तो उसे स्व स्थान का समय बनाने के लिए देशान्तर संस्कार और बेलान्तर संस्कार करना पड़ता हैं जिसके विषयमें पहले के इकाईयों में समझाया जा चुका है। इसके उपरान्त समय शुद्ध होने पर लग्न साधन करना चाहिए। धूप घड़ी का जो समय हैं वही शुद्ध स्थानिक समय कहलाता है।

सूर्योदय के उपरान्त जन्म समय तक या किसी प्रश्न के पूछने के समय तक जितने घड़ी पल आदि व्यतीत हो चुके हैं उस समय को इष्टकाल कहते हैं। अर्थात् इष्ट समय का काल घड़ी पल विपल के अनुसार जो व्यतीत हो चुका हैं वही इष्टकाल है।

घड़ियों का समय घंटा मिनट में मध्य रात्रि से गणना किया जाता हैं परन्तु इष्टकाल सूर्योदय के उपरान्त घड़ी पल में गिना जाता है। जैसे सूर्योदय होने पर यदि घंटा मिनट में समय लिखा हो तो उसमें से सूर्योदय का समय घटा देना चाहिए । दोपहर के उपरान्त मध्यरात्रि तक जितने घंटा समय और हुआ हो उसे भी उसी घंटा मिनट में जोड़ देना चाहिए । यदि आधी रात के उपरान्त भी इष्टकाल हो तो उस समय को भी उसी में जोड़ देना चाहिए । तत्पश्चात् जितने घंटा मिन्ट का सब समय हुआ हो उसके घड़ी पल बना लेना चाहिए तो इष्टकाल बन जाएगा । घड़ी के समय को रेलवे समय के अनुसार अर्थात् 12 बजे के बाद 13, 14 बजे आदि बना लेने से सुविधा होती है ।

इष्टकाल यदि मध्याह्न 12 बजे का हैं तो दिनमान को आधा करने से इष्टकाल प्राप्त हो जाएगा ।

यदि सूर्यास्त का जन्म हैं तो दिनमान ही जो पंचांग में उद्धृत रहता है इष्टकाल हो जाएगा ।

यदि ठीक अर्द्धरात्रि का जन्म हैं तो रात्रिमान को आधा कर उसमें दिनमान जोड़ देने से इष्टकाल प्राप्त हो जाता है ।

इसी प्रकार बिना सूर्योदय या अस्त का समय जाने इष्टकाल को दिनमान या रात्रिमान पर से निकाल सकते है ।

इष्टकाल क्या है । जिस समय का लग्न हमें जानना हो अथवा जिस समय की ज्योतिषीय जानकारी हमें अपेक्षित हो उसी समय को इष्टकाल कहते हैं । इष्टकाल TIME OF SPOCH OR TIME IN IQUATION होता है । संक्षेप में इसे इष्ट भी कहते है ।

यहीं इष्ट समय समस्त जातक शाखा की रीढ़ है । इसकी अशुद्धि या विसंगति समस्त प्रयत्न को निष्फल कर देती है । अत: बुद्धिमान कालज्ञ ज्योतिषी सदैव इष्टकाल साधन व शोधन में विशेष रूप से सावधान रहते है ।

प्राचीन समय से ही यह इष्टकाल घड़ी पलों में व्यक्त किया जाता रहा हैं, परन्तु सुविधानुसार इसे घंटे मिनटों में भी प्रकट कर सकते है ।

हमारा दैनन्दिनी क्रिया कलाप सूर्योदय के साथ शुरू होता है । सूर्य से ही जीवन सम्भव है । अत: मुख्य रूप से इष्टकाल की गणना सूर्योदय काल से की जाती है । जन्म पत्रों में सूर्योदयादिष्टकाल या सूर्योदयादिष्टम कह कर प्रकट किया जाता है ।

जैसे - दिनमान $29^{घ}/28^{प}$ = 60 – 29 – 28 = 30-32 रात्रिमान

दिनमान ÷ 2 = 14 – 44 दिनार्द्ध मध्याह्न , रात्रिमान ÷ 2 = 15 – 16 = रात्र्यर्ध

माना कि 10 ॥ बजे दिन का जन्म है । 12 – 10 ॥ = 1 ॥ घंटा मध्याह्न के प्रथम जन्म हैं 1 ॥ घंटा = $3^{घ} / 45^{प}$

$14^{घ} / 44^{प} - 3 / 45 = 10 / 59$ शेष इष्टकाल, $3^{घ} / 45^{प}$ यह दिनार्द्ध से घटा देने पर इष्ट प्राप्त हो जाएगा। यहाँ दिनार्द्ध में घटाने पर 10 / 59 प्राप्त हुआ।

माना कि 2 ॥ बजे मध्याह्न के पश्चात का जन्म है तो दिनार्द्ध में 2 ॥ घंटा के घड़ी पल बनाकर जोड़ दे क्योंकि यह समय मध्याह्न के पश्चात् का है। 2 ॥ घंटा के दिनार्द्ध 14 / 24 + 6 / 15 = 20/ 59, घटी पल 6 / 15 हुए इसे जोड़ा तो इष्ट $20^{घ}/ 59^{प}$ हुआ।

दिनमान 29 / 28 + रात्र्यर्ध 15 / 16 = इष्ट 44 / 44

यदि अर्द्ध रात्रि को 12 बजे जन्म हुआ हैं तो दिन में रात्रि अर्द्ध जोड़ा तो इष्ट $44^{घ} / 44^{प}$ हुआ। आगे इसी प्रकार से विभिन्न समयानुसार इष्टकाल साधन के कई प्रकारों का वर्णन किया गया है, जिसके एकाग्रचित होकर अध्ययन करने से समस्त इष्टकाल सम्बन्धित जानकारीयॉ सुविधापूर्वक अनायास ही ज्योतिष के पाठकों को प्राप्त हो जाएगी।

जन्म पत्री का पूरा गणित इष्टकाल पर चलता है। अत: पहले इष्टकाल बनाने के लिये पॉच प्रकार के नियम है -

1. सूर्योदय से लेकर १२ बजे दिन के भीतर का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्योदय काल का अन्तर का शेष और उसका ढाई गुना करके जो घटी आदि मान प्राप्त होता है, उसे इष्टकाल कहते है। उदाहरण के लिये किसी का जन्म प्रात:काल ९:३० पर हुआ है उसके लिये सूर्योदय का समय मान लीजिये ६:१६ पर हुआ है तो ९:३०- ६:१६=३:१४ हुआ इसका ढाई गुना किया तो १७/३० हुआ.१७/३० × 5/2=8 घटी और ५ पल का इष्टकाल निकला
2. १२ बजे दिन से लेकर सूर्यास्त के अन्दर का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्यास्त काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान से घटाने पर इष्टकाल का ज्ञान होगा।
3. सूर्यास्त से लेकर १२ बजे रात तक का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्यास्त काल का अन्तर करने के बाद शेष को ढाई गुना करने से इष्टकाल मिलता है।
4. रात को बारह बजे के बाद और सूर्योदय से पहले का जन्म हो तो जन्म समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष का ढाई गुना करने पर इष्टकाल मिलता है।
5. सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक जितना घंटा मिनट का काल हो उसे ढाई गुना करने पर इष्टकाल होगा।

अन्य नियम –

1. 12 बजे दिन से लेकर 11:59 रात्रि के पूर्व का जन्म हो तो जन्म समय में 12 जोड़कर उसमें सूर्योदय का मान घटा दे तथा शेष संख्या को ढाई गुणा करने से इष्टकाल प्राप्त हो जायेगा।
2. 12 बजे रात्रि से लेकर सूर्योदय के पूर्व का जन्म हो तो जन्म समय में 24 जोड़कर उसमें सूर्योदय घटाकर उसका ढाई गुणा करने से इष्टकाल प्राप्त हो जाता है। आचार्य गणेश दैवज्ञ ने

ग्रहलाघव में इष्टकाल के संबंध में त्रिप्रश्नाधिकार में निरूपित किया है –

यदि तनुदिननाथावेकराशौ तदंशा।

न्तरहत उदय: स्यात् खाग्निहृत त्विष्टकाले ।।

इनत उदय उनश्चेत् स शोध्यो द्युरात्रान्।

निशि तु सरभार्कात् स्यात् तनूरिष्टकाले ।।

अर्थ - एक राशि गत लग्न सूर्य की स्थिति में लग्न रवि के अन्तरांश उसी राशि के उदय मान से गुणा कर 30 से भाग देने से इष्टकाल होता है।

विशेष – यदि एक राशि का लग्न सूर्य में सूर्य के अंशों से लग्न के अंश कम हों तो ऐसी स्थिति में आगत इष्टकाल को 60 में घटाना चाहिये (रात्रि शेष को लग्न स्थिति)

उपपत्ति –

एक राशि गत लग्न सूर्य अन्तरांश सम्बन्ध से इष्टकाल = $\frac{\text{स्वोदयमान} \times \text{अन्तरांश}}{\mathbf{30}}$ = इष्टकाल।

भोग्यतोऽल्पेष्टकालात् खरामाहतात्।

स्वोदयाप्तांश भास्कर: स्यात् तनु: ।।

अर्क भोग्यस्तनोर्भुक्त कालान्वितो।

युक्तमध्योदयोऽभीष्ट कालो भवेत् ।।

लग्न साधन के समय इष्टघटी पल में भोग्यकाल घटाते समय यदि इष्टकाल घटी पल से ही अधिक भोग्यकाल हो तो विशेष रूप से यह कथन है कि ऐसी स्थिति में इष्टघटी पल को ही 30 से गुणा कर अपनी उदय राशि पल से भाग देने से लब्ध फल को सूर्य स्पष्ट में जोड़ देने से लग्न मान स्पष्ट हो जाता है।

तथा सूर्य के भोग्य पल में लग्न के भुक्त पल जोड़कर उसमें सूर्य और लग्न के मध्य की राशियों का उदय पल जोड़ देने से इष्टकाल का मान स्पष्ट हो जाता है।

विशेष - सूर्य के भोग्य पल और लग्न के भुक्त पल तथा सूर्य लग्न के बीच की राशियों के उदय के योग तुल्य इष्टकाल होता है।

बोध प्रश्न : -

1. इष्टकाल कहते है –

   क.सूर्योदय से जन्म समय तक के काल को

   ख. सूर्योदय काल को

   ग. जन्म समय से लेकर सूर्योदय तक के काल को

   घ. दिन को

2. मध्याह्न का अर्थ होता है –
   क. मध्य
   ख. प्रात:
   ग. दोपहर
   घ. सायंकाल
3. खराम शब्द से तात्पर्य है –
   क. 30
   ख. 40
   ग. 50
   घ. 60
4. निम्नलिखित में दिननाथ किसे कहते है।
   क.काल को
   ख. चन्द्रमा को
   ग. सूर्य को
   घ. कोई नहीं
5. देशान्तर होता है -
   क. रेखादेश से अपने देश का अन्तर

ख. देश का अन्तर

ग. देश

घ. सूर्योदय सूर्यास्त का अन्तर

इष्टकाल के अन्य भेद –

यह बात आपको ज्ञात हो चुकी है कि किसी निश्चित समय से जन्म समय या प्रश्न समय की समयात्मक दूरी ही इष्टकाल है। यदि सूर्योदय से इष्टकाल निकालेंगे तो सूर्योदयादिष्ट काल कहलायेगा। इसी प्रकार किसी अन्य बिन्दु या उपकरण से समयात्मक अन्तर निकालें तो उसी बिन्दु पर उस इष्टकाल का नामकरण कर दिया जाता है। वार प्रवृत्ति से इष्टकाल जानें तो वारप्रवृत्ति इष्टकाल होगा। यदि मध्यान्ह काल से इष्टकाल निकालें तो मध्याह्नेष्काल होगा। विशेष स्थानों पर इन इष्ट कालों का भी प्रयोग किया जाता है। मध्याह्नेष्टकाल के विषय में वक्तव्य है कि दशम भाव साधन सन्दर्भ में जो नतकाल साधन बताया जायेगा वह नतेष्टकाल वास्तव में सूर्य की मध्यान्ह स्थिति पर निर्भर करता है। नत काल से तात्पर्य यही है कि स्थानीय मध्यान्हकाल से इष्ट समय की

घंटा मिनटात्मक या घटी पलात्मक दूरी क्या है । अत: नतेष्ट काल मध्यान्हेष्ट काल ही है । इससे मध्य लग्न या दशम भाव का साधन किया जाता है । इसका विचार आगे यथाप्रसंग किया जायेगा ।

साम्पातिक काल – साम्पातिक काल से लग्नादि साधन करने की पद्धति विशेष सरल होती है । इसमें गणित का विशेष जंजाल नही है । तथा साधित लग्न भी प्रामाणिक होता है । वर्तमान में यह विधि लोकप्रिय होती जा रही है ।

वसन्त सम्पात बिन्दु - क्रान्तिवृत्त व विषुवद् वृत्त की काट पर स्थित है जहॉं दोनों वृत्त एक दूसरे को काटते है वह बिन्दु वसन्त सम्पात कहलाता है । यह सायन मेष राशि का प्रारम्भ बिन्दु है तथा यहीं से सूर्य उत्तर गोल में प्रवेश करता है ।

यह वसन्त सम्पात बिन्दु हमारी पृथ्वी के भ्रमण के कारण भूमि का चक्कर लगाता रहता है । इसे अपनी एक परिक्रमा पूरी करने में 23 घंटे 56 मिनट व 4 सेकेण्ड लगते है । यह समयावधि साम्पातिक दिन कहलाती है ।

साम्पातिक दिन हमारे मध्यम सौर दिन 24 घण्टे से लगभग 3 मिनट 56 सेकेण्ड कम है, तथा यह सदैव समान रहता है । इसकी अवधि में कभी अन्तर नहीं पड़ता ।

यही वसन्त सम्पात बिन्दु जब हमारे स्थानीय याम्योत्तर वृत्त पर आता है तो 0.0 घंटा मिनट साम्पातिक काल होता है । इसके बाद का साम्पातिक काल भी सरलता से जोड़ घटा करने से ही ज्ञात हो जाता है । वेधशालाओं में साम्पातिक काल को प्रदर्शित करने वाली घड़िया लगी रहती हैं जिनसे किसी भी समय का साम्पातिक काल सरलता से जाना जा सकता है । इस काल की गणना सदैव मध्याह्न से होती है । प्रतिदिन का साम्पातिक काल जानने के लिये अपने यहॉं के पिछले दिन के साम्पातिक काल में 3 मिनट 56 सेकेण्ड जोड़ने से अभीष्ट दिन का दोपहर का साम्पातिक काल ज्ञात होता जाता है ।

लाघवार्थ इसकी सारणियॉं आजकल सरलता से उपलब्ध है । कुछ प्रसिद्ध पंचांगों में व लहरी के अंग्रेजी पंचांग में इसकी प्रतिदिन की स्थिति दी होती है । साम्पातिक काल से लग्नादि जानने के लिये पाठकों को अपने पास लाहरी की लग्न सारिणी का अवलोकन करना चाहिये ।

साम्पातिक इष्टकाल साधन –

यद्यपि आजकल परम्परागत पंचांगों में भी दोपहर 12 बजे या रात्रि 12 बजे का साम्पातिक काल दिया जाने लगा है, लेकिन लाहरी के पंचांग में दिया गया साम्पातिक काल सर्वाधिक शुद्ध होता है । साम्पातिक काल में अधिकतम अशुद्धि या भिन्नता एक सेकेण्ड तक ही चल सकती है । शुद्ध साम्पातिक इष्टकाल का साधन इस प्रकार करना चाहिये –

माना कि 14.09.2013 दिन प्रात: 9:30 बजे दिल्ली का साम्पातिक काल जानना है । लहरी की लग्न सारिणी से 14 सितम्बर का साम्पातिक काल लिया । उसमें 2013 का साम्पातिक काल संस्कार भी जोड़ा –

घ0 मि0 से0

15 सितम्बर का सा0 का0 -		11 31 07
2013 का सा0 का0	+	02 50
		11 33 57

यह साम्पातिक काल सर्वत्र रूप से दोपहर 12 बजे का रहा। इसमें दिल्ली का सा0 का संस्कार + 0.03 सेकेण्ड जोड़ने से 11.34.00 घण्टे सा0 काल दिल्ली में स्थानीय मध्यान्ह अर्थात् दोपहर 12:00 बजे LMT का हो गया। ध्यातव्य है कि साम्पातिक काल सदैव स्थानीय समय में ही अभिव्यक्त किया जाता है। 12:00 बजे के साम्पातिक काल से प्रात:काल के स्थानीय इष्ट समय को घटाने व दोपहर बाद का इष्ट समय होने से योग करने पर स्थानीय अभीष्ट समय का साम्पातिक काल प्राप्त हो जायेगा। दिल्ली के लिये स्थानीय समय बनाने हेतु स्टैण्डर्ड समय में 21 मिनट 8 सेकेण्ड घटाई जाती है। इसे ज्ञात करने की विधि यहीं आगे बताई जा रही है। अत: प्रात: 9:30 IST को दिल्ली का LMT या स्थानीय समय बनाने के लिये उक्त संस्कार किया।

9.30.0 A.M भारतीय स्टै0 टा0 IST
- 0.21.08
9.08.52 A.M स्थानीय समय या LMT

हमारे पास दिल्ली का 12 बजे का साम्पातिक काल उपलब्ध है तथा 9.08.52 बजे का जानना है तो 12 बजे से अभीष्ट समय जितना पीछे है, उतना समय हम 12 बजे के साम्पातिक काल में से घटा देंगे। एतदर्थ (12.0.0 घंटे) - (9.8.52 घंटे) = 2.51.8 घण्टे का अन्तर प्राप्त हुआ। इस अन्तर में एक संस्कार प्रति घण्टा 10 सेकेण्ड की दर से करना आवश्यक है। इसकी सारिणी भी लाहरी जी के ग्रन्थ में उपलब्ध है। अत: 2.51.8 घंटे + 28 सेकेण्ड = 2.51.36 घण्टे अन्तर को दोपहर बजे के साम्पातिक काल में से घटा देने पर अभीष्ट समय का साम्पातिक काल ज्ञात हो जायेगा।

12 बजे का पूर्व प्राप्त सा0का0	-	11.34;00
ऋण अन्तर	- -	2.51.36
		8.42.24 अभीष्ट सा0 काल

यही हमारा 14.09.2013 का प्रात: 9:30 A.M IST का दिल्ली में साम्पातिक काल है। इसे अंग्रेजी में कहते है। दोपहर 12 बजे के बाद तथा अर्धरात्रि 12 बजे से पूर्व का साम्पातिक काल निकालना हो तो पूर्व प्रकार से साधित दोपहर के सा0का0 में जन्म समय के घण्टों को यथावत् संस्कार करके जोड़ने पर अभीष्टकालीन साम्पातिक काल ज्ञात हो जायेगा। साम्पातिक काल ज्ञात करने के लिये यह क्रम याद रखें –

1. सारिणी से अभीष्ट तिथि का सा0का0 लेकर व सन् का सा0का0 संस्कार जोड़ लें।
2. इसमें अक्षांश रेखांश सारिणी से लेकर स्थानीय संस्कार को ऋण या धन करें। तब अभीष्ट दिन का दोपहर 12 बजे का साम्पातिक काल उपलब्ध हो जायेगा।
3. जन्म समय को स्टैण्डर्ड अन्तर ऋण या धन करके स्थानीय समय में बदल लें।
4. स्थानीय जन्म समय यदि दोपहर बाद का है तथा आधी रात से पहले का है तो जन्म समय में लाहरी की सारिणी से संस्कार लेकर जोड़ लें तथा दोपहर 12 बजे के साम्पातिक काल में इसे संयुक्त कर दें। यही आपका साम्पातिकेष्ट काल है।
5. यदि जन्म दोपहर से पहले का है तो स्थानीय जन्म समय को 12 घण्टे में से घटाकर पूर्ववत् 10 सै0 प्रति घं0 की दर से संस्कार करके 12 बजे के साम्पातिक काल में से घटा दें तो शेष इष्टकालिक साम्पातिक काल होगा।

आशय यह है कि दोपहर बारह बजे का साम्पातिक काल हमें ज्ञात होगा, तब यह देखना है कि हमारा अभीष्ट समय 12 बजे से कितना पहले या बाद में है। इसी अन्तर को प्रति घंटा 10 सै. के हिसाब से बढ़ा लें। यही संस्कृत अन्तर 12 बजे से पूर्व जन्म हो तो दोपहर के पूर्वोपलब्ध साम्पातिक काल में से घटा लें। यदि 12 बजे के बाद का जन्म हो तो दोपहर के साम्पातिक काल में इसे जोड़े। इसी साम्पातिक काल से हमें लग्न जानना चाहिये।

1.4 सारांश

जन्मकुण्डली निर्माण हेतु सर्वप्रथम इष्टकाल का साधन किया जाता है। इष्टकाल हम किसी व्यक्ति का उसके जन्म समय के आधार पर ज्ञात करते है। इसके आधार पर कुण्डली निर्माण के समस्त गणितादि कार्य निर्भर होते है। अत: इस इकाई में पाठकों के ज्ञानार्थ इष्टकाल का साधन एवं उससे जुड़ी समस्त विषयों का समावेश किया गया है। आशा है पाठक गण इकाई का अध्ययन कर लाभानिवत होंगे तथा इष्टकाल को सम्यक् रूप से समझ सकेंगे।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

इष्टकाल – अभीष्ट समय। सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक के काल को इष्टकाल कहते है।
ग्रहगति – ग्रहों की गति।
लग्न – लगतीति लग्नम्। क्रान्ति वृत्त क्षितिज वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉं स्पर्श करता है उसका नाम लग्न है।
पूर्वोपलब्ध – पूर्व में जो उपलब्ध हो

स्थानीय – किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. क
2. ग
3. क
4. ग
5. क

1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान – मीठालाल ओझा
2. ज्योतिष रहस्य – चौखम्भा प्रकाशन
3. ताजिकनीलकण्ठी - पं सीताराम झा - चौखम्भा विद्याभवन
4. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
5. जन्मपत्रव्यवस्था – चौखम्भा विद्या प्रकाशन

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
2. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र - रंजन पब्लिकेशन्स
3. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
4. ज्योतिष रहस्य
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा विद्याभवन

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. इष्टकाल को परिभाषित करते हुए सोदाहरण व्याख्या करें।
2. कल्पित इष्टकाल का साधन करते हुए विस्तार से उसका वर्णन कीजिए।

इकाई – 2 पंक्तिस्थग्रह - ग्रहगति

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के द्वितीय इकाई **पंक्तिस्थ ग्रह – ग्रहगति** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। पंक्ति का अर्थ होता है – **पंचांगस्थ ग्रह**। जन्मकुण्डली निर्माण में जब आप ग्रहों का आनयन करते है, तो इष्टकाल के पश्चात् ग्रहानयन में पंक्तिस्थ ग्रह का ज्ञान करते है।
पंचांग में दिये गये ग्रह को पंक्तिग्रह कहते है। सभी ग्रहों की अपनी – अपनी गति होती है। ग्रहों की गतियों का आनयन जिस प्रकरण में हम करते है, उसे ग्रहगति के नाम से जाना जाता है।
इससे पूर्व की इकाईयों में आपने इष्टकाल का ज्ञान कर लिया है, यहाँ आप इस इकाई में पंक्तिस्थ ग्रह एवं ग्रहगति का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत **पंक्तिस्थ ग्रह** का बोध कराने से है। अधोलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है -

1. **पंक्तिस्थ ग्रह** क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. **पंक्तिस्थ ग्रह** का संपूर्ण मान कितना होता है? इसका बोध करेंगे।
3. **पंक्तिस्थ ग्रह** से आप क्या समझते है? इसे बता सकेंगे।
4. **पंक्तिस्थ ग्रह** क्या है ? इसे समझा सकेंगे।
5. **पंक्तिस्थ ग्रह** के महत्व को समझ सकते है।
6. **पंक्तिस्थग्रह** ज्ञान से कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में इसके आगे की गतिविधयों का ज्ञान करने में समर्थ हो सकेंगे।

2.3 पंक्तिस्थ ग्रह का परिचय

पंक्ति का अर्थ है – पंचांगस्थ ग्रह। चालन = इष्टकाल और पंक्ति के भीतर के समय का गति के अनुसार साधन किया हुआ ग्रह। चालन ± होता है। पंक्ति के आगे का ग्रह साधन करना है तो धन और पहले के साधन करना है तो चालन ऋण होता है परन्तु वक्री ग्रह में इसके विरूद्ध होता है। पंचांग में प्रत्येक पक्ष में दो बार मिश्रकाल या प्रात:काल का जब इष्ट शून्य होता है ग्रह स्पष्ट दिया रहता है और उसके नीचे उस ग्रह की गति भी दी रहती है। किसी – किसी पंचांग में दैनिक स्पष्ट भी दिया रहता है। पंचांग में दिये हुये ग्रह पर से इष्टकाल का ग्रह स्पष्ट करनें को ग्रह साधन कहते है।

पंचांग में दिये हुये ग्रह के प्रस्तार (ग्रहस्पष्ट) को **पंक्ति** कहते है। पंचांग में दिये हुये ग्रह स्पष्ट का समय और इष्टकाल (जिस समय का ग्रह साधन करना है) के बीच के के समय का जो अन्तर है, उतने अन्तर का ग्रह स्पष्ट करने को चालन करते है। यह चालन + या – होता है। पंचांग की पंक्ति के पहले का इष्टकाल हो तो चालन – और पंक्ति के ग्रह स्पष्ट में से घटाने और पंक्ति के बाद का इष्टकाल है तो आगे जोड़ने से इष्टकाल का ग्रह बन जायेगा। परन्तु वक्री ग्रह में इसके विरूद्ध क्रिया करनी पड़ती है।

ग्रह की गति पंचांग में 60 घड़ी की दी रहती है अर्थात् 60 घटी 24 घण्टे में कितना वह ग्रह चलता है, वही उसकी गति कला विकला में दी रहती है। इस प्रकार पंचांग में दी हुई गति से, इष्ट और पंक्ति के बीच के समय के अन्तर को गति निकालनी होती है। और चालन धन ऋण जैसा हो पंक्तिस्थ ग्रह में जोड़ या घटाकर इष्टकाल का ग्रहस्पष्ट बना लेते है। जो ग्रह वक्री होता है उसका चालन उल्टा करना पड़ता है। अर्थात् + के स्थान में ऋण और ऋण के स्थान पर + करना पड़ता है। राहु और केतु सदा वक्री रहते है, इस कारण वक्री ग्रह के अनुसार इन का भी चालन होगा अर्थात् पंक्तिस्थ ग्रह के आगे अपना इष्ट है तो घटाना और पंक्ति के पहले इष्ट है तो चालन जोड़ना पड़ेगा।

ग्रह की गति कला विकला में 60 घटी की दी रहती है उस पर से त्रैराशिक से चालने के समय गति निकालनी पड़ती है। जैसे 60 घटी में इतने कला विकला गति है तो इष्ट काल में कितनी होगी ?जो उत्तर आयेगा वह चालन ± होगा। उसे पंक्तिस्थ ग्रह स्पष्ट में ± करने से इष्टकाल का ग्रह स्पष्ट हो जायेगा। गति साधन करने के लिये जो त्रैराशिक करना पड़ेगा उसके लिये कुछ नियम स्मरण रहना चाहिये तो गणित में सरलता होगी –

1. 60 घटी में जितनी कला गति 1 घटी में उतनी ही विकला होगी।
2. 60 घटी में जितनी विकला गति 1 घटी में उतनी ही प्रतिविकला होगी।
3. 60 घटी में जितनी कला विकला गति 1 घटी में उतनी ही विकला प्रतिविकला होगी।
4. 60 पल 1 घटी में में जितनी विकला 1 पल में उतनी ही प्रतिविकला होगी।
5. 60 घटी में जितनी और प्रति विकला गति 1 घटी में उतनी ही तत्प्रति विकला होगी।

चालन बनाने के उदाहरण –

माना कि दिनांक 1.10.2011 ई0 नरसिंहपुर में आश्विन कृष्ण सप्तमी

सम्वत् 2068 शके 1933 गुरूवार इष्ट $39^{घ}$।।$22^{पल}$।।$12^{विपल}$ पर जन्म है।

जबलपुर का विक्रम विजय पंचांग देखने पर जिसमें इष्टकाल के समीप का पंक्तिस्थ ग्रह स्पष्ट इस प्रकार से है –

पंक्ति = आश्विन कृष्ण 8 शुक्रवार का मिश्रमान $45^{घ}$।। $59^{पल}$

ग्रह	रा0 अं0 क0 वि	गति
सूर्य	5। 15 । 27। 16	59।10
चन्द्र	2। 20 । 14। 45	21।17
मंगल	5। 16। 25 । 2	39।6
बुध	5। 124 । 23। 48	12।47
गुरू	3। 1 । 10। 16	7।42
शुक्र	5। 7 । 33। 32	74।24
शनि	1। 20 । 20। 55	0।32
राहु	4। 12।58 ।6	3।11
केतु	10।12।58।6	3।11

वार – गुरूवार = पंचम वार (रविवार से गणना पर)

शुक्रवार = छठवाँ वार

पंक्ति का = वार घटी पल विपल

6 । 45। 59 । 0

इष्ट का 5। 39 । 22। 12

अन्तर 1 ।6 । 36 । 48

चालन ऋण

पंक्ति का दिन शुक्रवार है। रविवार आदि वार से गणना करने पर छठा वार हुआ इस कारण वार में 6 और मिश्रमान 45।59 होने से घटी पल में 45।59 पंक्ति में लिखा। अपना इष्टवार गुरूवार है। रविवार से गणना किया तो पॉचवॉ हुआ इस कारण इष्ट का वार 5 रखा और इष्ट घटी 39।22।12 होने से इष्ट घटी पल में 39।22।12 लिखा और दोनों का अन्तर निकालने पर जो आया उसे चालन कहेंगे।

पंक्ति आगे है इष्ट पीछे है। इष्ट के आगे पंक्ति होने से चालन ऋण हुआ। अर्थात् पंक्ति में से चालन की गति घटानी पड़ेगी तब ग्रह स्पष्ट होगा। पंचांग में इष्ट के समीप जो पंक्ति हो उसे उपयोग करना जिससे अधिक गणित न करना पड़े। ग्रीनवीच से जो ऐफेमरी प्रकाशित होती है वह बहुत शुद्ध रहती है उसमें सायन ग्रह स्पष्ट मध्याह्न कालीन ग्रीनवीच का दिया रहता है। उसका उपयोग करने से ग्रह साधन शुद्ध निकलता है और अधिक परेशानी नही होती। उसका उपयोग करने के लिये अपने स्थानिक समय को ग्रीनवीच के समय में परिवर्तन कर लेना चाहिये।

अपने समय को ग्रीनवीच के समय में परिवर्तन करना –

अपना स्थानिक समय यदि धूप घड़ी के अनुसार हो तो स्थानिक समय को पहले मध्यम स्थानिक समय बना लेना चाहिये। उसके लिये स्थानिक समय में विरूद्ध वेलान्तर संस्कार करना चाहिये, अर्थात् जहॉ बेलान्तर + बताया है वहॉं (–) और (-) के स्थान में + करे।

जैसे - दिनांक 1.10.2011 ई0 का अपना स्पष्ट इष्टकाल मान कि 39। 22।12 है। इसे घण्टा मिनट बनाने पर 15।44।53 हुआ। 1 अक्टूबर का बेलान्तर + 10 मिनट है तो यहॉं 10 ऋण करेंगे। 10 मिनट घटाया तो 15।34।53 शेष बचा। इसमें उस दिन का सूर्योदय 6।5।51 जोड़ा तो 21।40।40 जन्म समय हुआ। अर्थात् 12 बजे दोपहर के उपरान्त 9।40।40 रात का जन्म हुआ। यह स्थानिक समय हुआ। इसका ग्रीनविच का समय बनाना है। नरसिंहपुर का

देशान्तर 79^0 – 11 है। अर्थात् 5-16-44 पूर्व। जब ग्रीनविच में दोपहर होता तो नरसिंहपुर में सन्ध्या के 5।16।44 बजते है। जब नरसिंहपुर में 9।40।44 बजे था तो ग्रीनविच में क्या बजा होगा निकालना है। यहॉं स्थानिक समय से देशान्तर से घटाना होगा क्योंकि यहॉं से ग्रीनविच पश्चिम में है।

स्थानिक मध्यम समय - 9।40।44

देशान्तर - - 5।16।44

4।24।0

अर्थात् जन्म के स्थानिक मध्यम समय 9।40।44 पर ग्रीनविच में पहर के उपरान्त 4।24।0 बजा होगा। ग्रीनविच में तारीख 1.10.2011 को दोपहर के जो ग्रह स्पष्ट दिया उससे $4^{घ}$।$24^{मि}$ की गति निकाल कर दोपहर के उपरान्त का होने के कारण जोड़ देने से इष्टकाल का अपने स्थान का ग्रह स्पष्ट हो जायेगा।

परन्तु ऐफेमरी से साधन किये हुये ग्रह सायन होते है। उसमें से अयनांश घटा दने से निरयन स्पष्ट ग्रह बन जायेंगे।

इस उदाहरण में इष्ट काल घड़ी पल में था इस कारण इतना प्रपंच करना पड़ा। यदि प्रगट हैं कि जन्म 10।54 बजे रात का है। इस पर से ग्रीनविच का समय बनाना है। यह नया समय 1 घण्टा बढ़ा हुआ है तो जन्म का पुराना समय 9।54 बजे रात हुआ। यह स्टैण्डर्ड समय में है जहॉं का अक्षांश 82^0 -30 है 5।30 संध्या यहॉं पर होती है उस समय ग्रीनविच में दोपहर होता है। इष्ट काल इसके आगे है।

इष्ट - 9 ।54

स्टैण्डर्ड समय - - 5।30

4।24

यह ग्रीनविच का समय दोपहर के बाद का 4।24 बजे हुआ।

आजकल उज्जैन से भी ऐफेमरी निकलने लगी है जिसमें स्टैण्डर्ड समय के अनुसार प्रत्येक दिन के

दोपहर के स्पष्ट ग्रह दिये रहते है। इस कारण उज्जैन की ऐफेमरी से ग्रह स्पष्ट करना सरल है। आजकल प्रचलित पंचांगों में जो ग्रह स्पष्ट दिये रहते है। वे निरयन ग्रह रहते है। उन प्रत्येक में अयनांश जोड़ देने से सायन ग्रह स्पष्ट बन जाता है।

बोध प्रश्न –

1. पंक्तिस्थ का अर्थ है –
   क. पंक्तिग्रह ख. पंचांग में स्थित ग्रह ग. अभीष्ट ग्रह घ. कोई नही
2. चालन होता है।
   क. धन ख. ऋण ग. धन एवं ऋण दोनों घ. न धन न ऋण
3. इष्टकाल और पंक्ति के भीतर के समय का गति के अनुसार साधन किया हुआ ग्रह होता है
   क. पंक्ति ख. चालन ग. धन चालन घ. ऋण चालन
4. 60 घटी बराबर होता है।
   क. 12 घण्टे ख. 10 घण्टे ग. 24 घण्टे घ. 20 घण्टे

ग्रह स्पष्ट

चालन का संस्कार पूर्व में किया जा चुका है। चालन 1।6।36।48 ऋण है।

सूर्य गति 59।10, चालन - $1^{\text{दि.}}$।$6^{\text{घ}}$।$36^{\text{प}}$।$48^{\text{वि}}$ है।

1 दिन (60 घटी) में गति 59।10।0 है

1 ’’ = 0।59।10

इसीलिये 6 घटी = 5।55।0

1 पल = 0।0।59।10

इसीलिये 36 पल = 0।35।30।0

1 पल = 0।0।0।59।10

इसीलिये 48 पल = 0।0।47।20

1 दिन की गति 59।10।0।0

6 घटी = 5।55।0।0

36 पल = 0।35।30।0

48 विपल = 0।0।47।20

योग = 65।41।7।20

इसीलिये 1।6।36।48 चालन की गति 65। 41 = 1^0।5।41 हुई।

गति के कला विकला केवल ग्रहण किया शेष छोड़ दिया।

चालन में 48 विपल है। आधे से ज्यादा है। इस कारण यदि 36 पल को 37 पल मानकर गणित किया तो भी कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा।

पल में - 0।0।59 ।10 गति

इसीलिये = 37 = 0-36-29-0

यहॉ केवल प्रति विकला में ही अन्तर पड़ा है। इस कारण 36 । 48 को 37 पल मान लेने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

1 दिन की गति – 59 ।10।0।0

6 घटी = 5।55।0।0

37 पल = 0।36।29।10

योग = 65।41।29।10

= 65 – 41 = 1^0-5-41 गति हुई। यहॉ केवल प्रति विकला में ही अन्तर पड़ा है। इस कारण 36 । 48 को 37 पल मान लेने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस कारण चालन 1।6।37 मान लेंगे।

अब गोमूत्रिका रीति से गणित करने पर –

1- 6 – 37

× 59 -10

10 ।। 60 ।। 370

59 ।। 354 ।। 333

185

59 ।। 364 ।। 2243 ।। 370 ÷ 60 = 10

+6 ।। +37 ।। +6 ।।

65 ।। 401 ।। 2249

= 41 ।। = 29

= 65- 41- 29 -10

= 65 – 41 गति

= 1^0 - 5 - 41चालन ऋण

यहॉ गोमूत्रिका रीति से भी गणित करनेपर वही उत्तर आता है।

पंक्तिस्थ ग्रह सूर्य - $5^{रा}$-15^0-27-16

चालन ऋण - - 1 – 5 – 41

शेष = 5-14-21-35 इष्टकालीन सूर्य स्पष्ट - $5^{रा}$ – $14^{अं}$ – $21^{क}$ - $35^{वि}$

ग्रहगति साधन –

पंचांगों में प्रतिदिन के दैनिक स्प्ष्ट ग्रहों के मान राश्यादि में लिखे होते है। ग्रहगति के साधनार्थ उनको

अच्छी तरह समझ लेना चाहिये । तत् पश्चात् जिस ग्रह की गति जाननी हो, उसके अग्रिम एवं वर्तमान राश्यादि मान को एक स्थल पर लिखना चाहिये । अग्रिम राश्यादि के मान से वर्तमान राश्यादि के मान को घटाने पर जो लब्धि कलादि के रूप में आयेगी, उसे ग्रह की गति के रूप में जानना चाहिये ।

उदाहरण –

माना कि पंचांग में दिये स्पष्ट सूर्य का राश्यादि मान -

रा.अं.क.वि

3।।5।।4।।14 – अग्रिम दिन के राश्यादि मान

- 3।। 4।। 5।।6 – वर्तमान दिन के राश्यादि मान

0।। 0।। 59।।8

59।।8 सूर्य का कलात्मक गति हुआ ।

2.4 सारांश

जन्मकुण्डली निर्माण हेतु प्रक्रिया में इष्टकाल के पश्चात् पंक्तिस्थ ग्रह, एवं ग्रहगति का स्थान आता है । जब आपको इनके साथ साथ चालन का भी ज्ञान हो जाता है, तो निश्चय ही आप ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया को समझ जाते है । इस इकाई में आपको उपर्युक्त विषय का सम्यक् जानकारी प्राप्त हो, इसका प्रयास किया गया है । आशा है आप इसे आसानी से समझ सकेंगे ।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

पंक्तिस्थ ग्रह - पंचांग में स्थित ग्रहों को पंक्तिस्थ ग्रह कहते है ।

ग्रहगति – ग्रहाणां गति: ग्रहगति । प्रत्येक ग्रह अपने – अपने कक्षा में अपनी – अपनी गति के अनुसार भ्रमण करते है । ग्रहों की भ्रमणात्मक क्रिया का नाम ग्रहगति है ।

ग्रहसाधन – ग्रहाणा साधनं ग्रहसाधनम् । पंचांगों में प्रतिवर्ष ग्रहों की दैनिक स्थिति के ज्ञानार्थ किया जाने वाला साधन ग्रहसाधन कहलाता है ।

चालन - ग्रहस्पष्टीकरण के दौरान किया जाने वाला संस्कार चालन कहलाता है ।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. ख
2. ग

3. ख

4. ग

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
2. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र - रंजन पब्लिकेशन्स
3. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
4. ज्योतिष रहस्य
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा विद्याभवन

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान
2. ज्योतिष रहस्य
3. ताजिकनीलकण्ठी - पं सीताराम झा - चौखम्भा विद्याभवन
4. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
5. जन्मपत्रव्यवस्था

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. पंक्तिस्थ को समझाते हुये स्पष्ट कीजिये।
2. ग्रहसाधन करते हुये विस्तार से उसका वर्णन कीजिए।
3. ग्रहगति से क्या तात्पर्य है ? स्पष्ट कीजिये।
4. पंक्तिस्थ ग्रहसाधन कीजिये।
5. पंचांग में ग्रहसाधन की क्या उपयोगिता है।

इकाई - 3 चालन – चालन फल

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 चालन परिचय

 3.3.1 चालन साधन

 3.3.2 चालन फल

3.4 सारांश

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के तृतीय इकाई '**चालन-चालन फल** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। चालन से तात्पर्य ग्रहों के साधनार्थ ग्रहफल से है। जन्मकुण्डली निर्माण में जब आप ग्रहों का आनयन करते है, तो ग्रहों को स्पष्ट करने के लिये अनेकों संस्कार किये जाते है, उसका नाम ही ग्रहफल संस्कार है।

पंचांग में दिये गये ग्रह को पंक्तिग्रह कहते है। पंक्तिग्रह का जो स्पष्टीकरण की प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया में कई संस्कार किये जाते है, जिसे ग्रहफल संस्कार कहते है उनमें एक चालन संस्कार भी है । इसके आनयन की विधि आप इस इकाई में विस्तार से पढ़ेंगे।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने इष्टकाल, पंक्तिस्थ ग्रह, ग्रहगति का ज्ञान कर लिया है, यहॉं आप इस इकाई में चालन एवं चालन फल का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत **चालन – चालन फल** का बोध कराने से है। अधोलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है -

1. **चालन** क्या है? इसका ज्ञान कर सकेगें।
2. **चालन का गणितीय स्वरूप क्या** है? इसका बोध करेंगे।
3. **चालन** से आप क्या समझते है? इसे बता सकेगें।
4. **चालन साधन किस प्रकार से होता** है ? इसे समझा सकेगें।
5. **चालन** के महत्व को समझ सकते है।
6. **चालन** ज्ञान से कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में इसके आगे की गतिविधियों का ज्ञान करने में समर्थ हो सकेंगे।

3.3 चालन परिचय

अभीष्ट काल का ग्रहस्पष्ट (सूर्यस्पष्ट) करने के लिये किया जाना वाला फल संस्कार **चालन** कहलाता है। जिस दिन का ग्रहस्पष्ट हो उससे हमें उस दिन का एक निश्चित समय पर ग्रह के भोगांश ज्ञात होते हैं। जैसे किसी दिन प्रात: ५ ॥ सूर्य का भोगांश १०।२८°।८।३५ है, किन्तु हमारे उस दिन का इष्टकाल यदि घटयादि ९।२२।३० यानी स्टैण्डर्ड टाइम से १० बजे का है और सूर्य का उक्त भोगांश प्रात: ५॥ बजे का है अर्थात् ग्रहस्पष्ट के समय ५॥ से हमारा इष्टकाल ४॥ घंटा आगे हैं। अत: हमें अपने इष्टकाल का सूर्यस्पष्ट करने के लिये देखना होगा कि जब सूर्य इस दिन २४ घण्टे में

५९-४९ चलता है तो ४॥ घण्टे में कितना चलेगा ? यह फल हम ज्ञात ले तो सूर्य के मार्गी होने के कारण उसके ५॥ बजे प्रात: के स्पष्ट में इस फल को जोड़ देने से इष्टकाल १० बजे का सूर्यस्पष्ट ज्ञात हो जायेगा इसी फल को **'चालन'** कहते है।

किन्हीं पंचांगों में प्रतिदिन का ग्रहस्पष्ट दिया रहता है, किन्हीं में साप्ताहिक। इसी प्रकार कुछ पंचांगों में औदयिक अर्थात् स्थानिक सूर्योदय काल के तथा कुछ में मिश्रमानकालिक ग्रहस्पष्ट दिये जाते हैं। सर्वग्रहों का स्पष्ट भा. प्रमाणित समय (आई0एस0टी) से प्रात: ५॥ बजे का होता है। अत: पुरातन प्रणाली के पंचांगोंकी अपेक्षा जंत्री के ग्रहस्पष्ट के लिये अधिक सुबोध एवं सुविधाजनक है। इस ग्रह स्पष्ट को ग्रह पंक्ति भी कहा जाता है।

इस पंक्ति से अपना इष्टकाल आगे हो और मार्गी हो तो चालन को पंक्ति में धन (+) तथा ग्रह वक्री हो तो चालन को पंक्ति में ऋण (-) किया जाता है।

इसी प्रकार पंक्ति से अपना इष्टकाल पीछे हो और ग्रह मार्गी हो तो चालन ऋण (-) तथा ग्रह वक्री हो तो चालन धन (+) पंक्ति में करना चाहिये।

उपर्युक्त उदाहरण में पंक्ति से इष्टकाल आगे तथा ग्रह (सूर्य) मार्गी होने से चालन को पंक्ति में धन करना होगा। यह चालन लाने के लिये अभी तक दो रीतियॉ प्रचलित रही है : - 1. गोमूत्रिका की 2. लाघवांक की। गोमूत्रिका की रीति से गणित करने के लिये ग्रह की दैनिक अर्थात् २४ घण्टे की गति से पहले १ घण्टे की गति बनानी पड़ती है, फिर काफी गुणन – क्रिया करनी पड़ती हैं, जिसमें विशेष समय और श्रम लगता है । लाघवांक की रीति में केवल कुछ अंकों के योगमात्र से काम चल जाता है, किन्तु परिणाम सामान्यत: कलापर्यन्त ही सूक्ष्म आता है। ज्योतिष रहस्य नामक ग्रन्थ में आचार्य ने लाघवांक विधि द्वारा सारिणी बनाकर चालन संस्कार को सरल रूप में लिखा है।

काशी के शुद्ध चालन का ज्ञान –

देशान्तर। इष्टस्थान का काशी से देशान्तर देखकर यदि पूर्व हो तो धन (+) और पश्चिम हो तो ऋण (-) चिह्न कर एक स्थान पर लिखे।

चरान्तर। क्रान्ति तथा इष्टदेश के अक्षांश से चरान्तर ज्ञात करें। क्रान्ति के अंश और कला का फल, इष्टदेशीय अक्षांश के अंश तथा इसके अग्रिम अंश कला द्वारा अलग – अलग ग्रहण करें इन दोनों फलों के इष्ट अक्षांश से प्राप्त कलातुल्य फल के अनुमान का इष्टदेशीय अक्षांश से प्राप्त पूर्णफल में स्थिति वश योगान्तर ही चरान्तर है। यह फल केवल दो अवस्था में धन होगा –

1. यदि इष्ट स्थान का अक्षांश काशी के अक्षांश २५।१८ से अधिक हो तथा क्रान्ति उत्तरा हो।
2. इष्टस्थान का अक्षांश काशी के अक्षांश २५।१८ से कम तथा क्रान्ति दक्षिणा हो तो फल धन (+) होगा अन्यथा फल ऋण (-) होगा। देशान्तर की तरह इस चरफल को भी + या – संकेत कर देशान्तर के पास रख लें।

इष्टफल। देशान्तर तथा चरान्तर दोनों के धन (+) होने पर योगफल धन (+) , दोनों के ऋण (-) होने पर योगफल ऋण (-) , दोनों में धन (+) अधिक होने पर अंतर धन (+),ऋण (-)

अधिक होने पर अंतर ऋण (-) होगा। इस इष्टफल का भी (+) या (-) जैसा हो तीसरे स्थान पर लिखें और इसकी संज्ञा इष्टफल समझे । चरान्तर तथा इष्टफल दिनमानादि का साधन निम्नलिखित प्रकार से होगा।

इष्टदेशीय दिनमान – काशी के दिनमान में द्विगुण चरान्तर का संस्कार करने से इष्टदेशीय शुद्ध दिनमान होगा।

इष्टदेशीय तिथि नक्षत्रादि । पूर्वागत धन (+) या ऋण (-) इष्टफल। यदि धन (+) हो तो काशी के तिथ्यादि घटी पल में योग करें। यदि ऋण (-) हो तो घटा देने से इष्टदेशीय तिथ्यादि का मान होगा।

इष्टदेशीय जन्मेष्टकाल । यदि जन्म समय रेलवे घड़ी के अनुसार मालूम हो तो उसमें पंचांगस्थ रेलवे अन्तर धन (+) का ऋण (-) और ऋण (-) का धन (+) करनेसे काशी का इष्टकाल घं.मि. में होगा। इस घं. मि. का घटीपल बना लें। पुन: पूर्वागत + या – इष्टफल का संस्कार करने पर इष्टदेशीय स्पष्ट इष्टकाल होगा।

ग्रहगणित । तद्देशीय इष्टकालवश ग्रहों के दिनादि चालन में इष्टकाल का विलोम संस्कार धन (+) हो तो ऋण (-) , ऋण (-) हो तो (+) करने पर इष्टदेशीय ग्रहगणित के लिये शुद्ध चालन होगा।

चालन गणित क्रिया –

गतैष्यदिवसाद्येन गतिर्निघ्नी खषड्हृता।

लब्धेनांशादिना शोध्यं योज्यं स्पष्टो भवेद् ग्रह: ।।

अर्थात् ग्रहों की गति को गत या ऐष्य (आगामी) जो दिवसादि अर्थात् पंक्ति तथा इष्ट समय का अन्तर मिश्रेष्टान्तर उससे गोमूत्रिका प्रकार से गुणा करे, साठ से भाग दे, तब अंशादिक (अंश कला विकला) जो फल होगा सो ऋण मिश्रेष्टान्तर रहने से पंक्तिकालिक ग्रहों में घटाना, यदि पंक्ति से आगे इष्ट समय हो तो मिश्रेष्टान्तर धन होने के कारण जोड़े, तो इष्ट समय के ग्रह होते हैं। यदि ग्रह मार्गी हो तो इस प्रकार, यदि ग्रह वक्री हो, तो गतदिवसादि में धन करना, ऐष्य दिवसादि रहने पर ऋण करना। इतना ध्यान रखना चाहिये। रवि , चन्द्रमा सदैव मार्गी , राहु केतु सदैव वक्री, शेष मंगल ,बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि ये पॉच के ग्रह यदि अधिक हो तो मार्गी , यदि पूर्व पंक्ति के ग्रह से अगले पंक्ति के ग्रह यदि अधिक हों तो मार्गी,यदि पूर्व पंक्ति के ग्रह से अगले पंक्ति के ग्रह न्यून हों तो वक्री समझना ।कभी – 2 दो पंक्तियों के बीच – बीच में भी वक्रतारंभ होती है, यह ठीक – देख समझ कर धन चालन , ऋण चालन करना चाहिये।

भारतीय ज्योतिष (Indian Astrology/Hindu Astrology) ग्रहनक्षत्रों की गणना की वह पद्धति है जिसका भारत में विकास हुआ है। आजकल भी भारत में इसी पद्धति से पंचांग बनते हैं,

जिनके आधार पर देश भर में धार्मिक कृत्य तथा पर्व मनाए जाते हैं। वर्तमान काल में अधिकांश पंचांग सूर्यसिद्धांत, मकरंद सारणियों तथा ग्रहलाघव की विधि से प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ ऐसे भी पंचांग बनते हैं जिन्हें नॉटिकल अल्मनाक के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, किंतु इन्हें प्राय: भारतीय निरयण पद्धति के अनुकूल बना दिया जाता है।

बोध प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये -

1. पंचांग में दिये गये ग्रह को .... कहते है ?
2. अभीष्ट काल का ग्रहस्पष्ट करने हेतु किया जाना वाला संस्कार .... है।
3. औदयिक का अर्थ है .... ।
4. पंक्ति से इष्टकाल आगे होने पर चालन को पंक्ति में .... संस्कार करना चाहिये।
5. काशी का अक्षांश .... है।
6. देशान्तर तथा चरान्तर दोनों के धन होन पर योगफल .... होगा।
7. काशी के दिनमानमेंद्विगुण चरान्तर का संस्कार करने से इष्टदेशीय शुद्ध .... होगा।

विषुवद् वृत्त में एक समगति से चलनेवाले मध्यम सूर्य (लंकोदयासन्न) के एक उदय से दूसरे उदय तक एक मध्यम सावन दिन होता है। यह वर्तमान कालिक अंग्रेजी के 'सिविल डे' (civil day) जैसा है। एक सावन दिन में 60 घटी, 1 घटी 24 मिनिट साठ पल, 1 पल 24 सेंकेड 60 विपल तथा ढाई विपल 1 सेंकेंड होते हैं। सूर्य के किसी स्थिर बिंदु (नक्षत्र) के सापेक्ष पृथ्वी की परिक्रमा के काल को सौर वर्ष कहते हैं। यह स्थिर बिंदु मेषादि है। ईसा के पाँचवे शतक के आसन्न तक यह बिंदु कांतिवृत्त तथा विषुवत् के संपात में था। अब यह उस स्थान से लगभग 23 पश्चिम हट गया है, जिसे अयनांश कहते हैं। अयनगति विभिन्न ग्रंथों में एक सी नहीं है। यह लगभग प्रति वर्ष 1 कला मानी गई है। वर्तमान सूक्ष्म अयनगति 50.2 विकला है। सिद्धांतग्रथों का वर्षमान 365 दि० 15 घ० 31 प० 31 वि० 24 प्रति वि० है। यह वास्तव मान से 8। 34। 37 पलादि अधिक है। इतने समय में सूर्य की गति 8.27" होती है। इस प्रकार हमारे वर्षमान के कारण ही अयनगति की अधिक कल्पना है। वर्षों की गणना के लिये सौर वर्ष का प्रयोग किया जाता है। मासगणना के लिये चांद्र मासों का। सूर्य और चंद्रमा जब राश्यादि में समान होते हैं तब वह अमांतकाल तथा जब 6 राशि के अंतर पर होते हैं तब वह पूर्णिमांतकाल कहलाता है। एक अमांत से दूसरे अमांत तक एक चांद्र मास होता है, किंतु शर्त यह है कि उस समय में सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में अवश्य आ जाय। जिस चांद्र मास में सूर्य की संक्रांति नहीं पड़ती वह अधिमास कहलाता है। ऐसे वर्ष में 12 के स्थान पर 13 मास हो जाते हैं। इसी प्रकार यदि किसी चांद्र मास में दो संक्रांतियाँ पड़ जायँ तो एक मास का क्षय हो जाएगा। इस प्रकार मापों के चांद्र रहने पर भी यह प्रणाली सौर प्रणाली से संबद्ध है। चांद्र दिन की इकाई को तिथि कहते हैं। यह सूर्य और चंद्र के अंतर के 12वें भाग के बराबर होती है। हमारे धार्मिक दिन तिथियों से संबद्ध

है1 चंद्रमा जिस नक्षत्र में रहता है उसे चांद्र नक्षत्र कहते हैं। अति प्राचीन काल में वार के स्थान पर चांद्र नक्षत्रों का प्रयोग होता था। काल के बड़े मानों को व्यक्त करने के लिये युग प्रणाली अपनाई जाती है। वह इस प्रकार है:

कृतयुग (सत्ययुग) 17,28,000 वर्ष

द्वापर 12,96,000 वर्ष

त्रेता 8, 64,000 वर्ष

कलि 4,32,000 वर्ष

योग महायुग 43,20,000 वर्ष

कल्प 1000 महायुग 4,32,00,00,000 वर्ष

सूर्यसिद्धांत में बताए आँकड़ों के अनुसार कलियुग का आरंभ 17 फ़रवरी 3102 ई० पू० को हुआ था। युग से अहर्गण (दिनसमूहों) की गणना प्रणाली, जूलियन डे नंबर के दिनों के समान, भूत और भविष्य की सभी तिथियों की गणना में सहायक हो सकती है।

मध्य ग्रह गणना में चर संस्कार प्रयोग

ग्रह की मेषादि के सापेक्ष पृथ्वी की परिक्रमा को एक भगण कहते हैं। सिद्धांतग्रथों में युग, या कल्पग्रहों, के मध्य भगण दिए रहते हैं। युग या कल्प के मध्य सावन दिनों की संख्या भी दी रहती है। यदि युग या कल्प के प्रारंभ में ग्रह मेषादि में हों तो बीच के दिन (अहर्गण) ज्ञात होने से मध्यम ग्रह को त्रैराशिक से निकाला जा सकता है। भगण की परिभाषा के अनुसार बुध और शुक्र की मध्यम गति सूर्य के समान ही मानी गई है। उनकी वास्तविक गति के तुल्य उनकी शीघ्रोच्च गति मानी गई है। ये ग्रह रेखादेश, अर्थात् उज्जयिनी, के याम्योत्तर के आते हैं, जिन्हें देशांतर तथा **चर संस्कारों** से अपने स्थान के मयम सूर्योदयासन्नकालिक बनाया जाता है।

उत्तर भारत में पंचांग निर्माण के सलि पं. बृजमोहन 'निराला' पंचांग का निर्माण वैदिक काल से होता आ रहा है। पहले कभी यह एकांग तिथि मात्र था। बाद में नक्षत्र एवं वार के सम्मिलित हो जाने पर यह द्व्यंग एवं त्र्यंग बना। कालांतर में योग एवं करण के समाविष्ट होने पर इसे पंचांग कहा जाने लगा। भारत में कई स्थानों पर पंचांग का निर्माण होता है। पंचांग निर्माण की यह परम्परा सुदीर्घ है। दृक्सिद्ध शुद्ध पंचांग के निर्माणार्थ उत्तर भारत में सवाई राजा जयसिंह ने उज्जैन, काशी, दिल्ली, जयपुर एवं मथुरा में भव्य वेधशालाओं का निर्माण करवाया। विभिन्न स्थलों पर स्थित वेधशालाओं से प्राप्त ग्रह और नक्षत्रों की राशिचक्र में अंशात्मक स्थिति ज्ञात कर शुद्ध गणित से पांच अंगों तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण का विश्लेषण किया जाता था। पंचांग का निर्माण सिद्धांत ग्रन्थों में व्यक्त गणित के आधार पर होता है, इसलिए इसका निर्माण किसी भी स्थल पर किया जा सकता है। गणित की सहायता से सापेक्षतः पृथ्वी के किसी भी स्थल के दिक्, देश एवं काल का आनयन किया जा सकता है। सिद्धांत ग्रंथों के आधार पर निर्मित होने वाले पंचांगों का गणित केवल किसी स्थान

विशेष के लिए ही नहीं होता, अपितु इन ग्रंथों में व्यक्त गणित के आधार पर भारत के किसी समय की सूर्य, चंद्र इत्यादि ग्रहों की गति-स्थिति तथा उदयास्त, ग्रहण इत्यादि ज्योतिष संबंधी तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अतः स्पष्ट है कि पंचांग का निर्माण किसी भी स्थल पर किया जा सकता है।

उत्तरभारत के पंचांगों में होने वाले चालन प्रयोग -

उत्तरभारत के पंचांगों में पंचांग परिवर्तन की गणितीय विधि दी गई होती है जिसके द्वारा एक स्थल पर निर्मित पंचांग को अन्य स्थल के पंचांग में परिवर्तित किया जा सकता है। पंचांग के सार्वभौमिक महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रयास किया जाता है कि इसका निर्माण ऐसे स्थल (अक्षांश-रेखांश) पर किया जाए जहां की जनसंखया अधि हो, ताकि इसका लाभ अधिक से अधिक लोगों को मिल सके। यही कारण है कि उत्तर भारत में दिल्ली एवं काशी से अनेक पंचांग निकलते हैं। यद्यपि भारत के किसी भी स्थल पर बने पंचांग को देशांतर, चरांतर इत्यादि संस्कारों द्वारा स्थानीय पंचांग में परिवर्तित कर सकते हैं, किंतु स्थानीय पंचांग का उपयोग करना अधिक उचित होता है। पंचांग के निर्माण में स्थल का विशेष महत्व है। निर्माण स्थल के अक्षांश और रेखांश अथवा पलभा के आधार ही गणित की सहायता से तिथि, वार (वार प्रवृत्ति), नक्षत्र, योग एवं करण के घटी-पलात्मक मानों को पंचांग के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। भिन्न-भिन्न स्थलों पर निर्मित पंचांगों में तिथ्यादि के घटी-पलात्मक मान भिन्न-भिन्न होते हैं, जो स्थानीय सूर्योदय के आधार पर ज्ञात किए जाते हैं। आज से कुछ वर्ष पूर्व ज्योतिर्विद स्वनिर्मित स्थानीय पंचांग प्रयोग करते थे। कालांतर में उत्तर भारत में पंचांग का निर्माण अधिकांशत: हर प्रांत एवं मंडल में होने लगा। वर्तमान में उत्तर भारत में पंचांग निर्माण के प्रमुख स्थल इस प्रकार हैं। (1) काशी(उ.प्र.) (2) दिल्ली (3) उज्जैन (म.प्र.) (4) कलकत्ता (प.बं.) (5) जोधपुर (राजस्थान) (6) चंडीगढ़ (हरियाणा) (7) जालंधर (पंजाब) (8) दरभंगा (बिहार) (9) नवलगढ (राजस्थान) (10) मथुरा (उ.प्र.) (11) जबलपुर (म.प्र.) (12) रामगढ़ (राजस्थान) (13) अयोध्या (उ.प्र.) (14) दतिया (म.प्र.) (15) गढ़वाल (उत्तरांचल) काशी (वाराणसी) हैं।

एस्ट्रॉनॉमिकल एफेमरीज का निर्माण जीवाजी शासकीय वेधशाला, उज्जैन से प्राप्त खगोलीय दृश्य ग्रह स्थिति के आधार पर होता है। इस एफेमरीज में भारतीय समयानुसार दोपहर 12 बजे के सायन ग्रहस्पष्ट दर्शाए गए हैं। एस्ट्रॉनॉमिकल एफेमरीज में व्यक्त स्पष्ट ग्रहों के भोग्यांशों में चालन एवं अयनांश हीन करने पर कलकत्ता की लहरी एफेमरीज में व्यक्त स्पष्टग्रहों के भोग्यांशों के तुल्य प्राप्त होते हैं। उज्जैन के संदीपन व्यास प्रकाशन से प्रकाशित विक्रम विजय पंचांग के प्रधान संपादक डॉ. मदन व्यास हैं। यह एक शास्त्रसम्मत् पंचांग है। उज्जैन के अक्षांशादि पर ही श्री मातृभूमि पंचांग का

निर्माण केतकी चित्रापक्षीय दृश्य गणित के अनुसार होता है। डॉ. विष्णु कुमार शर्मा इसके पंचांगकार हैं। उक्त पंचांगों के अतिरिक्त कुछ अन्य पंचांग भी उज्जैन से प्रकाशित होते हैं जिनमें पं. भगवती प्रसाद पांडेय द्वारा संपादित श्री वि क्रमादित्य पंचांग और पं. आनंद द्रांकर व्यास द्वारा प्रकाशित नारायण विजय पंचांग आदि प्रमुख हैं। जबलपुर जबलपुर भारत के मानचित्र पर ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 790 57' तथा उत्तरी अक्षांश 230 10' पर स्थित है। यहां से निकलने वाले पंचांगों में भुवन विजय पंचांग एवं लोक विजय पंचांग प्रमुख हैं। कलकत्ता कलकत्ता भारत के पूर्वोत्तर भाग में स्थित है। यह भारत की सर्वाधिक जनसंखया वाले नगरों में से एक है। यह ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 880 23' तथा उत्तरी अक्षांश 230 35' पर स्थित है। यहां स्थित पोजिशनल एस्ट्रॉनॉमी सेंटर से दि इंडियन एस्ट्रॉनॉमिकल एफेमरीज निकलती है, जिसका प्रकाशन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार का प्रकाशन विभाग करता है। इसके अतिरिक्त लहरी इंडियन एफेमरीज का निर्माण भी कलकत्ता के अक्षांश-रेखांश पर होता है। लहरी इंडियन एफेमेरीज में भा.मा.स. में प्रातः 5 बजकर 30 मिनट के निरयन स्पष्ट ग्रहों को दर्शाया जाता है। इस एफेमेरीज की शुरुआत खगोलज्ञ श्री निर्मल चंद्र लहरी ने सन् 1948 में की। श्री निर्मल चंद्र लहरी के अनुसार शक 207 (285 ई.) में अयनांश शून्य मानकर निरयन ग्रह गणना निर्देशित है। कलकत्ता से निकलने वाले पंचांगों में ये दोनों एफेमेरीज प्रमुख हैं। इस तरह, पंचांग निर्माण की दृष्टि से कलकत्ता एक महत्वपूर्ण स्थल है। जोधपुर जोधपुर राजस्थान प्रांत का प्रमुख शहर है, जो ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 730 2' तथा उत्तरी अक्षांश 260 18' पर स्थित है। निर्णयसागर, चंडमार्त्तंड पंचांग तथा श्री गजेंद्र विजय पंचांग का निर्माण जोधपुर के अक्षांश-रेखांश के आधार पर होता है। स्वल्पांतर से निर्णय सागर पंचांग में जोधपुर के रेखांश 730 4' का प्रयोग किया गया है। दोनों पंचांगों में चित्रापक्षीय अयनांश ग्रहण किया गया है। पं. श्री भवानी शंकर का निर्णयसागर पंचांग संपूर्ण उत्तर भारत में प्रसिद्ध है। श्री गजेंद्र विजय पंचांग एवं नई दिल्ली के श्री विश्वविजय पंचांग दोनों का ग्रहगणित एवं निर्माण पद्धति एक समान है। इन दोनों पंचांगों के आद्य संपादक श्री हरदेव शर्मा त्रिवेदी हैं। नवलगढ़ राजस्थान प्रांत का नवलगढ़ शहर ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 750 18' तथा उत्तरी अक्षांश 270 51' पर स्थित है। इन्हीं अक्षांशादि के आधार पर जयपुर ज्योतिष मंत्रालय द्वारा प्रत्यक्षानुभव करके सूक्ष्म दृश्य गणित से वेंकटेश्वर शताब्दी पंचांग तथा पंचवर्षीय श्री सरस्वती पंचांग का निर्माण होता है। दोनों पंचांगों के संपादक पं. ईश्वर दत्त जी शर्मा हैं। राजस्थान के एक और शहर अजमेर से पं. भवर लाल जोशी के आदित्यविजय पंचांग का प्रकाशन होता है। चंडीगढ हरियाणा प्रांत में स्थित चंडीगढ़ ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 760 52' तथा उत्तरी अक्षांश 300 44' पर स्थित है, जिनके आधार पर श्री मार्त्तंड पंचांग का निर्माण होता है। निरयन पद्धति के इस पंचांग में चित्रापक्षीय अयनांश ग्रहण किया गया है। इस पंचांग के आद्य संपादक पं. श्री मुकुन्दवल्लभ मिश्र हैं। जालंधर पंजाब प्रांत में स्थित शहर जालंधर ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 750 18' तथा उत्तरी अक्षांश 310 21' पर स्थित है, जिनके आधार पर पंचांग दिवाकर का निर्माण होता है। इस पंचांग में भी चित्रपक्षीय निरयन पद्धति को अपनाया गया है। इस पंचांग के संस्थापक

पंदेवी दयालु ज्योतिषी लाहौर वाले हैं। दरभंगा बिहार प्रांत में स्थित दरभंगा शहर ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 850 54' तथा उत्तरी अक्षांश 260 10' पर स्थित है। यहां स्थित कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय से विश्वविद्यालय पंचांग का प्रकाशन होता है। यह पंचांग पूर्णतः शास्त्रसम्मत है। मथुरा उत्तरप्रदेश का मथुरा शहर है ग्रीनविच से पूर्वी रेखांश 770 41' तथा उत्तरी अक्षांश 270 28' पर स्थित है। भगवान श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा के अक्षांशादि के आधार पर श्री ब्रजभूमि पंचांग का निर्माण होता है। इस पंचांग में केतकी चित्रपक्षीय अयनांश का प्रयोग होता है। इस पंचांग के संपादक पं. श्री कौशल किशोर कौशिक हैं। यह पंचांग सन् 1994 ई. से प्रकाशित हो रहा है। रामगढ़ (शेखावटी) रामगढ़ (शेखावटी) भारत के मानचित्र पर ग्रीनविच से पूर्वी रेखांश 740 59' तथा उत्तरी अक्षांश 280 0' पर स्थित है। रामगढ़ (द्रोखावटी) के अक्षांशादि के आधार पर वेधसिद्ध सूक्ष्मदृश्य गणित से पं. श्री वल्लभ मनीराम पंचांग का निर्माण होता है। इस पंचांग के गणित कर्ता पं. श्री ग्यारसीलाल शास्त्री हैं। श्री वेंकटेश्वर शताब्दी पंचांग, श्री सरस्वती पंचांग एवं श्री वल्लभ मनीराम पंचांग के ग्रह गणित का सिद्धांत समान प्रतीत होता है। अयोध्या अयोध्या भगवान श्री राम की जन्मस्थली के रूप में एक धार्मिक स्थल है। यह ग्रीनविच रेखा से पूर्वी रेखांश 820 12' तथा उत्तरी अक्षांश 260 47' पर स्थित है, जिनके आधार पर यहां से श्रीराम जन्मभूमि पंचांग का निर्माण होता है। इस पंचांग के संपादक पं. विंध्येश्वरी प्रसाद शुक्ल हैं। उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त उत्तर भारत के कई अन्य शहरों से भी पंचांगों का प्रकाशन होता है, जिनमें ग्वालियर से डॉश्री कृष्ण भालचंद्र शास्त्री मुसलगांवकर द्वारा रचित पंचांग, दतिया (म.प्र.) से प्रकाशित तांत्रिक पंचांग, अहमदाबाद से प्रकाशित संदेश प्रत्यक्ष पंचांग, रुद्रपुर (नैनीताल) से पं. श्री भोलादत्त महतोलिया कृत श्री देवभूमि पंचांग, करौली (राजस्थान) से राजज्योतिषी पं. श्री शिवनारायण शर्मा 'महेश' द्वारा संपादित शिवविनोदी मदनमोहन पंचांग आदि प्रमुख हैं।

3.4 सारांश

जन्मकुण्डली निर्माण हेतु प्रक्रिया में इष्टकाल के पश्चात् पंक्तिस्थ ग्रह, एवं ग्रहगति के पश्चात् चालन का ज्ञान आवश्यक है । चालन किसी ग्रह का उसकी निश्चित स्थिति का ज्ञान बोध कराने के लिये आवश्यक होता है । चालन संस्कार धन अथवा ऋण होता है । कुण्डली निर्माण प्रक्रिया के साथ – साथ ग्रहस्पष्टीकरण में भी इसकी मुख्य भूमिका होती है । ग्रहफल में एक चालन फल भी आता है । इस इकाई में चालन एवं चालन फल को समझाने का प्रयास किया गया है । पाठकगण इसका सम्यक् अध्ययन कर आशा है आसानी से समझ सकेंगे ।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

औदयिक - सूर्योदयकालिक

भोगांश – भोग किया हुआ अंश

अधोलिखित – नीचे लिखा हुआ

ग्रहफल - ग्रहस्पष्टीकरण में किये जाना वाला फल संस्कार

चालन – ग्रहफल संस्कार में एक

मिश्रमानकालिक – लंकार्द्धरात्रिकालिक

गोमूत्रिका – ज्योतिष की गणितीय विधि

इष्टदेशीय – अभीष्ट देशीय

इष्टस्थान – अभीष्ट स्थान का

देशान्तर - रेखादेश और स्वदेश का अन्तर

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. पंक्तिग्रह
2. चालन
3. सूर्योदयकालिक ग्रह
4. धन (+)
5. 25 । 18
6. धन (+)
7. दिनमान

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
2. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र - रंजन पब्लिकेशन्स
3. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
4. ज्योतिष रहस्य
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा विद्याभवन

3.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान
2. ज्योतिष रहस्य
3. ताजिकनीलकण्ठी - पं सीताराम झा - चौखम्भा विद्याभवन

4. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास

5. जन्मपत्रव्यवस्था

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. चालन को समझाते हुये स्पष्ट कीजिये।
2. चालन साधन की विधि लिखिये ।
3. काशी के शुद्ध चालन का गणितीय विधि लिखिये ।
4. स्वकल्पित चालन साधन कीजिये।
5. पंचांग में चालन की क्या उपयोगिता है।

इकाई – 4 फलसंस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट परिचय

4.3.1 फल संस्कार एवं ग्रहस्पष्ट का स्वरूप

4.3.2 फल संस्कार एवं ग्रह साधन

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई प्रथम खण्ड के चतुर्थ इकाई **'फल संस्कार विधि तथा ग्रहस्पष्ट'** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। फल संस्कार से तात्पर्य ग्रहों के साधनार्थ ग्रहफल से है। जन्मकुण्डली निर्माण में जब आप ग्रहों का आनयन करते है, तो ग्रहों को स्पष्ट करने के लिये अनेकों संस्कार किये जाते है, उसका नाम ही ग्रहफल संस्कार है।

पंचांग में दिये गये ग्रह को पंक्तिग्रह कहते है। पंक्तिग्रह का जो स्पष्टीकरण की प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया में कई संस्कार किये जाते है, जिसे ग्रहफल संस्कार कहते है। उनके आनयन की विधि आप इस इकाई में विस्तार से पढ़ेंगे।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने इष्टकाल, पंक्तिस्थ ग्रह, ग्रहगति का ज्ञान कर लिया है, यहॉं आप इस इकाई में फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** का बोध कराने से है। अधोलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है -

1. **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** क्या है? इसका ज्ञान कर सकेगें।
2. **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** का संपूर्ण मान कितना होता है? इसका बोध करेंगे।
3. **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** से आप क्या समझते है? इसे बता सकेगें।
4. **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** क्या है ? इसे समझा सकेगें।
5. **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** के महत्व को समझ सकते है।
6. **फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट** ज्ञान से कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में इसके आगे की गतिविधियों का ज्ञान करने में समर्थ हो सकेंगे।

4.3 फल संस्कार विधि एवं ग्रहस्पष्ट परिचय

फल संस्कार विधि से तात्पर्य ग्रह साधन में होने वाले फलों के विभिन्न संस्कारों से है। **यथा – चालन फल, मन्द फल, शीघ्रफल, चर फल, अयनांशादि।** आचार्य गणेश दैवज्ञ जी ने ग्रहलाघव में फल संस्कार विधि इस प्रकार से निरूपित किया है –

प्राङ्गमध्यमे चलफलस्य दलं विदद्यात्।

तस्माच्चमान्द मखिलं विद् धीत तस्य ।।
द्राकेन्द्रगेऽपि विलोम गतिश्च शीघ्रम् ।
सर्वं च तत्र विदधी भवेत स्फुटौऽसौ ।।
सूर्यसिद्धान्त में भी –
मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वो भौमादीनां मथोच्यते
शैघ्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्रयं चत्वार्यनुक्रमात् ।
मध्ये शीघ्रफलस्यार्थं मान्दमर्धं फलं तथा ।
मध्य ग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रयमेव च ।।

ग्रहस्पष्टीकरण में फलसंस्कार विधि के अन्तर्गत सर्वप्रथम शीघ्रफल फिर मन्दफल पुन: मन्दफल और अन्त में शीघ्रफल संस्कार की बात आचार्यों द्वारा कही गई है ।

ग्रह की मेषादि के सापेक्ष पृथ्वी की परिक्रमा को एक भगण कहते हैं। सिद्धांतग्रथों में युग, या कल्पग्रहों, के मध्य भगण दिए रहते हैं। युग या कल्प के मध्य सावन दिनों की संख्या भी दी रहती है। यदि युग या कल्प के प्रारंभ में ग्रह मेषादि में हों तो बीच के दिन (अहर्गण) ज्ञात होने से मध्यम ग्रह को त्रैराशिक से निकाला जा सकता है। भगण की परिभाषा के अनुसार बुध और शुक्र की मध्यम गति सूर्य के समान ही मानी गई है। उनकी वास्तविक गति के तुल्य उनकी शीघ्रोच्च गति मानी गई है। ये ग्रह रेखादेश, अर्थात् उज्जयिनी, के याम्योत्तर के आते हैं, जिन्हें देशांतर तथा चर संस्कारों से अपने स्थान के मयम सुर्योदयासन्नकालिक बनाया जाता है।

मंद स्पष्ट ग्रह

स्पष्ट सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट गति जिस समय सबसे कम हो उस समय के स्पष्ट सूर्य और चंद्रमा का जितना भाग होगा उसे उनके मंदोच्च का भोग समझना चाहिए। स्पष्ट रवि चंद्र और मध्यम रवि चंद्र के अंतर को मंदफल कहते हैं। मंदोच्च से 180 की दूरी पर मंदनीच होगा। मंदोच्च से छह राशि तक स्पष्ट सूर्य चंद्र मध्यम सूर्य चंद्र से पीछे रहते हैं। इसलिये मंद फल ऋण होता है। मंदोच्च से मध्यम ग्रह के अंतर की मंदकेंद्र संज्ञा है। मंदोच्च से 3 राशि के अंतर पर मंदफल परमार्धिक होता है। उसे मंदांत्य फल कहते हैं। मंदनीच से मंदोच्च तक स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से आगे रहता है, अत: मंदफल धन होता है। मंदस्पष्ट रवि चंद्र के मंदफल को ज्ञात करने के लिये दो प्रकार के क्षेत्रों की कल्पना है, जिन्हें भंगि कहते हैं। पहली का नाम प्रतिवृत्त भंगि है। भू को केंद्र मानकर एक त्रिज्या के व्यासार्ध से वृत्त खींचा, वह कक्षावृत्त हुआ। इसके ऊर्ध्वाधरव्यास पर मंद अत्यफल की ज्या के तुल्य काटकर उस केंद्र से एक त्रिज्या व्यास से वृत्त खींचा वह मंदप्रतिवृत्त होगा। मध्यम ग्रह को मंदप्रतिवृत्त में चलता कल्पित किया। यदि कक्षा वृत्त में भी मंदकेंद्र के तुल्य चाप काटें तो वहाँ कक्षावृत्त का मध्यम ग्रह होगा। भूकेंद्र से प्रतिवृत्त स्थित ग्रह तक खींची गई रेखा कक्षावृत्त में जहॉ लगे वह मंदस्पष्ट ग्रह होगा। कक्षावृत्त के मध्यम और मंदस्पष्ट ग्रह का अंतर मंदफल होगा। नीचोच्च भंगि के लिये कक्षावृत्त पर स्थित मध्यम ग्रह से मंदांत्यफलज्या तुल्य व्यासार्ध से एक वृत्त खींच लेते हैं, जिसे मंदपरिधि वृत्त कहते हैं।

कक्षावृत्त के केंद्र से मध्यम ग्रह से जाती हुई रेखा जहाँ मंदपरिधिवृत्त में लगे उसे मंदोच्च मानकर, मंद परिधि में विपरीत दिशा में, केंद्र के तुल्य अंशों पर ग्रह की कल्पना की जाती है। ग्रह से भूकेंद्र को मिलानेवाली रेखा (मंदकर्ण) जिस स्थान पर कक्षावृत्त को काटे वहाँ मंदस्पष्ट ग्रह होगा। इस प्रकार मंदस्पष्ट किए गए सूर्य और चंद्र हमें उन स्थानों पर दिखलाई देते हैं, क्योंकि उनका भ्रमण हमें पृथ्वीकेंद्र के सापेक्ष दिखलाई पड़ता है। शेष ग्रहों के लिये भी मंदफल निकालने की वैसी ही कल्पना है। उनका मंदोच्च स्पष्ट ग्रह से विलोमरीति द्वारा मंदस्पष्ट का ज्ञान करके ज्ञात करते हैं। ये मंदस्पष्ट ग्रह दृश्य नहीं होते, क्योंकि पृथ्वी उनके भ्रमण का केंद्र नहीं है। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि मंदस्पष्ट ग्रह अपनी कक्षा में घूमते ग्रह का भोग (longitude) होता है। अतएव भूदृश्य बनाने के लिये पाँच ग्रहों के लिये शीघ्र फल की कल्पना की गई है।

स्पष्ट ग्रह

मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, तथा शनि को स्पष्ट करने के लिये शीघ्रफल की कल्पना है। इसके लिये भी मंद प्रतिवृत्त तथा मंदनीचोच्च जैसी भंगियों की कल्पना की जाती है, जिसके लिये मंद के स्थान पर शीघ्र शब्द रख दिया जाता है। अंतर्ग्रहों के लिये वास्तविक मध्यमग्रहों को ही शीघ्रोच्च कहते हैं। उनके माध्य अधिकतम रविग्रहांतर कोण (maxium elongation) को परमशीघ्रफल, परमशीघ्रफल की ज्या को शीघ्रांत्य फलज्या कहते हैं। ग्रह (मध्यमरवि) और शीघ्रोच्च का अंतर शीघ्रकेंद्र होता है। इसमें मंदफल के लिये बनाई गई भंगियों की तरह भंगियाँ बनाकर शीघ्रफल निकाला जाता है। इस प्रकार के संस्कार से ग्रह का इष्ट रविग्रहांतर कोण करके ग्रह की स्थिति ज्ञात हो जाती है। बहिर्ग्रहों के लिये रविकेंद्रिक परमलंबन की परमशीघ्रफल तथा रवि को शीघ्रोच्च मानकर शीघ्रफल ज्ञात किया जाता है। शीघ्रफल के संस्कार की विधि आचार्यों ने इस प्रकार निर्द्धारित की है कि उपलब्ध ग्रह का भोग यथार्थ आ सके।

ग्रहों की कक्षाएँ

ग्रहों की कक्षाएँ चंद्र, बुध, शुक्र, रवि, भौम, गुरु, शनि के क्रम से उत्तरोत्तर पृथ्वी से दूर हैं। इनका केंद्र पृथ्वी माना गया है1 यद्यपि ग्रहों के साधन के लिये प्रत्येक कक्षा का अर्धव्यास त्रिज्यातुल्य कल्पित किया है, तथापि उनकी अंत्यफलज्या भिन्न होने के कारण उनकी दूरी विभिन्न प्रकार की आती है। शीघ्रांत्यफलज्याओं और त्रिज्याओं की ग्रहकक्षाव्यासार्ध और रविकक्षाव्यासार्ध से तुलना करने पर बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति तथा शनि की कक्षाओं के व्यासार्ध पृथ्वी से रवि की दूरी के सापेक्ष .3694, .7278, .1.5139, .5.1429 तथा 9.2308 आते हैं। आधुनिक सूक्ष्म मान .3871, .7233, 1.5237, 5.2028 तथा 9.5288 हैं। ग्रहकक्षा और क्रांतिवृत्त के संपात को पात कहते हैं। ग्रह के भ्रमणमार्ग को विमंडल कहते हैं। क्रांतिवृत्त तथा विमंडल के बीच के कोण को परमविक्षेप कहते हैं। इनके मान भूकेंद्रिक ज्ञात किए गए हैं। तमोग्रह राहु केतु सदा चंद्रमा के पातों पर कल्पित किए जाते हैं। पात की गति विलोम होती है।

ग्रहणाधिकारों में सूर्य तथा चंद्र के ग्रहणों का गणित है। चंद्रमा का ग्रहण भूछाया में प्रविष्ट होने से

तथा सूर्यग्रहण चंद्रमा द्वारा सूर्य के ढके जाने से माना गया है। सूर्यग्रहण में लंबन के कारण भूकेंद्रीय चंद्र तथा हमें दिखाई देनेवोल चंद्र में बहुत अंतर आ जाता है। अत: इसके लिये लंबन का ज्ञान किया जाता है।

चंद्रश्रृंगोन्नति में चंद्रमा की कलाओं को ज्ञात किया जाता है। ग्रहच्छायाधिकार में ग्रहों के उदयास्त काल तथा इष्टकाल में वेध की विधि और पाताधिकार में सूर्य और चंद्रमा के क्रांतिसाम्य का विचार किया जाता है। भिन्न अयन तथा एक गोलार्ध में होने पर, सायन रविचंद्र के योग 180° के समय क्रांतिसाम्य होने पर, व्यतिपात तथा एक अयन भिन्न गोलार्ध में होने पर वही योग 360° के तुल्य हो तो क्रांतिसाम्य में वैधृति होती है। ये दोनों शुभ कार्यो के लिये वर्जित हैं। ग्रहयुति में ग्रहों के अति सान्निध्य की स्थितियों का (युद्ध समागम का) गणित है। भग्रहयुति में नक्षत्रों के नियामक दिए गए हैं। भारतीय ज्योतिष प्रणाली से बनाए तिथिपत्र को पंचांग कहते हैं। पंचांग के पाँच अंग हैं : तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण। पंचांग में इनके अतिरिक्त दैनिक, दैनिक लगनस्पष्ट, ग्रहचार, ग्रहों के सूर्यसान्निध्य से उदय और अस्त और चंद्रोदयास्त दिए रहते हैं। इनके अतिरिक्त इनमें विविध मुहूर्त तथा धार्मिक पर्व दिए रहते हैं।

भगण (क्रान्तिवृत्त) पर आश्रित शीघ्रोच्च, मन्दोच्च एवं पात संज्ञक काल की अदृश्य मूर्तियाँ ग्रहों की गति का कारण होती है, अर्थात् इन्हीं अदृश्य मूर्तियों के कारण ग्रहपिण्डों में गति उत्पन्न होती है। इन शीघ्रोच्च, मन्दोच्च एवं पात संज्ञक अदृश्य शक्तियों की वायुरूपी रस्सी से बँधे हुए ग्रह उन्हीं शक्तियों द्वारा वामदक्षिणहस्त से अपनी दिशा में अपने समीप अपकृष्ट होते (खींच लिये जाते) हैं। प्रवह नामक वायु ग्रहों को उनके उच्च स्थानों की ओर प्रेरित करती है। पूर्व और पश्चिम की ओर खिंचे हुए ग्रहों की भिन्न-भिन्न गति होती जाती है।

ग्रहों का उच्च संज्ञक स्थान यदि पूर्व दिशा में 180° से अल्प दूरी पर हो तो ग्रह को पूर्व दिशा में तथा यदि पश्चिम दिशा में हो तो पश्चिम दिशा में खींच लेता है।

अपने अपने उच्च स्थानों से अपकृष्ट ग्रह अपने मध्यम स्थान से जितने राश्यादि तक पूर्व दिशा में जाते हैं उतने राश्यादि मान (उच्चाकर्षण फल) मध्यम ग्रह में जोड़े जाते हैं अतः इसे धन संस्कार कहते हैं तथा पश्चिम दिशा में उच्चाकर्षण फल घटाया जाता है अतएव उसे ऋण संस्कार कहते हैं।

इसी प्रकार राहु नामक पात भी क्रान्त्यन्त बिन्दु से ग्रह को अत्यन्त वेग से उत्तर और दक्षिण दिशा में विक्षेप तुल्य दूरी तक विक्षिप्त करता है।

यदि पातस्थान ग्रह से पश्चिम दिशा में 6 राशि से अल्प दूरी पर होता है तो ग्रह को उत्तर दिशा में और यदि पूर्व दिशा में 6 राशि से अल्प दूरी पर होता है तो ग्रह को दक्षिण दिशा में आकर्षित कर लेता है। बुध और शुक्र के शीघ्रोच्चों से इनके पात पूर्वोक्त नियमानुसार पूर्व दिशा में यदि 6 राशि से अल्प दूरी पर हों तथा पश्चिम दिशा में भी 6 राशि से अल्प हों तो क्रम से उत्तर एवं दक्षिण में आकर्षित करता है। सूर्य का विम्बमान बृहद होने से सूर्य अपने मन्दोच्च पात द्वारा अल्प आकर्षित होता है किन्तु विम्बमान लघु होने से चन्द्रमा अपने मनादोच्च से सूर्य की अपेक्षा अत्यधिक आकर्षित हो जाता है।

भौमादि पञ्चतारा ग्रह लघु विम्बात्मक होने के कारण अपने-अपने शीघ्रोच्च और मन्दोच्च रूपी अदृश्य दैवी शक्तियों द्वारा अत्यन्त वेग पूर्वक सुदूर अपकृष्ट हो जाते हैं।

यही कारण है कि भौमादि ग्रहों में उनकी गतियों के कारण धन एवं ऋण संस्कार अधिक होते हैं। इस प्रकार प्रबह वायु के वेग से आहत होकर अपने अपने पातों से आकृष्ट होते हुए भौमादि ग्रह आकाश में अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं।

वक्र, अनुवक्र, कुटिल, मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्रतर तथा शीघ्र ये आठ प्रकार की ग्रहों की गतियाँ होती हैं।

इनमें अतिशीघ्र, शीघ्र, मन्द, मन्दतर और सम ये पाँच प्रकार की मार्गी गतियाँ हैं। जो वक्रगति है वही अनुवक्र भी है अर्थात् वक्र, अनुवक्र एवं कुटिल ये तीनों गतियाँ वक्र गति संज्ञक होती हैं। इस प्रकार गतियों के मार्गी और वक्री प्रमुख दो भेद होते हैं।

उन गतियों के अनुसार प्रतिदिन ग्रह जिस प्रकार दृक् तुल्य हो जाते हैं उस स्पष्टीकरण प्रक्रिया को मैं आदरपूर्वक कह रहा हूँ।

राशि कला (30° × 60 = 1800 कला) के अष्टमांश (1800 / 8 = 225 कला) को प्रथम ज्यार्ध कहते हैं। इसको इसी से विभाजित कर लब्धि को इसमें से घटाकर शेष को इस में जोड़ देने से द्वितीय ज्यार्ध का मान प्राप्त होता है।

आद्य (प्रथम) ज्यार्ध से अग्रिम पिण्डों को विभक्त कर लब्धि से रहित ज्याखण्डों को ज्यार्ध में जोड़ने से अग्रिम ज्यापिण्ड होता है। इसी प्रकार क्रम से 24 ज्यार्ध पिण्डों के मान होते हैं।

प्रथम ज्यार्ध पिण्ड का मान 225, द्वितीय का मान (225 + 225 - 225 / 225) 449, तृतीय का मान (449 + 224 - 449 / 225) 671, चौथे का मान (671 + 222 - 671 / 225) 890, पाँचवें का मान (890 + 219 - 890 / 225) 1105, छठे का मान (1105 + 215 - 1105 / 225) 1315 होता है। सातवें ज्यार्ध पिण्ड का मान (1315 + 210 - 1315 / 225) 1520, आठवें का मान (1520 + 205 - 1520 / 225)1719, नवें का मान (1719 + 199 - 1719 / 225) 1910, दसवें का मान (1910 + 191 - 1910 / 225) 2093 होता है।

ग्यारहवें ज्यार्ध पिण्ड का मान (2093 + 183 - 2093 / 225) 2267, बारहवें का मान (2267 + 174 - 2267 / 225) 2431, तेरहवें का मान (2431 + 164 - 2431 / 225) 2585, चौदहवें का मान (2585 + 154 - 2585 / 225) 2728 होता है।

पन्द्रहवें ज्यार्ध पिण्ड का मान (2728 + 143 - 2728 / 225) 2859, सोलहवें का मान (2859 + 131 - 2859 / 225) 2978, सत्रहवें का मान (2978 + 119 - 2978 / 225) 3084, अठारहवें मान का (3084 + 106 - 3084 / 225) 3177 होता है।

उन्नीसवें ज्यार्ध पिण्ड का मान (3177 + 93 - 3177 / 225) 3256, बीसवें का मान 3256 + 79 - 3256 / 225) 3321, इक्कीसवें का मान 3321 + 65 - 3321 / 225) 3372, बाईसवें का मान (3372 + 51 - 3372 / 225) 3409 होता है।

तेईसवें ज्यार्ध पिण्ड का मान (3409 + 37 - 3409 / 225) 3431 एवं चौबीसवें का मान (3431 + 36 - 3431 / 225) 3438 (त्रिज्या तुल्य) होता है। उत्क्रम (विपरीत क्रम से) ज्यार्ध पिण्डों को व्यासार्ध (3438) से घटाने पर 24 उत्क्रमज्याओं के मान ज्ञात हो जाते हैं।
प्रथम उत्क्रमज्या का मान त्रिज्या (3438) - (24 - 1)वां ज्यार्धपिण्ड (3431) = 7, द्वितीय उत्क्रमज्या का मान 3438 - (24 - 2)वां ज्यार्धपिण्ड (3409) = 29, तीसरी उत्क्रमज्या का मान 66, चौथी उत्क्रमज्या का मान 117, पाँचवीं उत्क्रमज्या का मान 182, छठी उत्क्रमज्या का मान 261, सातवीं उत्क्रमज्या का मान 354 होता है।
आठवीं उत्क्रमज्या का मान 460, नवीं उत्क्रमज्या का मान 579, दसवीं उत्क्रमज्या का मान 710, ग्यारहवीं उत्क्रमज्या का मान 853, बारहवीं उत्क्रमज्या का मान 1007, तेरहवीं उत्क्रमज्या का मान 1171 होता है।
चौदहवीं उत्क्रमज्या का मान 1345, पंद्रहवीं उत्क्रमज्या का मान 1528, सोलहवीं उत्क्रमज्या का मान 1719, सत्रहवीं उत्क्रमज्या का मान 1918 होता है।
अठारहवीं उत्क्रमज्या का मान 2123, उन्नीसवीं उत्क्रमज्या का मान 2333, बीसवीं उत्क्रमज्या का मान 2548, इक्कीसवीं उत्क्रमज्या का मान 2767 होता है।
बाईसवीं उत्क्रमज्या का मान 2989, तेईसवीं उत्क्रमज्या का मान 3213 एवं चौबीसवीं उत्क्रमज्या का मान 3438 (त्रिज्या तुल्य) होता है।

परमक्रान्तिज्या (3438 sin ∈) का मान 1317 कला होता है। परमक्रान्तिज्या से इष्टज्या (3438 sin l) को गुणाकर गुणनफल में त्रिज्या (3438) से भाग देने से लब्धि इष्ट क्रान्तिज्या (3438 sin δ होती है इसका चाप मान (arcsin) इष्टक्रान्ति (δ) होती है।
अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह को अपने अपने मन्दोच्च एवं शीघ्रोच्च से घटाने पर शेष क्रमशः मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र होते हैं। केन्द्र से पदज्ञान तथा पद से भुज और कोटि का ज्ञान किया जाता है।
विषम पद में गत चाप की जीवा भुजज्या तथा गम्य चाप की जीवा कोटि संज्ञक होती है। सम पद में (विपरीत) गम्य चाप की जीवा भुजज्या तथा गत चाप की जीवा कोटिज्या होती है।
जिस चाप की ज्या अभीष्ट हो, उस चाप की कला को 225 से भाग देने पर लब्धि गत ज्यापिण्ड होता है। शेष को ऐष्य (अग्रिम) ज्यापिण्ड और गत ज्यापिण्ड के अन्तर से गुणा कर गुणनफल को 225 से भाग दें।
इस प्रकार प्राप्त लब्धि को गत ज्यापिण्ड में जोड़ने से अभीष्ट चाप की ज्या होगी। यही ज्या साधन की विधि है तथा इसी प्रकार उत्क्रमज्या का भी साधन किया जाता है।
इष्टज्या से जितनी ज्या घट सके उन्हें घटाकर शेष को 225 से गुणाकर उसमें दोनों (गत और गम्य) ज्या के अन्तर से भाग देने पर प्राप्त लब्धि को शुद्ध ज्या संख्या और 225 के गुणनफल में जोड़ देने पर अभीष्ट चाप का मान हो जायेगा।
सम पदान्त में सूर्य का 14 एवं चन्द्रमा का 32 अंश मन्द परिध्यंश होता है। विषम पद में इससे 20

कला कम मन्द परिध्यंश होता है। अर्थात् विषम पद में सूर्य का 13 अंश 40 कला एवं चन्द्रमा का 31 अंश 40 कला मन्द परिध्यंश होगा।

भौमादि पाँच ग्रहों के क्रम से समपदान्त में 75, 30, 33, 12, 49 अंश मन्द परिध्यंश होते हैं तथा विषम पदान्त में क्रम से 72, 28, 32, 11 एवं 48 अंश मन्द परिध्यंश होते हैं।

समपदान्त में भौमादि ग्रहों के शीघ्र परिध्यंश क्रम से 235, 133, 70, 262, 39 अंश होते हैं।

विषम पदान्त में शीघ्र परिध्यंश क्रमशः 232, 132, 72, 260, 40 अंश होते हैं।

विषम और समपदान्त की मन्द अथवा शीघ्र परिधियों के अन्तर को मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र की भुजज्या से गुणाकर त्रिज्या से भाग देने पर प्राप्त लब्धि को समपदान्त परिधि में धन ऋण करने से स्फुट परिधि होती है। यदि केन्द्र समपदान्त में हो और विषमपदान्त की परिधि से समपदान्त की परिधि अल्प हो तो लब्ध फल का समपदान्त परिधि में धन संस्कार और इसके विपरीत ऋण संस्कार होगा।

इष्ट स्थानीय स्पष्ट परिधि से मन्दकेन्द्र भुजज्या को तथा केन्द्र कोटिज्या को गुणा कर भगणांश (360) से भाग देने पर क्रम से भुजफल एवं कोटिफल सिद्ध होंगे। भुजफल के चाप का कलादि मान मन्दफल होता है।

मकरादि छ राशियों (270 से 90 अंश) में यदि शीघ्रकेन्द्र हो तो शीघ्रकोटिफल का त्रिज्या में धन संस्कार करने से तथा कर्कादि छ राशियों (90 से 270 अंश) में शीघ्रकेन्द्र हो तो शीघ्रकोटिफल का त्रिज्या में ऋण संस्कार करने से स्पष्ट शीघ्रकोटि होती है।

शीघ्र भुजफल और शीघ्र कोटिफल के वर्ग योग का वर्गमूल स्फुट शीघ्रकर्ण होता है। भुजफल को त्रिज्या से गुणाकर चलकर्ण (शीघ्रकर्ण) से भाग दें।

इस प्रकार प्राप्त लब्धि का चाप कलादि शीघ्रफल होता है। यह शीघ्रफल भौमादि पञ्चताराग्रहों के प्रथम और चतुर्थ कर्म (संस्कार) में उपयोगी होता है।

सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करने के लिये केवल एक ही मन्दफल संस्कार किया जाता है। शेष भौमादि पञ्चतारा ग्रहों के लिये संस्कार विधि कह रहा हूँ। पहले शीघ्रफल पश्चात् मन्दफल पुनः मन्दफल फिर शीघ्रफल का संस्कार क्रम एवं अनुक्रम से करना चाहिये।

मध्यम ग्रह में पहले शीघ्रफल का आधा तदनन्तर मन्दफल का आधा तत्पश्चात् समग्र मन्दफल एवं समग्र शीघ्रफल का संस्कार किया जाता है।

सूर्यादि सभी ग्रहों के मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र मेषादि 6 राशियों में (0 से 180 अंश) हो तो मध्यम ग्रह में कलादि मन्दफल और शीघ्रफल का धन संस्कार तथा तुलादि केन्द्र (180 से 360 अंश) होने पर मध्यम ग्रह में ऋण संस्कार किया जाता है।

सूर्य के भुजफल (मन्दफल) को ग्रहगतिकला से गुणाकर गुणनफल को भचक्रकला ($360 \times 60 = 21600$ कला) से भाग देने पर जो कलात्मक लब्धि हो उसे भुजान्तर कहते हैं। उसका संस्कार अभीष्ट ग्रह में सूर्य मन्दफल के अनुसार करना चाहिये।

चन्द्रमा की मन्दोच्च गति से चन्द्रमा की मध्यम गति घटाने से शेष केन्द्र गति होती है। चन्द्र केन्द्र गति से आगे कही गई विधि द्वारा (दोर्ज्यान्तर गुणा इत्यादि) चन्द्रगतिफल का साधन कर चन्द्रमा की मध्यम गति से आगे निर्दिष्ट विधि द्वारा धन-ऋण करने से चन्द्रमा की स्पष्टागति होती है। स्पष्ट ग्रहसाधन हेतु जिस प्रकार मन्दफल का साधन किया जाता है उसी प्रकार मन्दगतिफल का भी साधन करना चाहिये। चन्द्रगतिफल साधन में चन्द्रमा की मन्दकेन्द्रगति तथा अन्य ग्रहों की मध्यमा गति को गत-गम्य भुजज्याओं के अन्तर से गुणा कर 225 से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो उसे मन्दपरिधि से गुणा कर भगणांश (360 अंश) से भाग देने पर प्राप्त कलादि लब्धि को कर्कादि केन्द्र होने पर (90 से 270 अंश) मध्यम गति में जोड़ने तथा मकरादि केन्द्र होने पर (270 से 90 अंश) मध्यम गति से घटाने पर ग्रहों की स्पष्टा गति होती है।

ग्रहों की मन्दस्पष्ट गति को अपनी-अपनी शीघ्रोच्चगति से घटाकर शेष को त्रिज्या और अन्त्य कर्ण के अन्तर [{(90 - शीघ्रफल) - फलकोज्या} ~ अन्त्य कर्ण = शेष] से गुणा कर चलकर्ण से भाग देने पर प्राप्त लब्धि शीघ्रगतिफल होती है।

शीघ्रकर्ण यदि त्रिज्या से अधिक हो तो फल धन और अल्प हो तो फल ऋण होता है। मन्दस्पष्ट गति में शीघ्रगतिफल का धन ऋण संस्कार करने से स्पष्ट गति होती है। यदि ऋण शीघ्रगतिफल मन्दस्पष्ट गति से अधिक हो तो शीघ्रगतिफल से मन्दस्पष्ट गति को घटाने पर जो शेष रहे वह ग्रह की वक्र गति होती है।

अपने शीघ्रोच्च से दूर (90 अंश से अधिक दूरी पर) स्थित होने पर शीघ्रोच्च रश्मियों के शिथिल हो जाने से अर्थात् शीघ्रोच्चजन्य आकर्षण शक्ति के शिथिल हो जाने पर ग्रह वाम भाग में (अन्य नीच स्थानीय आकर्षण शक्ति के प्रभाव से) आकृष्ट होकर वक्री हो जाते हैं।

भौमादि ग्रह अपने अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्र से क्रमशः 164, 144, 130, 163 तथा 115 अंशों पर होते हैं तो इनका वक्रगतित्व आरम्भ होता है। उक्त शीघ्र केन्द्रांशो को चक्र (360 अंश) में घटाने से अवशिष्ट अंशों के तुल्य ग्रह होने पर ग्रह वक्र गति का त्याग करते हैं अर्थात् मार्गी हो जाते हैं।

मन्दपरिधि की अपेक्षा शीघ्रपरिधि के बड़ी होने से शुक्र और मंगल अपने केन्द्र से सातवीं राशि में, गुरु और बुध आठवीं राशि में, तथा शनि नवम राशि में अपना वक्रत्व त्याग देते हैं।

अहर्गणोत्पन्न भौम शनि और गुरु के पातों में ग्रहवत् शीघ्रफल का संस्कार करना चाहिये। बुध और शुक्र के पातों का तृतीय संस्कार अर्थात् मन्दफल का विपरीत संस्कार करना चाहिये।

भौमादि स्पष्ट ग्रहों व शुक्र-बुध के शीघ्रोच्चों को अपने अपने पातों से रहित कर शेष की जीवा (ज्या) को विक्षेप (शर) से गुणाकर अन्त्यकर्ण (शीघ्रकर्ण, चन्द्रमा के लिये त्रिज्या) से भाग देने से कलात्मक लब्धि क्रान्तिसंस्कार योग्य शर होता है।

विक्षेप (शर) और मध्यमक्रान्ति की एक ही दिशा हो तो विक्षेप और क्रान्ति का योग करने से स्पष्ट क्रान्ति होती है और भिन्न दिशा होने पर अन्तर स्पष्ट क्रान्ति होती है। सूर्य की गणितागत क्रान्ति ही स्फुट क्रान्ति होती है।

अभीष्ट ग्रह की स्पष्टगति को ग्रहनिष्ठ राश्युदयासुओं (सायन ग्रह जिस राशि पर हो उस राशि के उदयमान) से गुणा कर 1800 से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो उसे चक्रकला (21600) में जोड़ने पर अभीष्ट ग्रह के अहोरात्रासु होते हैं।

स्फुटक्रान्ति से ज्या ($3438 \sin \delta$ और उत्क्रमज्या ($3438 - 3438 \cos \delta$ दोनों का साधन कर त्रिज्या (3438) में से उत्क्रमज्या को घटाने से शेष ($3438 \cos \delta$ अहोरात्रवृत्त का व्यासार्द्ध होता है जिसे द्युज्या कहते हैं। यह व्यासार्द्ध दक्षिणक्रान्ति होने पर दक्षिणगोल का व उत्तरक्रान्ति होने पर उत्तरगोल का होता है। क्रान्तिज्या ($3438 \sin \delta$ को पलभा ($12 \tan \varphi$) से गुणा कर गुणनफल में 12 का भाग देने पर लब्धि ($3438 \sin \delta \tan \varphi$) क्षितिज्या (कुज्या) होती है। इसे त्रिज्या (3438) से गुणाकर द्युज्या ($3438 \cos \delta$ से भाग देने पर लब्धि ($3438 \tan \delta \tan \varphi$) चरज्या ($3438 \sin C$) होती है और इसका चाप (arcsin) चर (C) संज्ञक होता है।

उक्त चरज्या को चापात्मक बनाने से चरासु होते हैं। उत्तर क्रान्ति होने पर चरासु को अहोरात्रासु के चतुर्थांश में जोड़ने से दिनार्ध तथा घटाने से रात्र्यर्ध काल होता है। दक्षिण क्रान्ति होने पर इसके विपरीत संस्कार किया जाता है।

दोनों को द्विगुणित करने पर क्रम से दिनमान और रात्रिमान होते हैं। इसी प्रकार विक्षेप को क्रान्ति में धन ऋण कर (चर साधन द्वारा) नक्षत्रों का दिन रात्रि मान ज्ञात करना चाहिये।

भभोग अर्थात् नक्षत्र का भोग ($360 \times 60 / 27 =$) 800 कला तथा तिथि का भोग ($360 \times 60 / 30 =$) 720 कला होता है। स्पष्ट ग्रह के राश्यादि मान की कला को नक्षत्रभोग 800 से भाग देने पर लब्धि गत नक्षत्र होता है। शेष कला से ग्रह गति द्वारा गतगम्य दिनादि का साधन करना चाहिये।

सूर्य और चन्द्रमा के योग की कलाओं को भभोग 800 से भाग देने पर लब्धि गत विष्कुम्भादि योग होते हैं। शेष को 60 से गुणा कर रवि चन्द्र के गति योग से भाग देने पर वर्तमान योग का गत-गम्य काल होता है।

सूर्य रहित चन्द्रमा की कला को तिथि भोग 720 से भाग देने पर लब्धि गत तिथि होती है। शेष को 60 से गुणा कर रवि-चन्द्र गत्यन्तर से भाग देने पर वर्तमान तिथि का गत-गम्य मान होता है।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध से क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग, तथा किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण होते हैं।

तदनन्तर बव आदि सात चर करण होते हैं। एक मास में बवादि करण आठ बार आते हैं।

प्रत्येक करण का भोगमान तिथ्यर्ध तुल्य होता है अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं। इस प्रकार सूर्यादि ग्रहों की स्पष्ट गति कही गई है।

4.4 सारांश

ग्रहस्पष्टीकरण ज्योतिष शास्त्र का अभिन्न इकाई है, जिसके आधार पर ही ज्योतिषीय फलादेश कर्त्तव्य करते है । ग्रहस्पृष्टीकरण में विभिन्न संस्कार होते है, उसी में फल संस्कारविधि का

अध्ययन आप प्रस्तुत इकाई में करेंगे। सैद्धान्तिक स्तर पर आप ग्रहानयन की समस्त फलों का साधन एवं विध इस इकाई में जानेंगे। आशा हैं कि पाठक गण इस प्रक्रिया को समझ कर अपने आप को ग्रहानयन करने की विधा में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहगति – ग्रहों की गति

ग्रहसाधन - ग्रहों की स्थिति ज्ञापकार्थ साधन

चालन – ग्रहस्पष्टीकरण के अन्तर्गत किया जाने वाला संस्कार

फल संस्कार - ग्रहस्पष्टीकरण में मन्द फल, शीघ्रफल आदि किया जाना वाला संस्कार

मन्दफल - मध्यम और मंदस्पष्ट ग्रह का अंतर मंदफल होता है।

शीघ्रफल - कक्षावृत्त में मध्यम और स्पष्ट ग्रह का अन्तर

चरफल - चरसंस्कारित फल।

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. ख
2. ग
3. ख
4. ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
2. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र - रंजन पब्लिकेशन्स
3. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
4. ज्योतिष रहस्य
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा विद्याभवन

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान
2. ज्योतिष रहस्य
3. ताजिकनीलकण्ठी - पं सीताराम झा - चौखम्भा विद्याभवन

4. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास

5. जन्मपत्रव्यवस्था

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. फल संस्कार विधि को समझाते हुये स्पष्ट करें।
2. ग्रहस्पष्ट का विस्तार से वर्णन कीजिए।

खण्ड - 2

चन्द्रस्पष्टीकरण

इकाई – 1 गत एवं जन्म नक्षत्र ज्ञान

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गत एवं जन्म नक्षत्र ज्ञान

1.3.1 नक्षत्र परिचय

1.3.2 वर्तमान एवं गत नक्षत्र की परिभाषा एवं स्वरूप

1.3.3 वर्तमान एवं गत नक्षत्र का महत्व

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

नक्षत्र ज्योतिष शास्त्र की एक अभिन्न इकाई है, जिसके ज्ञानाभाव में हम इस शास्त्र को यथार्थ रूप में समझ नहीं सकते। अतः प्रस्तुत इकाई 'नक्षत्र' ज्ञान से सम्बन्धित हैं। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने राशियों, ग्रहों, एवं उनके स्पष्टीकरण से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया है। इस इकाई में हम विशेष रूप से गत एवं जन्म नक्षत्र के ज्ञान का विवेचन करेंगे।

ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत **जन्म नक्षत्र** उसे कहते है जिस नक्षत्र में जातक का जन्म होता है इसे **वर्तमान नक्षत्र** भी कहते है। जन्म नक्षत्र के ठीक पहले वाला नक्षत्र को **गत नक्षत्र** के नाम से जाना जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि नक्षत्र क्या हैं ? गत एवं जन्म नक्षत्र से आप क्या समझते है? कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत हम गत एवं जन्मनक्षत्र साधन का बोध कैसे करते है।

1.2 उद्देश्य -

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत नक्षत्रों का बोध कराने से है। अधोलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है -

1. नक्षत्र क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. नक्षत्र का संपूर्ण मान कितना होता है? इसका बोध करेंगे।
3. जन्म नक्षत्र से आप क्या समझते है? इसे बता सकेंगे।
4. गत नक्षत्र क्या है ? इसे समझा सकेंगे।
5. गत नक्षत्र एवं जन्म नक्षत्र के महत्व को समझ सकते है।
6. गत एवं जन्म नक्षत्र ज्ञान से कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में इसके आगे की गतिविधयों का ज्ञान करने में समर्थ हो सकेंगे।
7. यदि किसी जातक का जन्म एक नक्षत्र में हो तो इसका स्पष्टीकरण करनें में समर्थ हो सकेंगे।

1.3 गत एवं जन्म नक्षत्र ज्ञान

1.3.1 नक्षत्र परिचय

ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र का महत्व सर्वविदित है। नक्षत्र पंचांग के पॉच अंगों में एक महत्वपूर्ण अंग है। तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण ये पंचांग के पॉच अंग है। यथोक्तम् -

तिथिर्वारं च नक्षत्रं योगः करणमेव च।
इति पंचांगमाख्यातं व्रतपर्वनिदर्शकम्॥

इन पॉच अंगों में नक्षत्र का विवेचन हम यहॉ इस इकाई में करते है। न क्षरतीति नक्षत्रम् । यहॉ 'क्षरति' शब्द से तात्पर्य चलने से है। अर्थात् आकाशस्थ राशियों (तारों) का समूह जो चलता नहीं, स्थिर हैं, उसे नक्षत्र कहते है। वस्तुतः नक्षत्रों में भूसापेक्षिक गति होती है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त या राशिचक्र पर मेष राशि के 0^0 से प्रारम्भ करके प्रत्येक 13^0-20' के अन्तराल से कुल 27 भाग होते हैं। 13^0- 20'× 27 = 3600। प्रत्येक अन्तराल को नक्षत्र की संज्ञा दी गयी है। एक राशि में सवा दो नक्षत्र 3013^0-20' = 2 पूर्णांक1/4 होते हैं। राशि के खण्ड रूप इस नक्षत्र में अनेक तारे होते है। लेकिन उन तारों में से किसी एक महत्वपूर्ण या सर्वाधिक चमकीले तारे के नाम पर पूरे खण्ड का नाम रखा गया है। आकाश मण्डल में क्रान्तिवृत्त (रविभ्रमणमार्ग) के दोनों ओर 8-8 अंश की दूरी पर एक काल्पनिक वृत्त बनाने पर सभी सातों ग्रह इसी वृत्त में भ्रमण करते हुए दृष्टिगोचर होते है, इसे भचक्र कहा जाता है। जहॉ ग्रह भ्रमण करते है, इनके पीछे तारों के पुंज दृष्टिगोचर होते हैं जो एक निश्चित आकृति जैसे - **वृषभ, शकट, हस्त, चक्र, त्रिकोण, हल** आदि बनाते है, तारों के इन समूहों को नक्षत्र कहते है। इनको अपने-अपने तारों के समूह के आधार पर 27 भागों में विभाजित किया गया है, जो 27 नक्षत्रों के नाम से जाने जाते है, और ये सभी सूर्य की भॉति प्रकाशमान है। यदि निरयणराशि चक्र को 27 समान भागों में विभक्त करें तो एक भाग का मान 13 अंश 20 कला आता है जो एक नक्षत्र का मान होता है। प्रत्येक नक्षत्र को आगे 4 भागों में विभाजित किया गया है, जो एक नक्षत्र के पद या चरण कहलाते है। अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, स्वाती, चित्रा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद तथा रेवती पर्यन्त (अभिजित् नक्षत्र को छोड.कर) 27 नक्षत्र होते है। इसका विस्तार से अध्ययन पूर्व के इकाईयों में किया जा चुका है।

1.3.2 वर्तमान एवं गत नक्षत्र की परिभाषा एवं स्वरूप

गत नक्षत्र -

जातक का जन्म जिस नक्षत्र में हुआ हैं उसके ठीक पहले वाला नक्षत्र को **गत नक्षत्र** के नाम से जाना जाता है। पंचांग में जिस नक्षत्र का उल्लेख होता है, वह वास्तव में चन्द्रमा का नक्षत्र है। अर्थात् तिथि व वार के बाद जो नक्षत्र दिए रहते हैं, उनसे तात्पर्य हैं कि उक्त दिन चन्द्रमा उस नक्षत्र में है। **'षष्टिघट्यात्मक नाक्षत्रमानं भवति'**। अर्थात् नक्षत्र का मान 60 घटी के तुल्य होता है। गत नक्षत्र में गत शब्द का तात्पर्य हैं - पीछे वाला अर्थात् पूर्व दिन का नक्षत्र। पंचांग में प्रतिदिन के नक्षत्रों का नाम एवं मान दिये होते हैं। 60 घटी तुल्य हम नाक्षत्र मान की गणना करते है।

जन्म नक्षत्र - जातक का जन्म जिस नक्षत्र में होता हैं, **उसे जन्म नक्षत्र** कहते है। 60 घटी (24घण्टे) तुल्य नक्षत्र मान से हम इसकी गणना करते है। यथा किसी जातक का जन्म पुष्य नक्षत्र में हुआ है तो उसके लिए गत नक्षत्र पुनर्वसु नक्षत्र के रूप में जाना जाएगा। तथा पुष्य नक्षत्र को जन्म

नक्षत्र के रूप में।

नक्षत्र ज्ञापक स्पष्टीकरण -

सुविदित हैं कि पंचांग में जिस नक्षत्र का उल्लेख होता हैं वह चन्द्रमा का नक्षत्र होता है। चन्द्रमा का स्पष्ट राश्यादि जब 0.0^0 होता है, तब से $13^0.20'$ तक अश्विनी नक्षत्र, तत्पश्चात् $26^0.40'$ तक भरणी इत्यादि क्रम से रेवती के प्रारम्भ में 3460.40' से 360^0 तक 12 राशियॉ या 360^0 या 21600 कला समाप्त कर चन्द्रमा अपना भगण (राशिचक्र की सम्पूर्ण परिक्रमा) पूरा कर लेता है, अतः प्रतिदिन सूर्योदयके समय के सूर्य व चन्द्र स्पष्ट से जिस प्रकार तिथि जानी जाती है, उसी प्रकार सूर्योदय के स्पष्ट चन्द्रमा से प्रतिदिन का नक्षत्र जाना जा सकता है। इस बात को हम एक उदाहरण से समझ सकते है।

दिनांक 16 जून 2011 को प्रातः 5:30 A.M. के सूर्य, चन्द्र स्पष्ट हमें ज्ञात है। तदनुसार चन्द्र स्पष्ट-सूर्यस्पष्ट 8.10^0 .25'-$2.1^0.20'$= $6.9^0.05.05'$ या $189^0.05'$ चन्द्रमा व सूर्य का अन्तर है। इसे 12^0 से भाग दिया (1तिथि=12^0) तो 15 लब्धि हुई तथा शेष $9^0.05'$ है। अतः स्पष्ट हुआ कि उस समय 15 वीं तिथि पूर्णिमा समाप्त हो चुकी थी तथा 16वीं तिथि अर्थात् प्रतिपदा का $9^0.05'$भाग भी बीत चुका था। इसी तरह 12^0 - $09^0.05'$ = $2^0.55$ या 175' तिथि कृष्ण प्रतिपदा और शेष थी। यह कितने बजे समाप्त होगी, एतदर्थ अनुपात से समय जाना जाता है। 17 जून को प्रातः सूर्य व चन्द्र स्पष्ट के अन्तर में से 16 जून का संयुक्तान्तर घटाने से चन्द्रमा व सूर्य की सम्मिलित दैनिक गति का अन्तर होता है जो कि $11^0.12'$ या 672' कला है। अतः 672'=24 घंटे तो 175'= ? अनुपात किया तो 24 × 175'/672' = 6 घंटे 15 मिनट। अर्थात् प्रातः 5.30 बजे से आगे 6 घंटे 15 मिनट तक अर्थात् 11:45 बजे तक 16 जून 92 को प्रतिपदा तिथि ही रहेगी। इसकी पुष्टी हम किसी भी मान्य पंचांग को देखकर कर सकते है। उस दिन विश्व विजय पंचांग व लहरी पंचांग में प्रतिपदा का समाप्ति काल 11.43 लिखा है जो कि हमारी गणना से लगभग मेल खाता है।

इसी प्रकार उस दिन नक्षत्र जानना है। एक नक्षत्र = $13^0.20'$ या 800' कला है। उस दिन चन्द्रस्पष्ट $8.10^0.25'$ या 15025' कला है। इसे 800 से भाग दिया तो लब्धि 18 व शेष 625 है। अतः 18 वॉ नक्षत्र ज्येष्ठा समाप्त होकर उन्नीसवॉ मूल नक्षत्र प्रातः 5.30 बजे विद्यमान था। उसकी भी 800'-625' = 175' शेष थी। 175' कला को चन्द्र की दैनिक गति से अनुपात करने से तिथि की तरह नक्षत्र का समाप्ति कला आ जाएगा। दैनिक गति $12^0.9'$ या 729' स्थूलतया 730' है। अनुपात किया तो 24×175'/730'=5 घंटे 55 मिनट तक या 11.25 बजे तक मूल रहेगा। लेकिन इसमें थोड़ी स्थूलता रहती है। फिर भी एक तात्कालिक अनुमान तुरन्त लग सकता है। इसी पद्धति से प्रत्येक ग्रह स्पष्ट से उसकी नक्षत्र स्थिति भी जानी जा सकती है।

जन्मनक्षत्र एवं गत नक्षत्र का बोध -

दिनांक 17 सितम्बर 2012 को किसी जातक का जन्म हस्त नक्षत्र में हुआ है। हृषीकेश पंचांग के अनुसार हस्त नक्षत्र का मान उस दिन 50 घटी 43 पल है, जो कि रात्रि 2 बजकर 30 मिनट तक है तथा 16 सितम्बर 2012 को गत नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी का मान 53 घटी 14 पल है जो कि रात्रि 3 बजकर 13 मिनट तक है। इस आधार पर हमें वर्तमान एवं गत नक्षत्र जानना है।

जातक का जन्म जिस नक्षत्र में हुआ है उस नक्षत्र का आरम्भ कब हुआ है तथा उसका अन्त कब होगा यदि इसका ज्ञान हो जाए तो हम स्पष्टतः जन्मनक्षत्र को जान सकते है तथा इसी प्रकार से गत नक्षत्र का बोध भी कर लेंगे। इस प्रकार से 16 सितम्बर 2012 को रात्रि 3 बजकर 14 मिनट से लेकर अगले दिन 17 सितम्बर 2012 को रात्रि 2 बजकर 30 मिनट तक हस्त नक्षत्र का मान है । इस कालावधि में किसी जातक का जन्म होता है, तो उसका जन्म हम हस्त नक्षत्र में जानेंगे तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र उसके लिए गत नक्षत्र के रूप में होगा।

सुस्पष्टम् - गत एवं वर्तमान नक्षत्र की परिभाषा इस प्रकार से है ।

वर्तमान नक्षत्र - जन्म के समय का जो नक्षत्र हो उसे वर्तमान नक्षत्र कहते है।

गत नक्षत्र - वर्तमान नक्षत्र के पहले का नक्षत्र को गत नक्षत्र कहते है।

अभ्यास प्रश्न - 1.

निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए।

1. नक्षत्रों की संख्या होती है।

(क) 25 (ख) 26 (ग) 27 (घ) 28

2. 'क्षरति' शब्द से तात्पर्य है।

(क) दौड़ना (ख) चलना (ग) कूदना (घ) स्थिर रहना

3. नाक्षत्र मान तुल्य होता है।

(क) 40 घटी का (ख) 50 घटी का (ग) 60 घटी का (घ) 70 घटी का

4. गत नक्षत्र का अर्थ है।

(क) आगे वाला नक्षत्र (ख) वर्तमान नक्षत्र (ग) पीछे वाला नक्षत्र (घ) सम्पूर्ण नक्षत्र

5. एक नक्षत्र होता है।

(क) 12 अंश का (ख) 14 अंश का (ग) 13 अंश 20 कला का (घ) 13 अंश का

6. एक नक्षत्र में कितने कलाए होती है।

(क) 720 कला (ख) 800 कला (ग) 900 कला (घ) 500 कला

7. पुष्य नक्षत्र का नक्षत्रों में कौन सा क्रम है।

(क) 8 वॉ (ख) 7 वॉ (ग) 5 वॉ (घ) 6 वॉ

8. पंचांग में अंग होते है।

(क) 4 (ख) 5 (ग) 6 (घ) 7

1.3.3 वर्तमान एवं गत नक्षत्र का महत्व -

संपूर्ण ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र ज्ञान का समावेश है अतः इससे इसकी महत्व और बढ. जाती है इसीलिए इसका ज्ञान होना परमावश्यक है। जब तक हम नक्षत्रों का ज्ञान नहीं कर पायेंगे तब तक ज्योतिष शास्त्र के किसी भी स्कन्ध को समझ नहीं पायेंगे। यथा सिद्धान्त, संहिता तथा होरा तीनों स्कन्धों में नक्षत्रों की आवश्यकता है। सर्वप्रथम सिद्धान्त स्कन्धों में हम इसकी आकाशीय गतिविधियों को समझते हैं तदनन्तर होरा एवं संहितादि स्कन्धों में इसका प्रयोग विभिन्न ज्ञान एवं विज्ञान में करते है। गत एवं वर्तमान नक्षत्र का उपयोग संक्षिप्त में निम्नलिखित स्थलों पर करते है -

1. पंचांग ज्ञान में
2. कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में
3. फलादेश आदि में
4. गणितादि क्रियाओं में
5. जातक के नामकरण संस्कार में

नक्षत्र सम्बन्धि विभिन्न विचार

एक नक्षत्र जन्म विचार - यदि किसी जातक का जन्म नक्षत्र ही माता, पिता या भाई बहन का भी जन्म नक्षत्र हो तो वह अशुभ होता है। ऐसी अवस्था में शास्त्रों में एक का विनाश लिखा हैं । इस अवस्था में थोड़ी कमजोर ग्रह स्थिति वाला अपेक्षाकृत पिछड़ा रहता है, लेकिन दोनों ही वास्तव में सम्पूर्ण शुभ फलों का भोग नहीं कर पाते।

इसकी शान्ति करनी चाहिए। एतदर्थ शुभ दिन में नक्षत्र के अधिपति देवता का पूजन धातु की मूर्ति बनवा कर करें। उस मूर्ति को पहले लाल कपडे में लपेट कर उपर से वस्त्र रखकर कलश स्थापित करें। ग्रहादि पूजनोपरान्त पंचवारूणी होमानन्तर नक्षत्र देवता के मन्त्र की 108 आहुतियॉ दें। पश्चात् कलशाम्बु से सभी का अभिषेक करें। यह एक नक्षत्र जन्म विचार सर्वदा करना चाहिए। यदि कृष्णपक्ष का जन्म हो तो तारा विचार करना आवश्यक है। जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र ये तारायें प्रसिद्ध है। इनकी संख्या 9 है।

नक्षत्रों के स्वामी - प्रत्येक नक्षत्रों के अलग - अलग स्वामी होते है जिसका विवेचन इस प्रकार से है -

अश्विनी - अश्विनी कुमार, भरणी - यम, कृत्तिका - अग्नि, रोहिणी - ब्रह्मा, मृगशिरा - चन्द्रमा, आर्द्रा

रूद्र, पुनर्वसु - अदिति, पुष्य - वृहस्पति, आश्लेषा - सर्प, मघा - पितर, पूर्वाफाल्गुनी - भग, उत्तराफाल्गुनी - अर्यमा, हस्त - रवि, चित्रा - त्वष्टा(विश्वकर्मा), स्वाती - वायु, विशाखा - इन्द्राग्नी, अनुराधा - मित्र, ज्येष्ठा - इन्द्र, मूल -निऋति(राक्षस), पूर्वाषाढ़ा - जल, उत्तराषाढ़ा - विश्वेदेवा, श्रवण - विष्णु, धनिष्ठा - वसु, शतभिषा - वरूण, पूर्वाभाद्रपद - अजपाद, उत्तराभाद्रपद - अहिर्बुध्न्य, रेवती - पूषा।

आकाश में नक्षत्र दर्शन -

कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, चित्रा, श्लेषा, रेवती, शतभिषा, धनिष्ठा, व श्रवण ये नौ नक्षत्र आकाश के मध्य में दिखते है।

अश्विनी, भरणी, स्वाती, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मघा, पूर्वाभाद्रपद, व उत्तराभाद्रपद आकाश में उत्तर की ओर व शेष नक्षत्र पुनर्वसु, मृगशिरा, आर्द्रा, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा,उत्तराषाढ़ा,मूल आकाश में दक्षिण की ओर दिखलाई पड़ते है।

पंचक नक्षत्र - धनिष्ठा के उत्तरार्ध से लेकर रेवती तक के साढ़े चार नक्षत्रों के समूह को पंचक नक्षत्र का नाम दिया गया है। अर्थात् कुम्भ व मीन राशि के चन्द्रमा की स्थिति पंचक संज्ञक होती है।

उपर्युक्त पंचक नक्षत्रों में इमारती सामान खरीदना, चारपाई बनाना, घर की छत डलवाना, दक्षिण दिशा की यात्रा, शवदाह नहीं करना चाहिए। कहा जाता हैं कि इन पंचकों में किया गया कार्य निकट भविष्य में पॉच बार करना पड़ सकता है।

गण्डादि विचार -

मूल, ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, अश्विनी व मघा ये 6 नक्षत्र गण्डमूल नक्षत्र कहलाते है। इनमें उत्पन्न जातक को विविध प्रकार के अरिष्ट दोष व्याप्त होते है। अतः सत्ताईसवें दिन उसी नक्षत्र के पुनः आने पर शास्त्रोक्त शान्ति विधान करके बालक का मुख देखना चाहिए।

1.4 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे कि नक्षत्र किसे कहते है। गत एवं वर्तमान नक्षत्र का ज्ञान हम विभिन्न रूपों में किस प्रकार करते है। ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्रों के स्वरूपों का अध्ययन कैसे करते है तथा इसका महत्व क्या हैं ? कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में अथवा पंचांग में लिखित नक्षत्रों का ज्ञान किस प्रकार से होता है।

1.5 पारिभाषिक शब्द

पंचांग, नक्षत्र, गत नक्षत्र, वर्तमान नक्षत्र, भचक्र ।

अभ्यास प्रश्न - 2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक शब्द में दीजिए -

1. एक नक्षत्र का मान कितने अंश के बराबर होता है।
2. भचक्र का मान कितना होता है।
3. नक्षत्रों की संख्या कितनी है।
4. भचक्र किसे कहते है।
5. पंचांग में कितने अंग होते है।

1.6 अभ्यास प्रश्न 1 (वैकल्पिक प्रश्नों) का उत्तर

1. ग
2. ख
3. ग
4. ग
5. ग
6. ख
7. क
8. ख

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर -

1. 13 अंश 20 कला
2. 360^0
3. 27
4. राशिचक्र
5. 5

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल ओझा - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
2. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र - रंजन पब्लिकेशन्स
3. ताजिकनीलकण्ठी - पं सीताराम झा - चौखम्भा विद्याभवन
4. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा विद्याभवन
7. नक्षत्रविद्या - प्रो.सच्चिदानन्द मिश्र - भारतीय विद्या प्रकाशन

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री -

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान
2. ज्योतिष रहस्य
3. ताजिकनीलकण्ठी - पं सीताराम झा - चौखम्भा विद्याभवन
4. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
5. जन्मपत्रव्यवस्था

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. नक्षत्र को परिभाषित करते हुए गत एवं जन्म नक्षत्र का विवेचन करें।
2. नक्षत्रों के नाम लिखते हुए उसके महत्वों पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 2 भयात - भभोग साधन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

सुविदित है कि ज्योतिष शास्त्र में विशेष रूप से कुण्डली निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत भयात एवं भभोग का प्रयोग होता है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने जन्मसमय से इष्टकाल साधन तथा गत नक्षत्र एवं जन्म नक्षत्र के बारें में अध्ययन किया होगा। इस इकाई में हम भयात एवं भभोग का ज्ञान कैसे होगा, इसका विवेचन करेंगे।

ज्योतिष शास्त्र के अन्तगत भयात शब्द का अर्थ है 'भ' अर्थात् नक्षत्र तथा 'यात' का अर्थ बीता हुआ होता है इस प्रकार नक्षत्र का वह मान जो बीत गया हो उसे भयात की संज्ञा दी गयी है और नक्षत्र के संपूर्ण मान को भभोग कहते है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि भयात एवं भभोग क्या हैं ? भयात एवं भभोग से आप क्या समझते है? कुण्डली निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत भयात एवं भभोग का साधन कैसे किया जाता है इस विषय का निरूपण कर सकेगें।

2.2 उद्देश्य -

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत भयात एवं भभोग का बोध कराने से है। निम्नलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है ..

1. भयात क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. भभोग क्या है? इसका बोध करेंगें।
3. भयात एवं भभोग का साधन कैसे किया जाता है? इसका ज्ञान कर पायेंगें।
4. भयात एवं भभोग का मान कितना होता है इसका गणितीय विवेचन कर पायेंगे।
5. कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में भयात एवं भभोग के महत्व को समझ पायेंगे।

2.3 भयात-भभोग साधन - परिचय

'भ' अर्थात् नक्षत्र का यात अर्थात् बीता हुआ भाग भयात या भुक्तर्क्ष कहलाता है। इसी प्रकार 'भ' (नक्षत्र) का भोग अर्थात् सम्पूर्ण मान भभोग कहलाता है। पंचांग में दिए हुए दैनिक नक्षत्र चन्द्रमा के संचार के ही नक्षत्र है। इसी कारण नक्षत्र के मान द्वारा ही चन्द्रस्पष्टीकरण किया जाता है। नक्षत्रों के वर्तमान एवं गत मान अथवा संपूर्ण नक्षत्र के मान को जानने के लिए भयात एवं भभोग के संस्कार की आवश्यकता होती है। कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में अथवा पंचांग में उद्धृत नक्षत्र ज्ञान में इसका विवेचन द्रष्टव्य है।

2.3.1 भयात एवं भभोग की परिभाषा एवं स्वरूप

नक्षत्रारम्भतः स्वेष्ठकालं यावत् गतं भवेत्।

घटयादिकं भयातं तत् भस्य भोगो भभोगकः।।

भयात - नक्षत्र जब से आरम्भ होता है तब से इष्टकाल पर्यन्त जितना घटी पल व्यतीत हुआ हो वह भयात कहलाता है

भभोग - नक्षत्र के आरम्भ से अन्त पर्यन्त (सम्पूर्ण मान) भभोग कहलाता है।

भयात = गतर्क्ष = भुक्त नक्षत्र = नक्षत्र के जितने घडी पल भुक्त हुए हों अर्थात् बीत गये हों ।

भोग्य = भोग्यर्क्ष = नक्षत्र की शेष घड़ी जो भुक्त होने को बची हों।

सर्वर्क्ष = भभोग = सम्पूर्ण नक्षत्र का भोग = पूर्ण भोग काल।

भभोग = (60 घटी - गत नक्षत्र की घटी पल) + वर्तमान नक्षत्र की घटी पल ।

वर्तमान नक्षत्र = जन्म के समय का जो नक्षत्र हो।

गत नक्षत्र = वर्तमान नक्षत्र के पहले का जो नक्षत्र हो।

2.3.2 भयात एवं भभोग का गणितीय सूत्र एवं साधन

भयात साधक सूत्र -

(60 घटी - गत नक्षत्र की घटी पल) + इष्टकाल = यदि दूसरे दिन का जन्म है। यदि उसी दिन का जन्म है तो = इष्टकाल - गत नक्षत्र की घटी पल ।

भभोग साधक सूत्र -

भभोग = (60 घटी - गत नक्षत्र की घटी पल) +वर्तमान नक्षत्र की घटी पल।

भयात एवं भभोग साधन

गतर्क्षनाड़ीखरशेषु शुद्धा सूर्योदयादिषुघटीषु युक्ता।

भयात संज्ञा भवतीह तश्च निजर्क्षनाड़ीसहितो भभोगः।।

साधन क्रम -

1. गत नक्षत्र की घटी पलों को 60 घटी में से घटाकर शेष को दो स्थानों पर रखें।
2. एक स्थान पर इष्टकाल जोड़ने से भयात होगा तथा अन्यत्र वर्तमान नक्षत्र का पंचांगस्थ मान जोड़ने से 'भभोग' ज्ञात हो जाता है।

उदाहरण -

दिनांक 17 सितम्बर 2012 का हृषीकेश पंचांग के अनुसार -

कल्पित जन्म समय के आधार पर माना कि इष्टकाल = 8.20

गत नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी) का मान = 53.14

वर्तमान नक्षत्र (हस्त) का मान = 50.43

सूत्र से,

60.00
- 53.14 - गत नक्षत्र का मान

6.46
+ 50.43 - वर्तमान नक्षत्र हस्त का मान

57.29 - भभोग

6.46
+ 8.20 - इष्टकाल

15.6 - भयात

उपर्युक्त गणितीय प्रकार से भयात और भभोग का साधन किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य/असत्य का चयन कीजिए।

1. भयात शब्द में 'भ' का अर्थ होता है नक्षत्र।
2. जन्म समय का जो नक्षत्र हो उसे गत नक्षत्र कहते है।
3. 60 - गतनक्षत्र + इष्टकाल = भयात
4. 60 - गतनक्षत्र + वर्तमान नक्षत्र = भभोग
5. नक्षत्र के संपूर्ण मान को भभोग कहते है।
6. भयात का उपनाम भुक्तर्क्ष है।
7. नक्षत्रों के मान से चन्द्रस्पष्टीकरण नहीं होता।
8. नक्षत्र का संबंध पंचांग से होता है।

2.3.3 भयात एवं भभोग का महत्व

ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत भयात एवं भभोग का अध्ययन विशेष रूप से नक्षत्र ज्ञान एवं चन्द्रस्पष्ट हेतु किया जाता हैं। वर्तमान एवं गत नक्षत्र की स्थिति का अध्ययन भी भयात एवं भभोग के ज्ञान द्वारा ही किया जाता है। कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में भयात एवं भभोग का साधन किया जाता है। किसी भी जातक के नामकरण संस्कार में प्रथम नामाक्षर जानने के लिए भी भभोग का ज्ञान आवश्यक हैं। एक नक्षत्र में 9 चरण होते है। नक्षत्र चरण से ही नामकरण संस्कार किया जाता है। भभोग में 4 का भाग

देकर चरण ज्ञान कर ज्योतिष शास्त्र में किसी जातक के नाम का पहला वर्ण निर्धारण किया जाता है। चन्द्रस्पष्ट करने के लिए पहले षष्टि प्रमाण भुक्ति (वर्तमान नक्षत्र की) निकालनी होती है। भभोग की घड़ियॉ कभी 60 से कम कभी 60 से अधिक होती हैं तो 60 घटी की अनुपातिक घड़ियॉ भयात की कितनी होती है इसे निकालनी पड़ता है। इसी को षष्टि प्रमाण भुक्ति कहते है। अर्थात् पूर्ण भभोग में 60 घड़ी तो भयात में कितनी अनुपातिक घड़ी होगी। या सम्पूर्ण भभोग को 60 घड़ी के बराबर माना जाए तो भयात को कितनी घड़ी के बराबर मानना पड़ेगा। यहॉ भाग देने की सुविधा के लिए भभोग एवं भयात को एकजातीय बनाकर चन्द्रस्पष्ट संस्कार किया जाता है।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ गये होंगे कि भयात एवं भभोग क्या हैं तथा ज्योतिष शास्त्र में इसकी क्या आवश्यकता है। इनका उपयोग ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न आयामों में किस प्रकार से किया जाता है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

भयात – नक्षत्र के सम्पूर्ण मान में से उसका जितना मान बित गया हो, उसे भयात कहते है।

भभोग – सम्पूर्ण नक्षत्र के मान में जो मान भोगने को शेष है उसे भभोग कहते है।

गत नक्षत्र – वर्तमान से ठीक पूर्व दिन का नक्षत्र

वर्तमान नक्षत्र - वर्तमान दिन का नक्षत्र

अभ्यास प्रश्न - 2

1. भयात किसे कहते है।
2. भभोग क्या है?
3. भयात एवं भभोग साधन कैसे किया जाता है।
4. भयात एवं भभोग साधक सूत्र क्या है।
5. भयात एवं भभोग के महत्व का निरूपण किजीए।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर - 1

1. सत्य
2. असत्य
3. असत्य

4. सत्य

5. सत्य

6. सत्य

7. असत्य

8. सत्य

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर - 2

1. **भयात** - नक्षत्र जब से आरम्भ होता है तब से इष्टकाल पर्यन्त जितना घटी पल व्यतीत हुआ हो वह **भयात** कहलाता है।

2. **भभोग** - नक्षत्र के आरम्भ से अन्त पर्यन्त (सम्पूर्ण मान) **भभोग** कहलाता है।

3.**भयात एवं भभोग साधन**

गतर्क्षनाड़ीखरशेषु शुद्धा सूर्योदयादिषुघटीषु युक्ता।
भयात संज्ञा भवतीह तश्च निजर्क्षनाड़ीसहितो भभोग:।।

गत नक्षत्र की घटी पलों को 60 घटी में से घटाकर शेष को दो स्थानों पर रखें।

एक स्थान पर इष्टकाल जोड़ने से भयात होगा तथा अन्यत्र वर्तमान नक्षत्र का पंचांगस्थ मान जोड़ने से 'भभोग' ज्ञात हो जाता है।

उदाहरण -

दिनांक 17 सितम्बर 2012 हृषीकेश पंचांग के अनुसार -

कल्पित जन्म समय के आधार पर माना कि इष्टकाल = 8.20

गत नक्षत्र (उत्तराफाल्गुनी) का मान = 53.14

वर्तमान नक्षत्र (हस्त) का मान = 50.43

सूत्र से,

60.00
गत नक्षत्र का मान - 53.14
6.46
+ 50.43 - वर्तमान नक्षत्र हस्त का मान
57.29 - भभोग

6.46
+ 8.20 - इष्टकाल
15.6 - भयात

उपर्युक्त गणितीय प्रकार से भयात और भभोग का साधन किया जाता है।

4. भयात एवं भभोग साधक सूत्र

भयात साधक सूत्र -

(60 घटी - गत नक्षत्र की घटी पल) + इष्टकाल = यदि दूसरे दिन का जन्म है। यदि उसी दिन का जन्म है तो = इष्टकाल - गत नक्षत्र की घटी पल।

भभोग साधक सूत्र -

भभोग = (60 घटी - गत नक्षत्र की घटी पल) +वर्तमान नक्षत्र की घटी पल।

उदाहरण सहित स्पष्ट भयात एवं भभोग साधन -

माना कि पंचांग में गुरूवार को मृगशिरा नक्षत्र का मान = 38/8 घटयादि है।

जन्म समय = 39/22/12 घटयादि हैं जो कि नक्षत्र मान से बाद का है। इससे स्पष्ट होता हैं कि मृगशिरा नक्षत्र का अन्त हो चुकने के उपरान्त अग्रिम नक्षत्र आर्द्रा में जन्म हुआ है। पंचांग में देखने पर दूसरे दिन शुक्रवार को 44/41 तक आर्द्रा नक्षत्र है।

यदि मृगशिरा नक्षत्र के भीतर जन्म होता तो मृगशिरा नक्षत्र कब से आरम्भ हुआ हैं यह देखने की आवश्यकता पड़ जाती और मृगशिरा के पहले का (गत) नक्षत्र रोहिणी नक्षत्र का अन्त कब हुआ देखना पड़ता। परन्तु यहॉ जन्म मृगशिरा के अन्त होने के उपरान्त आर्द्रा नक्षत्र कब से आरम्भ हुआ और उसका अन्त कब हुआ, देखना पड़ेगा तब आर्द्रा नक्षत्र का पूर्ण भोगकाल (भभोग) ज्ञात होगा।

मृगशिरा 38/8 घटी तक गुरूवार को था। उसके उपरान्त आर्द्रा लगा। दिन रात की 60 घटी होती हैं तो (60 घटी - मृगशिरा 38/8) = 21/52 घटयादि हुआ। अर्थात् गुरूवार को 38/8 घटी के उपरान्त शेष 21/52 घटी आर्द्रा नक्षत्र रहा। अब देखना हैं शुक्रवार को कितना आर्द्रा था। पंचांग में शुक्रवार 44/41 घटी तक आर्द्रा का मान दिया है। सम्पूर्ण मान 66/33 घटी आर्द्रा का पूर्ण भोगकाल हुआ। इसी पूर्ण भोगकाल को **भभोग या सर्वर्क्ष** भी कहते है।

 21/52 - गुरूवार को आर्द्रा का मान
\+ 44/41 - शुक्रवार को ’’
 66/33

इष्टकाल तक वर्तमान नक्षत्र कितना गत हुआ उसे **भयात या गतर्क्ष** कहते है। गुरूवार को मृगशिरा 38/8 घटी तक था। जन्म दिन गुरूवार हैं। उसी दिन इष्टकाल 39/22/12 घटी पर जन्म हुआ हैं तो मृगशिरा का अन्त हो जाने पर और आर्द्रा नक्षत्र के आरम्भ हो जाने के 1/14/12 घटी के उपरान्त हुआ।

39/22/12 - इष्टकाल

- 38/8/0 - मृगशिरा का अन्त

1/14/12 शेष आर्द्रा = भयात

इस कारण जन्म समय आर्द्रा 1/14/12 गत हुआ है। ऐसा कहेंगे। इसी को भयात या गतर्क्ष कहते है।

60 - गत नक्षत्र + इष्ट = भयात

60 - गत नक्षत्र मृगशिरा (38/8) + इष्ट 39/22/12 = 21-52 + इष्ट 39/22/12 = 61/14/12 = 1/14/12 भयात आर्द्रा का।

दोनों प्रकार से एक ही उत्तर आता है। 60 घटी से अधिक आने से 60 घटा दिया इससे शेष 1/14/12 जो शेष बचा वही भयात हुआ। परन्तु उसी दिन का जन्म हो तो इष्ट में से गत नक्षत्र की घटी पल घटा देने से भयात स्पष्ट हो जाता है।

66/33 - आर्द्रा भभोग

- 1/14/12 -

65/18/48 आर्द्रा का भोग्य।

इस प्रकार से भयात एवं भभोग का साधन किया जाता है ।

5. भयात एवं भभोग का महत्व

ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत भयात एवं भभोग का अध्ययन विशेष रूप से नक्षत्र ज्ञान एवं चन्द्रस्पष्ट हेतु किया जाता हैं। वर्तमान एवं गत नक्षत्र की स्थिति का अध्ययन भी भयात एवं भभोग के ज्ञान द्वारा ही किया जाता है। कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में भयात एवं भभोग का साधन किया जाता है। किसी भी जातक के नामकरण संस्कार में प्रथम नामाक्षर जानने के लिए भी भभोग का ज्ञान आवश्यक हैं। एक नक्षत्र में 9 चरण होते है। नक्षत्र चरण से ही नामकरण संस्कार किया जाता है। भभोग में 4 का भाग देकर चरण ज्ञान कर ज्योतिष शास्त्र में किसी जातक के नाम का पहला वर्ण निर्धारण किया जाता है । चन्द्रस्पष्ट करने के लिए पहले षष्टि प्रमाण भुक्ति (वर्तमान नक्षत्र की) निकालनी होती है। भभोग की घड़ियॉं कभी 60 से कम कभी 60 से अधिक होती हैं तो 60 घटी की अनुपातिक घड़ियॉं भयात की कितनी होती है इसे निकालनी पड़ता है । इसी को षष्टि प्रमाण भुक्ति कहते है। अर्थात् पूर्ण भभोग में 60 घड़ी तो भयात में कितनी अनुपातिक घड़ी होगी। या सम्पूर्ण भभोग को 60 घड़ी के बराबर माना

जाए तो भयात को कितनी घड़ी के बराबर मानना पड़ेगा। यहाँ भाग देने की सुविधा के लिए भभोग एवं भयात को एकजातीय बनाकर चन्द्रस्पष्ट संस्कार किया जाता है।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र - रंजन पब्लिकेशन्स
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी.एल.ठाकुर - मोतीलाल बनारसीदास
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - श्री मीठालाल हिमतराम ओझा- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन
4. ताजिकनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ विरचित - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन

2.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. भारतीय कुण्डली विज्ञान
2. ज्योतिष रहस्य
3. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
4. ताजिकनीलकण्ठी
5. जन्मपत्रव्यवस्था
6. ज्योतिष सर्वस्व
7. कुण्डली निर्माण पद्धति

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. भयात एवं भभोग क्या है? इसके गणितीय सूत्र को लिखते हुए इसका साधन करें।
2. ज्योतिष शास्त्र में भयात एवं भभोग के महत्व का निरूपण करते हुए सोदाहरण इसे स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 3 जन्माक्षर निर्णय

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जन्माक्षर निर्णय

3.3.1 नामकरण परिचय

3.3.2 नक्षत्र चरण से जन्माक्षर ज्ञान

3.3.3 जन्माक्षर ज्ञान का महत्व

3.3 सारांश

3.4 पारिभाषिक शब्दावली

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.7 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना -

प्रस्तुत इकाई ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित है। ज्योतिष शास्त्र की परम्परा में कैसे किसी भी व्यक्ति का नामकरण उसके जन्म के बाद किया जाता है इसका विस्तृत अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे। इससे पूर्व के अध्यायों में आपने नक्षत्र ज्ञान, भयात-भभोग साधन, राशियों का परिचय इत्यादि विषयों का विस्तृत अध्ययन किया होगा।

जन्माक्षर शब्द से तात्पर्य यह है कि जब किसी व्यक्ति का जन्म होता हैं तो इस जगत में उसकी पहचान उसके नाम के आधार पर होती है और वह नाम उसके जन्माक्षर के अनुसार होता है। सम्प्रति इसका स्वरूप बदल चुका है। ज्योतिष शास्त्र में यह भी कहा जाता है कि किसी भी व्यक्ति के नाम का उसके व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रभाव होता है। अतः नामकरण संस्कार के अन्तर्गत ज्योतिष शास्त्र के द्वारा व्यक्ति का सार्थक नामकरण करना चाहिए। जन्माक्षर निर्णय कर यही संस्कार किया जाता है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेंगे कि जन्माक्षर क्या है, तथा किसी मनुष्य का नामकरण कैसे किया जाता है।

3.2 उद्देश्य -

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही नामकरण संस्कार की प्रक्रिया चली आ रही है। परन्तु कालान्तर में इसके स्वरूप में परिवर्तन द्रष्टव्य है। इस इकाई का उद्देश्य हैं आपको ज्योतिष शास्त्रीय जन्म नाम रखने के महत्व को बतलाना तथा जन्माक्षर निर्णय से संबंधित संपूर्ण महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करना। निम्नलिखित रूप में इस इकाई के उद्देश्य को समझ सकते है -

1. यथार्थ जन्माक्षर का बोध हो पायेगा।
2. सार्थक नाम रखने का ज्ञान हो सकेगा।
3. भारतीय ज्योतिष की परम्परा को जीवित रख पायेंगे।
4. अपने एवं अपने परिवार तथा समाज को नयी दिशा देने में प्रवीण हो पायेंगे।
5. किसी भी नाम के महत्व को समझ सकेगें।

3.3 जन्माक्षर निर्णय

ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत जन्माक्षर निर्णय नक्षत्रों के आधार पर किया जाता है। सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत जो भचक्र अर्थात् राशिचक्र होती है, उस राशिचक्र में 12 राशियॉ होती हैं, उन्हें 27 नक्षत्रों

में बॉटा गया है। एक नक्षत्र का मान $12 \times 30/27 = 13^0.20'$ (13 अंश 20 कला) अंशादि होता है। एक नक्षत्र में चार - चार चरण होने से एक चरण का मान $13^0.20' \times 4 = 30.20'$ अंशादि सिद्ध है। अतः एक राशि में सवा दो नक्षत्र या 9 चरण समाहित होते है।

प्रत्येक नक्षत्र चरण का शतपद चक्र के आधार पर एक - एक अक्षर नियत है। जिस नक्षत्र चरण में जन्म हों उसी नक्षत्र के अक्षर से जातक का नाम रखा जाता है। यह जन्म नाम कहलाता है। सम्प्रति जन्म नाम से अतिरिक्त बोलता (पुकारने का) नाम भी स्वेच्छा से रखा जाता है।

3.3.1 नामकरण परिचय –

नामकरण से तात्पर्य है- किसी जातक का नाम निर्धारण करना। इस जगत् में नामकरण संस्कार का हेतु उसे मानव जीवन-व्यवहार में प्रयोग करना है। नाम निर्धारण के बिना किसी भी जातक का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता, उसकी पहचान नहीं होती। प्राचीनकाल में जब किसी राजा के गृह में जातक का जन्म होता था तो उस समय राजगुरू को बुलाकर उस जातक का नामकरण संस्कार किया जाता था, और उसी नाम से वह जातक लोक में प्रसिद्ध होता था। अब प्रश्न हैं कि नामकरण कैसा होना चाहिए ? निम्नलिखित रूप में शास्त्रसम्मत नामकरण का स्वरूप होना चाहिए-

1. नामकरण ऐसा हो जिसका कोई सार्थक अर्थ हो।
2. तीन या पॉच अक्षर का नामकरण होना चाहिए। तीन से कम अक्षर का नामकरण शास्त्रसम्मत नहीं है।
3. ज्योतिष शास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त में नामकरण संस्कार करना चाहिए।
4. नामकरण ऐसा हो जिससे उसके व्यक्तित्व पर उत्तम प्रभाव पड़े।
5. जातक के गृह में उसके पूर्वज (पिता,पितामह,प्रपितामह,पितृभ्रातृ,माता,मातामहादि) आदि का जो नाम हो वहीं नाम नहीं रखना चाहिए। ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

3.3.2 नक्षत्र चरण से जन्माक्षर ज्ञान -

ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्र चरण से तथा चन्द्रस्पष्ट से जन्माक्षर ज्ञान का निर्णय किया जाता है। नक्षत्र चरण का अक्षर विन्यास इस प्रकार से माना जाता है -

नक्षत्र से जन्माक्षर ज्ञान -

अश्विनी - चू चे चो ला

भरणी - ली लू ले लो

कृत्तिका - अ इ उ ए

रोहिणी - ओ वा वि वू

मृगशिरा - वे वो का की

आर्द्रा - कु घ ड. छ
पुनर्वसु - के को हा ही
पुष्य - हू हे हो डा
श्लेषा - डी डू डे डो
मघा - मा मी मू मे
पू0फा0 - मो टा टी टू
उ0फा0 - टे टो पा पी
हस्त - पू ष ण ठ
चित्रा - पे पो रा री
स्वाती - रू रे रो ता
विशाखा - ती तू ते तो
अनुराधा - ना नी नू ने
ज्येष्ठा - नो या यी यू
मूल - ये यो भा भी
पू0षा0 - भू धा फा ढा
उ0षा0 - भे भो जा जी
श्रवण - खी खू खे खो
धनिष्ठा - गा गी गू गे
शतभिषा - गो सा सी सू
पूर्वाभाद्रपद - से सो दा दी
उत्तराभाद्रपद - दू थ झ ञ
रेवती - दे दो चा ची

उपरिखित अक्षरों के आधार पर नक्षत्र चरण का ज्ञान कर हम जन्माक्षर का निर्णय करते है। नक्षत्र के पूर्ण मान भभोग का जो मान होता है। उस मान में 4 का भाग देकर शेष आदि फलों के आधार पर हम नक्षत्र चरण का ज्ञान करते हैं और फिर जातक का नामकरण करते है। उपर्युक्त अक्षरों के आधार पर क्रमशः 9 - 9 चरणाक्षरों की मेषादि बारह राशियॉं होती है। उदाहरणार्थ अश्विनी भरणी के 8 चरण व कृत्तिका का प्रथम चरण मिलकर कुल 9 चरण मेष राशि के होते है। इसी प्रकार से प्रत्येक राशियों का निर्माण नक्षत्र के 9 चरण से ही हुआ है। प्राचीन ज्योतिर्विदों ने इसे स्पष्ट रूप से सरलढंग से इस प्रकार से कहा है -

अश्विनी भरणी कृत्तिका पादो मेषः
कृत्तिकानां त्रयः पादाः रोहिणी मृगार्धं वृषः
मृगार्धमार्द्रा पुनर्वसु पादत्रयं मिथुनः

पुनर्वसु चरमपादः पुष्याश्लेषान्तं च कर्कः
मघा पूर्वोत्तरफाल्गुनी पादः सिंहः
उ0फा0 त्रयः पादाः हस्तचित्रार्ध कन्या।
चित्रोत्तरार्ध स्वाती विशाखापादत्रयं तुला।
विशाखान्त्यानुराधाज्येष्ठान्तं वृश्चिकः।
मूलं पूर्वोत्तराषाढपादो धनुः।
उ0षाढायास्त्रयः श्रवणधनिष्ठार्धं मकरः।
धनिष्ठोत्तरार्ध शतभिषा पूर्वाभाद्रपदपादत्रयं कुम्भः।
पूर्वाभाद्रपदान्त्यपाद उत्तराभाद्रपदा रेवत्यन्तं मीनः।

इसी प्रकार सभी राशियों के 9- 9 चरण होते है, अर्थात् 9 चरणों की एक राशि होती है।

अभिजित् नक्षत्र निर्णय - आकाश में अभिजित् नक्षत्र को भी मिला लिया जाए तो 28 नक्षत्र होते है। स्वर शास्त्र में विशेषतया इसका ग्रहण है, जातक शाखा व मुख्य विंशोतरी दशा में नहीं। रामदैवज्ञ द्वारा प्रणित मुहूर्तचिन्तामणि का मत है - **''वैश्यप्रान्त्यांघ्रिश्रुतिथिभागतोऽभिजित्स्यात्''** अर्थात् उत्तराषाढ़ा का चौथा चरण व श्रवण का पहला 15 वॉ भाग मिलाकर लगभग 19 घड़ी अभिजित् का मान होता है।

अभ्यास प्रश्न - 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ?

1. राशियों की संख्या .... है।
2. एक नक्षत्र का मान .... होता है।
3. नक्षत्र में चरण .... होते है।
4. हस्त नक्षत्र का चरणाक्षर .... है।
5. अभिजित नक्षत्र सहित नक्षत्रों की संख्या .... है।
6. एक राशि में .... चरण होते है ।
7. कृत्तिकानां त्रयः पादाः रोहिणीं मृगार्धं ....।
8. वैश्यप्रान्त्यांघ्रिश्रुतितिथिभागतो .... स्यात्।
9. देवेश की राशि .... होगी।
10. जिस नक्षत्र चरण में जातक का जन्म हो वह नक्षत्र चरणाक्षर से रखा गया नाम .... कहलाता है।

जन्माक्षर निर्णय का गणितीय पक्ष-

पूर्व के अध्यायों में आपने भयात एवं भभोग का ज्ञान प्राप्त किया था। यहॉ उसी के आधार पर हम जन्माक्षर निर्णय करेंगे । उदाहरणार्थ -

माना कि पुष्य नक्षत्र के भयात मान = 20.50 तथा भभोग (नक्षत्र का पूर्ण) का मान = 54.20 कलादि है।

एक नक्षत्र में 4 चरण होते है। अतः हमें यदि नक्षत्र का चरण जानना हैं तो पूर्व में भभोग का साधन करेंगे पुनः उसमें 4 का भाग देकर चरणाक्षर का ज्ञान करेंगे।

54.20 / 4 = 13.55, शेष = 0। यहॅा पुष्य नक्षत्र के प्रथम चरण का मान हुआ 13.55।

13.55 × 2 = 27.50 तक दूसरा चरण हुआ। हमारा भयात दूसरे चरण में होने से पुष्य नक्षत्र के द्वितीय चरण में हुआ । अतः जन्माक्षर हू हे हो डा पुष्य के आधार पर हे अक्षर से हुआ। यथा - हेमन्त आदि। इसी प्रकार हम भयात एवं भभोग के मानाधार पर जन्माक्षर का निर्णय करते है।

विशेष जन्माक्षर निर्णय - यदि व्यंजन वर्ण जैसे कवर्ग आदि के अन्तर्गत यदि किसी व्यक्ति का जन्माक्षर नक्षत्र चरण के अनुसार ङ, ञ या ण अक्षर आता हो तो आचार्यों ने इसके समाधान हेतु ङ के स्थान पर ग तथा ञ के स्थान पर ज तथा ण के स्थान पर न का प्रयोग करना चाहिए।

3.3.3 जन्माक्षर ज्ञान का महत्व -

यदि ज्योतिष शास्त्र के आधार पर जन्माक्षर निर्णय कर किसी जातक का नामकरण संस्कार करते है तो निश्चय ही उस जातक का व्यक्तित्व एवं जीवन सफल होगा, क्योंकि किसी जातक के नाम का प्रभाव उसके व्यक्तित्व एवं जीवन काल पर पड़ता है यह सुविदित है। मुहूर्तचिन्तामणि में नामकरण का मुहूर्त इस प्रकार लिखा है -

तज्जातकर्मादिशिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवक्षुप्रचरोडुषु स्यात।।

अर्थात् जातक के जन्मकाल से लेकर 11 वें दिन या 12 वें दिन पर्व और रिक्त तिथियों को छोड़कर शुभ वारों में, मृदुसंज्ञक नक्षत्र ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र तथा क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों में नामकरण संस्कार करना उत्तम होता है। जन्माक्षर ज्ञान के अभाव में हम किसी जातक का सहीं नामकरण कर पानें में असमर्थ है। अतः ज्योतिष शास्त्र में इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए पूर्वाचार्यो ने इस ज्ञान का सूत्रपात किया। नामविहिन वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं होता ये सभी जानते है। चाहे वो चर प्राणि हो या अचर, सभी को एक संज्ञा से हम संबोधित करते है। वही संज्ञा ही उसका नाम है। अतः जन्माक्षर ज्ञान का महत्व सुस्पष्ट है।

अभ्यास प्रश्न - 2

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

1. उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की राशि क्या होगी।

2. अभिजित नक्षत्र सहित नक्षत्रों की संख्या कितनी होती है।
3. जन्मनाम क्या है?
4. जन्माक्षर शब्द से क्या तात्पर्य है।
5. चित्रा नक्षत्र का चरणाक्षर क्या है।
6. जातक के जन्मकाल से कितने दिनों में नामकरण संस्कार होता है।

3.4 सारांश -

अखिल ब्रह्माण्ड में सभी तत्वों को ज्ञानार्थ एवं व्यवहारार्थ एक संज्ञा से संबोधित करते है। जिसे हम सरल भाषा में नाम के रूप में जानते है। किसी भी तत्व की संज्ञा उसकी उत्पत्ति के साथ होती है। मानव जीवन में उसके जन्म के साथ ही उसका एक नामकरण होता है, जो जन्माक्षर के आधार पर होता है। जन्माक्षर का निर्णय प्राचीनकाल में ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से करते थे आज स्वयं जो मन में आता है माता-पिता अपने बच्चों का नामकरण कर देते है। आज भी प्राचीन परम्परा से जुड़े घरों में माता-पिता अपने बच्चों का नामकरण ज्योतिष शास्त्रोक्त परम्पराओं के आधार पर ही करते है। आज भी यदि आम जनमानस ज्योतिष शास्त्रोक्त नियमों के आधार पर जन्माक्षर निर्णय के द्वारा अपनें बच्चों का नामकरण करें तो उसका एवं उससे सम्बद्ध सभी प्राणियों का कल्याण निश्चित है।
इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् आप **जन्माक्षर** के यथार्थ स्वरूप को समझ सकेंगे।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

जन्माक्षर - जन्म के समय जातक का नक्षत्र संबंधी चरणाक्षर

नामकरण - जन्म के पश्चात जातक का किया जाने वाला संस्कार

नक्षत्र चरण- नक्षत्र संबंधी चरण नक्षत्र चरण होता है। एक नक्षत्र में चार चरण होते है।

राशिचक्र – क्रान्तिवृत्त में राशि संबंधी चक्र को राशिचक्र कहते है।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर - 1

1. 12
2. 13^0 20
3. 4
4. पू ष ण ठ
5. 28

6. 9
7. वृष
8. अभिजित्
9. मीन
10. जन्म नाम

अभ्यास प्रश्नों का उत्तर - 2

1. वृष
2. 28
3. नक्षत्र चरणाक्षर के अनुसार रखा गया नाम **जन्म नाम** कहलाता है।
4. जन्माक्षर शब्द से तात्पर्य है जन्मनाम संबंधी प्रथम अक्षर।
5. पे पो रा री
6. 11 वें या 12 वें दिन में

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. ताजिकनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ विरचित
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान - मीठालाल हिंमतराम ओझा
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. वृहदवकहड़ाचक्रम - चौखम्भा प्रकाशन
7. अवकहड़ाचक्रम - चौखम्भा प्रकाशन

3.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था

7. ज्योतिष प्रवेशिका

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. ज्योतिष शास्त्र में वर्णित 'जन्माक्षर निर्णय' पर प्रकाश डालिए।
2. जन्माक्षर निर्णय के गणितीय पक्ष का उल्लेख करते हुए सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 4 चन्द्रस्पष्टविधि एवं चन्द्र गति साधन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 चन्द्रस्पष्टविधि परिचय

4.3.1 चन्द्रस्पष्टीकरण का प्रयोजन

4.3.2 चन्द्रस्पष्ट का गणितीय सूत्र एवं साधन

4.3.3 चन्द्रगति साधन

4.3.4 चन्द्रस्पष्ट में विशेष

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र के स्कन्धत्रय में सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत ग्रहों का स्पष्टीकरण किया जाता है। भकक्षा में ग्रहों के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया को **ग्रहस्पष्टीकरण** कहा जाता है। इसके ज्ञानाभाव में हम ज्योतिष शास्त्र के किसी भी स्कन्ध का सम्यक् विवेचन नहीं कर सकते है। अतः ग्रहों के स्पष्टीकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है।

चन्द्रमा के स्पष्टीकरण संबंधी प्रक्रिया को **चन्द्रस्पष्टीकरण** कहा जाता है। चन्द्रस्पष्टीकरण के लिए हमें जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है, तत्संबंधी उपकरणों के बारें में आपने पूर्व के अध्यायों में अध्ययन किया है यथा - नक्षत्र ज्ञान, भयात -भभोग, राशि, ग्रहगति आदि। यहॉ इस अध्याय में उपर्युक्त उपकरणों के माध्यम से चन्द्रस्पष्टीकरण प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रस्तुत अध्याय में चन्द्रस्पष्टीकरण कैसे किया जाता है इसका विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य ग्रहों के स्पष्टीकरण के अन्तर्गत चन्द्रस्पष्टीकरण का बोध कराने से है। निम्नलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है -

1. चन्द्रस्पष्टीकरण क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. चन्द्रस्पष्टीकरण के लिए विभिन्न उपकरणों का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।
3. चन्द्रस्पष्टीकरण का साधन कैसे किया जाता है? इसका ज्ञान कर पायेंगें।
4. चन्द्रस्पष्टीकरण में चन्द्रमा की गति का ज्ञान किस प्रकार से किया जाता हैं, इसका गणितीय विवेचन कर पायेंगे।
5. कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में चन्द्रस्पष्टीकरण के महत्व को समझ पायेंगे।
6. आधुनिक लघुगणक विधि द्वारा भी चन्द्रस्पष्टीकरण का ज्ञान कर पायेंगे।
7. प्राचीन विधि से चन्द्रस्पष्टीकरण का ज्ञान कर सकेंगे ।

4.3 चन्द्रस्पष्टविधि परिचय

आकाश में सबसे उपर नक्षत्र चक्र या राशि चक्र उससे नीचे क्रमशः शनि, गुरू, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, व चन्द्रादि की कक्षाए स्थित है। आधुनिक वैज्ञानिक मतानुसार सूर्य को सौरमंडल का केन्द्र माना गया है, जबकि प्राचीन मत में पृथ्वी को केन्द्र माना गया था। पृथ्वी से देखने पर ग्रहों की विभिन्न राशियों में आकाशीय स्थिति ही ग्रहस्पष्ट कहलाती है, या भकक्षा में ग्रहों के स्पष्टीकरण की

प्रक्रिया को ग्रहस्पष्टीकरण कहते है। उसी क्रम में चन्द्रमा ग्रह के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया को चन्द्रस्पष्टीकरण कहते है।

चन्द्रस्पष्टीकरण कुण्डली निर्माण प्रक्रिया और पंचांग निर्माणार्थ ग्रहों के स्पष्टीकरण के अन्तर्गत किया जाता है। चन्द्रस्पष्टीकरण प्राचीन और आधुनिक विधि से किया जाता है।

4.3.1 चन्द्रस्पष्टीकरण का प्रयोजन -

चन्द्रस्पष्टीकरण का प्रयोजन निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है -

1. कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में
2. पंचांग निर्माण प्रक्रिया में
3. ग्रहों के स्पष्टीकरण में
4. होरा शास्त्र में प्रयोजनार्थ
5. सिद्धान्त में प्रयोजनार्थ आदि।

4.3.2 चन्द्रस्पष्ट का गणितीय सूत्र एवं साधन -

प्राचीन पद्धति में चन्द्रस्पष्टीकरण करने के लिए सर्वप्रथम भयात एवं भभोग का साधन किया जाता है। इसके पूर्व के अध्यायों में भयात एवं भभोग के साधन का तरीका बतलाया जा चुका है। यहॉ विशेष रूप से चन्द्रस्पष्टीकरण से संबंधीत बातों को ही उपस्थापित किया जा रहा है।

गणितीय सूत्र: -

$$\frac{\text{गत नक्षत्र संख्या} + \text{प्रमाण भुक्ति}, \times 2}{9}$$

= चन्द्रस्पष्ट (अंशादिकम्) 30से भाग देकर राश्यादिमान को प्राप्त कर लेते है।

साधन: -

चन्द्रस्पष्ट साधन करने के लिए पहले षष्टि प्रमाण भुक्ति (वर्तमान नक्षत्र की) निकालनी होती है। भभोग की घड़ियॉं कभी 60 से कम कभी अधिक होती हैं तो 60 घड़ी की अनुपातिक घड़ियॉं भयात की कितनी होती है इसे निकालना पड़ता है। इसी को षष्टि प्रमाण भुक्ति कहते है। अर्थात् पूर्ण भभोग में 60 घड़ी तो भयात में कितनी अनुपातिक घड़ी होगी। या सम्पूर्ण भभोग को 60 घड़ी के बराबर माना जाए तो भयात को कितनी घड़ी के बराबर मानना पड़ेगा। यहॉं भाग देने की सुविधा के लिए भभोग और भयात को एक जात बना लेना चाहिए। चाहे सबके पल बना लिजिए या विपल बना लिजिए।

$$\frac{\text{भयात} \times 60}{\text{भभोग}} = \text{षष्टि प्रमाण}$$

माना कि भभोग = 66/33 घटी, पल में तथा भयात - 1/14/12 है।
तो प्रथम बार में भभोग के स्थान पर,

66/33 × 60 = 3960 + 33 = 3993 पलात्मक भभोग

पुनः - भयात के स्थान पर,

1/14/12 × 60 = 60 + 14 = 74/12, 74 × 60 + 12 = 4452 पलात्मक भयात

4452/3993 = 1 घटी, प्रथम भागफल

शेष, 459 × 60 = 27540/3993 = 6 पल, द्वितीय भागफल

शेष, 3582 × 60 = 214920/3993 = 53 विपल, तृतीय भागफल

1/6/53 घटयादि मान हुआ।

भयात, (1/14/12) × 60 = (74/12) × 60

भभोग 66/33 3993 पल

4452/3993 = 1/6/53 घटयादि मान हुआ।

चन्द्र साधन

भयात की षष्टि प्रमाण भुक्ति निकल जाने पर चन्द्र साधन करते है। एक नक्षत्र 60 घड़ी में 130 20’ चलता हैं तो 1 घटी में 00/13/20’’ चलेगा।

1 - 130/20/60 = 40’/3

2- 40/3 × 60 अंश = 2/9 अंश हुआ।

अब त्रैराशिक से निकालो। नक्षत्र की 1 घटी में चन्द्र 2/9 अंश चलता हैं तो सम्पूर्ण नक्षत्रा की षष्टि प्रमाण भुक्ति की घड़ियों में कितना चलेगा। जो उत्तर आवे वह चन्द्रमा का अंश कलादि स्पष्ट होगा।

खषड्घ्नं भयातं भभोगोद्धृतं तत् खतर्कघ्नघिष्ण्येषु युक्तं द्विनिघ्नम्।
नवाप्तं शशी भागपूर्वस्तु शेषैः खखाभ्राष्टवेदा भभोगेन भक्ताः।।

(1) पलात्मक भयात को पलात्मक भभोग से भाग देते हुए तीन अवयवों वाली लब्धि प्राप्त करें।

(2) गत नक्षत्र की संख्या को 60 से गुणा कर गुणनफल को पूर्व प्राप्त लब्धि में जोड़े।

(3) योगफल को 2 से गुणा कर 9 का भाग देने से अंशादि चन्द्रमा स्पष्ट होता है।

(4) 48000 संख्या को 60 से गुणा कर भभोग से भाग दें। अर्थात् 2880000 में पलात्मक भभोग का भाग देने से चन्द्रमा की गति होती है ।

उदाहरणार्थ - भयात् 20/50 घटयादि व भभोग 65/05 घटयादि है तथा गत नक्षत्र उत्तराभाद्रपद व वर्तमान नक्षत्र रेवती है। इससे चन्द्रस्पष्ट करना है।

$20/50 \times 60 = 1250$ पलात्मक भयात, $65/05 \times 60 = 3905$ पलात्मक भभोग।

(1) 1250 पलात्मक भयात को 60 से गुणा कर भभोग 3905 का भाग दिया।

$1250 \times 60/3905 =$ लब्धि 19 शेष 805 ।

(2) शेष 805 को 60 से गुणा कर पुनः भभोग से भाग दिया तो $805 \times 60 /3905 = 48300/3905$ लब्धि 12, शेष 1440 । शेष 1440 को पुनः 60 से गुणा कर भभोग से भाग दिया तो $1440 \times 60/3905 = 86400 / 3900 =$ लब्धि 22 व शेष 490 निष्प्रयोजन है। इस प्रकार तीन अवयवों वाली लब्धि 19.12.22 को एकत्र लिख लिया।

(3) गत नक्षत्र उत्तराभाद्रपद की संख्या 26 को 60 से गुणा करके लब्धि में जोड़ा तो $26 \times 60 = 1560 + 19/12/22 = 1579/12/22 \times 2 = 3158/24/44 \div 9 = 350/58/18''$ अंशादि स्पष्ट चन्द्रमा है। 350 अंशो की राशि बनाई तो $350 \div 30 = 11$ राशि व 20 अंश प्राप्त हुआ। अतः $11.20^0.58'.18$ चन्द्रमा स्पष्ट हुआ। त्रैराशिक द्वारा चन्द्रमा स्पष्ट $11.20^0.55'.50''$ आया था। भयात, भभोग द्वारा चन्द्रस्पष्ट करते समय यह बात आवश्यक हैं कि नक्षत्र का मान स्थानीय सूर्योदय से लिया गया हो। अतः सर्वप्रथम पंचांग के तिथि नक्षत्रादि उपकरणों को स्थानीय अवश्य बना ले।

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित वैकल्पिक प्रश्नों के उत्तर दें -

1. ग्रहस्पष्टीकरण से तात्पर्य है।

(क) नक्षत्रों का स्पष्टीकरण (ख) योगों का स्पष्टीकरण (ग) ग्रहों का स्पष्टीकरण (घ) करणों का स्पष्टीकरण

2. चन्द्रस्पष्टीकरण में किसका स्पष्टीकरण होता है।

(क) सूर्य का (ख) मंगल का (ग) चन्द्रमा का (घ) शनि का

3. 'षष्टी' शब्द का अर्थ है।

(क) 40 (ख) 50 (ग) 60 (घ) 70

4. एक नक्षत्र 60 घटी में चलता है।

(क) 12 अंश (ख) 14 अंश (ग) 13 अंश 20 कला (घ) 18 अंश

5. ''खतर्क'' शब्द का अर्थ है।

(क) 50 (ख) 60 (ग) 70 (घ) 80

6. चन्द्रस्पष्टीकरण करने हेतु आवश्यक तत्व है।

(क) भयात एवं भभोग (ख) ग्रह और उपग्रह (ग) तारा एवं उपतारा (घ) राशि एवं नक्षत्र

4.3.3 चन्द्रगति साधन

चन्द्रस्पष्ट करने के पश्चात् तत्संबंधी गति का साधन किस प्रकार करनी चाहिए इसका विवेचन अब हम यहाँ करते है। हम जानते हैं कि 1 नक्षत्र = 130-20’कला = 800’ कला होता है। पूर्ण भभोग की षष्टि प्रमाण भुक्ति में चन्द्र की गति निकालनी है । अर्थात् पूर्ण भभोग में 800’ चन्द्र की गति होती है तो 60 घटी में कितनी होगी ? जो उत्तर आवे वहीं चन्द्र की गति होगी।

भाग देने की सुविधा के लिये 60 घटी और भभोग को एक जाति बना लेना चाहिए। 60 घटी = 60 × 60 = 3600 पल - 3600 पल × 800/भभोगपल = 2880000/भभोग पल = चन्द्रगति कला विकला में।

इस कारण 2880000 में भभोग के पल बनाकर भाग दो तो चन्द्र की गति निकल जाती है।

अपना भभोग 66-36 घटी = 3993 पल है।

चन्द्रगति - 2880000/3993 = 721’-15

यदि भभोग विपल में हो तो 2880000 × 60/भभोग विपल = 172800000/भभोग विपल

= चन्द्रगति कलादि ।

4.3.4 चन्द्रस्पष्ट में विशेष

चन्द्रस्पष्ट साधन करने में विशेष रूप से हमें भयात एवं भभोग का साधन कर उसे पलात्मक बनाकर गणितीय विधान के द्वारा उसका स्पष्टीकरण करना चाहिये। अन्य ग्रहों का स्पष्टीकरण का विधान चन्द्रस्पष्टीकरण से भिन्न है। अन्य ग्रहों के साधन में भयात एवं भभोग की आवश्यकता नहीं होती।

4.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र में ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक हैं जिसके अभाव में हम ज्योतिषविषयक किसी भी तत्व की यथार्थ मीमांसा करने में सक्षम नहीं हो सकते, क्योंकि जब तक हम ग्रहगणितादि की क्रिया को ठीक ढंग से नहीं कर पायेगें, तब तक हम फलादेशादि का कर्त्तव्य नहीं कर सकते। अतः ग्रहस्पष्टीकरण परमावश्यक है। फलित शास्त्र के अन्तर्गत हम चन्द्रमा को मन का कारक मानते है। ग्रहस्पष्टीकरण में ही चन्द्रमा का स्पष्टीकरण किया जाता है। इसका साधन करके ही हम तिथ्यादि साधन करने में सक्षम हो पाते है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. निम्नलिखित प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दें -
1. भकक्षा में ग्रहों के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया को क्या कहा जाता है।
2. चन्द्रमा के स्पष्टीकरण के प्रक्रिया को क्या कहा जाता है।
3. भकक्षा से तात्पर्य है।
4. एक नक्षत्र में कितने कलाएँ होती है।
5. भभोग का अर्थ होता है।
6. चन्द्रमा किसका कारक है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

पलात्मक भयात - भयात के मान में 60 से गुणा करने पर प्राप्त फल को पलात्मक भयात कहते है

पलात्मक भभोग - भभोग × 60 = पलात्मक भभोग

ग्रहस्पष्टीकरण – ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम्।

ग्रहगति - ग्रहाणां गति: ग्रहगति:।

4.6 अभ्यास प्रश्न - 1 का उत्तर -

1.ग

2. चन्द्रमा का

3. 60

4. ग

5. ख

6. क

अभ्यास प्रश्न - 2 का उत्तर -

1. ग्रहस्पष्टीकरण
2. चन्द्रस्पष्टीकरण
3. राशियों की कक्षा
4. 800 कला
5. नक्षत्र का सम्पूर्ण मान
6. मन का

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

4.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. चन्द्रस्पष्टीकरण के गणितीय सूत्रों को लिखते हुए उसका साधन करें।
2. चन्द्रगति को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

खण्ड – 3

लग्न साधन

इकाई – 1 पलभा एवं चरखण्ड साधन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई भारतीय ज्योतिष शास्त्र के फलित स्कन्ध के कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांग ज्ञान से सम्बिन्धत '**पलभा एवं चरखण्ड साधन**' से है। पलभा एवं चरखण्ड साधन लग्न साधन के लिये आवश्यक अंग है।

पलभा का अर्थ है – द्वादशांगुल शंकु की छाया। पलभा साधन में ही चरखण्ड साधन भी किया जाता है। इस इकाई में आप इन विषयों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करेंगें।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने इष्टकाल, पंक्तिस्थ ग्रह, चन्द्रस्पष्ट, ग्रहसाधन आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहाँ इस इकाई में आप पलभा एवं चरखण्ड का विधिवत अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त पलभा एवं चरखण्ड** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप कुण्डली निर्माण प्रक्रिया या पंचांग से सम्बन्धित पलभा एवं चरखण्ड का ज्ञान प्राप्त कर लेंगें, जिसके फलस्वरूप आप उपर्युक्त का साधन करने में सामर्थ्यता को प्राप्त कर सकेंगें।

1.3 पलभा एवं चरखण्ड परिचय

मेषादिगे सायनभागसूर्ये दिनार्द्धजाभा पलभा भवेत् सा।
त्रिष्ठाहता स्युदशर्भिर्भुजगैर्दिग्भिश्चिरान्ताद् गुणोद्धृताऽन्त्या॥

जिस दिन सायन सूर्य राशि अंश कला विकला से शून्य हो अर्थात् जब सूर्य ठीक सम्पात बिन्दु पर हो, (यह समय 21 मार्च और 23 सितम्बर को होता है) जब दिन - रात बराबर होता है उस दिन मध्याह्न (दोपहर) के समय में 12 अंगुल की एक शंकु सम भूमि में किसी खुले स्थान में स्थापित करें। ठीक मध्याह्न के समय उस शंकु की जितनी छाया पड़े उसे अंगुल व्यांगुल में नाप लेना चाहिये। यही नाप उस स्थान की **पलभा** होगी।

अर्थात् सम्पात बिन्दु के मध्याह्न काल में 12 अंगुल की शंकु की छाया का जो नाप हो उसे पलभा कहते है। मापन करते समय में समानता हो और अंगुल, प्रति अंगुल, तत्प्रति अंगुल तक ठीक – ठीक नाप लेकर लिख लेना चाहिये। एक लकड़ी में नाप का चिह्न नापने के लिये बनाकर रख लेना चाहिये। जो शंकु स्थापित करें सम भूमि में बिल्कुल सीधी स्थापित करें जिससे उसके दोनों और 90 – 90 अंश के कोण रहें।

यदि स्वस्थान के अतिरिक्त किसी दूर के स्थान की पलभा निकालने की आवश्यकता पड़ जाये तो उस निमित्त उसी स्थान पर जाना और इष्ट समय अर्थात् 21 मार्च तक समय की प्रतीक्षा करना, बहुत ही असुविधा जनक है। इस कारण अक्षांश पर से पलभा निकालने की रीति भी जान लेनी चाहिये जिसके आधार पर किसी भी देश या स्थान की पलभा निकाली जा सकती है।

किसी स्थान के अक्षांश जानने की आवश्यकता हो तो प्रारम्भिक ज्ञान खण्ड में बताई रीति से ध्रुवतारा की उँचाई नाप कर अपनें स्थान का अक्षांश जान सकते है या किसी विद्यालय क या सरकारी नक्शों को देखने पर जहॉं इष्ट स्थान दिया हो। प्राय: सभी नक्शों में अक्षांश और देशान्तर दिया रहता है उसको देखकर इष्ट स्थान के अक्षांश की खोज करना चाहिये।

विषुवत् संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में सूर्य ठीक विषुवद् वृत्त पर नहीं रहता अपितु थोड़ा इधर उधर रहता है। सूर्य उस समय बिल्कुल विषुवद् वृत्त पर ही हो, ऐसा अवसर कई वर्षो के बाद ही आता है। लेकिन प्राचीन काल से ही इसी पलभा द्वारा लग्न साधनार्थ चरखण्ड बनाये जाते रहे है। इसी कारण इस पद्धति द्वारा साधित लग्न में भी स्थूलता बनी ही रहती है। इसी पलभा का नाम अक्षभा या विषुवदभा भी है। वह 0 अक्षांश पर शून्य रहती है। तथा उत्तर दक्षिण की ओर हटने पर इसका मान बढ़ने लगता है। अत: जहॉं का अक्षांश ज्ञात हो, वहॉं की पलभा अक्षांशों द्वारा सहज ही जानी जा सकती है। अथवा पलभा ज्ञात हो तो उससे स्थानीय अक्षांश भी ज्ञात हो जाता है।

अक्षांश द्वारा पलभा साधन –

1. अक्षांशों को 10 से गुणाकर, गुणनफल को 625 में से घटा लें।
2. शेष का वर्गमूल लेकर उसे 25 में से घटाने पर पलभा होती है।

उदाहरणार्थ -

दिल्ली का अक्षांश 28.39 × 10 = 286.30

625 – 286.30 = 338.30 का वर्गमूल लेना होगा।

सावयव अंको का वर्गमूल निकालने के लिये यह विधि अपनायें।

1. √338 = 18, शेष 14 बचे।
2. शेष में 1 जोड़कर 60 से गुणा किया तो 15 × 60 = 900 हुआ।
3. 900 + 30 (पूर्व शेष) = 930 में पहले के मूल 18 को दुगुना कर व उसमें 2 जोड़कर 18 × 2 = 36 + 2 = 38 से 930 में भाग दिया
4. 930 ÷ 38 = 24 लब्धि हुई। अत: सूक्ष्म वर्गमूल 18.24 रहा। इसे 25 में से घटाने पर 25- 18.24 = 6.36 दिल्ली की पलभा है।

पंचांगों में दिल्ली की पलभा 6.32 या 6.33 भी दी होती है। अंगुलों में भेद अपरिहार्य है।

पलभा द्वारा अक्षांश ज्ञान – अंगुलादि पलभा को पॉच से गुणा करें। तदुपरान्त पलभा के वर्ग को

10 से भाग देकर लब्धि को पंचगुणित पलभा में से घटा दें तो अक्षांश होंगे। यह एक स्थूल प्रकार है। शुद्ध सूक्ष्म प्रकार के लिये बहुत सी क्रियायें है।

दिल्ली पलभा 6.36×5 = 33.00 है। $(6.36)^2 = 43.33$

43.33 ÷ 10 = 4.21 को घटाया। 33.00 – 4.21 = 28.39 दिल्ली का अक्षांश हुआ। यदि 28^0 38 उत्तरी अक्षांश से क्रिया करें तो पलभा 6.35 सिद्ध होती है।

पलभा से चरखण्ड साधन का उदाहरण –

काशी की पलभा – 5।45 है, तो वहॉं का चरखण्ड साधन –

5।45	5।45	5।45
× 10	× 8	× 10
50।450÷60	40।360÷60	50।450÷60
+7	+6	+ 7
57	46	57 ÷ 3 = 19

इस प्रकार 57, 46, एवं 19 ये काशी के तीन चरखण्ड हुये।

पलभा चक्र सारिणी

अक्षांश	पलभा			अक्षांश	पलभा			अ.	पलभा			अ.	पलभा		
	अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्		अ	व्या	तत्
1	0	12	34	16	3	26	24	31	7	12	36	46	12	25	37
2	0	25	9	17	3	40	5	32	7	29	53	47	12	52	5
3	0	37	44	18	3	53	56	33	7	47	31	48	13	19	34
4	0	50	21	19	4	7	55	34	7	5	38	49	13	48	18
5	1	3	0	20	4	20	0	35	7	24	7	50	14	18	3
6	1	15	40	21	4	26	22	36	8	43	5	51	14	49	8
7	1	28	23	22	4	50	52	37	9	2	25	52	15	21	32
8	1	41	10	23	5	5	83	38	9	20	30	53	15	55	30
9	1	54	0	24	5	20	31	39	9	43	1	54	16	31	6
10	2	6	54	25	5	35	42	40	10	4	9	55	17	8	34
11	2	19	55	26	5	51	7	41	10	25	50				
12	2	33	0	27	6	6	0	42	10	40	18				
13	2	46	12	28	6	22	48	43	11	11	24				
14	2	59	28	29	6	39	4	44	11	35	24				
15	3	12	54	30	6	55	41	45	12	0	0				

अक्षांश से पलभा निकालना –

एक त्रिज्या – 3438 । इस प्रकार इष्ट अक्षांश की ज्या Sine । ज्या लाग्रतमिक सारिणी के सहारे निकाली जाती है। फिर तो अक्षांश की ज्या होगी वह अक्षज्या होगी।

कोटिज्या – लम्बज्या = त्रिज्या^{2} **- अक्षज्या^{2}।**

पलभा और चरखण्ड साधन की रीति –

जिस दिन अयनांशसहित सूर्य - राशि अंश कला विकला से शून्य हो या उस दिन मध्याह्नके समय समान भूमि पर बारह अंगुलका शंकु रखे जो छाया पड़े उसको **पलभा** कहते हैं। तिस पलभाको तीन स्थानमें लिखकर क्रमसे १०।८।१० से गुणा करे , अन्तके तीसरे गुणनफलमें ३ तीनका भाग देय तब क्रमसे तीन चरखण्ड होते हैं।

उदाहरण -- काशीकी पलभा ५ अंगुल ४५ प्रतिअंगुल है इसको पहले १० से गुणा करा तब ५७ अंगुल ३० प्रतिअंगुल यह प्रथम चरखण्ड हुआ। फिर पलभा ५ अंगुल ४५ प्रति अंगुल को ८ से गुणा करा तब ४६ अंगुल . प्रति अंगुल यह द्वितीय चरखण्ड हुआ। पलभा ५ अंगुल ४५ प्रति अंगुलको १० दशसे गुणा करा तब ५७ अंगुल ३० प्रति अंगुल हुआ। इसमें ३ का भाग दिया तब १९ अंगुल १० प्रति अंगुल तीसरा चरखण्ड हुआ। इस प्रकार प्रथम चरखण्ड ५७ अ ., ३० प्र . हुआ , दूसरा चरणखण्ड ४६ अं . हुआ , तीसरा चरखण्ड १९ अं ., १० प्र . हुआ।

चर, चरसंस्कार भुजसंस्कार और अयनांश –

सायनरविकी पूर्वोक्तकेन्द्रसे भुज लानेकी रीतिके अनुसार भुज लावे , वह भुज यदि राशि शून्य होय तब अंशोको छोडकर केवल अंशादिमात्राको प्रथम चरणखण्डसे गुणा करे और यदि भुजमें एक राशि होय तो राशिको छोडकर अंशादिको द्वितीय चरणखण्डसे गुणा करे और यदि भुजमें दो राशि होंय तो राशिको छोडकर केवल अंशादि मात्राको तृतीय चरणखण्डसे गुणा करे जो गुणन फल हो उसमें ३० तीसका भाग देय जो लब्धि मिले उसमें जिस चरणखण्डसे गुणा करा हो उससे पहला चरणखण्ड जोडदेय तब चर होता है। वह सायन मेषादि छःराशिके भीतर होय तो ऋण होता है और छः राशिसे अधिक तुलादिसे कम छः राशि होय तो धन होता है। यदि सायंकालीन ग्रह करना होय तो चरको विपरीत ग्रहण करे अर्थात् सायन रवि मेषादि छः राशियोंके भीतर होय तो धन और तुलादि छः राशिके भीतर होय तो ऋण जाने।

वह चर यदि धन होय तो मन्दस्पष्ट रविकी विकलाओंमें युक्त करदे और ऋण होय तो घटा देय तब स्पष्ट रवि होता है। चरको २ से गुणा करकें नौका भाग देय जो लब्धि होय उसका चरके समान धन ऋण समभ्क्ते और मन्द स्पष्ट रविकी कलाओं में युक्त करदेय (इसको चर संस्कार और द्वितीयफलसंस्कार कहते हैं।

रवि के मन्द फल में उसका भाग देकर जो लब्धि हो उसको भी चर के समान धन ऋण मानें और

मन्दस्पष्ट रवि के अंशो में युक्त कर दे (इसको मन्दफलसंस्कार और तृतीयफलसंस्कार भी कहते हैं। इन दोनों रीतियों का चन्द्र स्पष्ट करने में काम पडता है) । शालिवाहन शके में चारसौ चौवालीस ४४४ घटा देय जो शेष रहे वह कला होती है उनमें साठ का भाग दे जो लब्धि मिले वही अयनांश होता है। अयनांशको मन्दस्पष्टरवि में मिला दे तब सायन रवि होता है।

उदाहरण -- शाके **५३३४** में ४४४ घटाये तब शेष रहे **१०९०** यह कला हैं , इनमें **६०** का भाग दिया तो लब्धि हुई **१८** अं . **१०** कला यह अयनांश है , इसको मन्दस्पष्ट रवि **१** रा . **५** अं . **४४** कला **१०** वि . में युक्त किया तब **१** रा . **२३** अं . **५४** क . **१०** वि . यह सायन रवि हुआ। यह सायन रवि तीन राशिके भीतर है इस कारण यह भुज है। अब इस **१** रा . **२३** अं . **५४** क . **१०** वि . भुजमें एकराशि है इस कारण अंशादिको (**२३** अं . **५४**क . **१०**वि .) को द्वितीय चरखण्ड **४६** से गुणा करा तब गुणनफल **१०९९** अं . **३१** क . **४०** वि . हुआ इसमें **३०** का भाग दिया तब लब्धि हुई **३६** विकला **३९** प्रतिविकला , प्रथम चरखण्ड से गुणा किया था इस कारण द्वितीय चरखण्ड **५७** को लब्धि **३६** वि . **३९** प्रतिविकला में युक्त किया तब **९३** विकला **३९** प्रति विकला यह चर हुआ ऋण है क्योंकि सायन रवि मेषादि छः के भीतर है । इस कारण मन्द स्पष्टरवि **१** राशि **५** अंश **४४** कला **१०** विकलामें चर **९३** वि . अर्थात् **१** क . **३३** विकलाको घटाया तब शेष रहा **१** रा . **५** अं **४२** क . **३७** वि . यह स्पष्ट रवि हुआ।

दिनमान रात्रिमान और अक्षांश लाने की रीति -

यदि सायन रवि मेषादि छः राशिके अन्तर्गत हो तो उसको उत्तर गोलीय कहते हैं और यदि सायनरवि तुलादि छः राशिके अन्तर्गत हो तो उसको दक्षिणगोलीय कहते हैं । इसी प्रकार यदि सायन रवि मकरादि छः राशिके अन्तर्गत हो उसको उत्तरायण कहते हैं और यदि कर्कादि छः राशिके भीतर हो तो दक्षिणायन कहते हैं , पीछे लाये हुए पलात्मक चर का यदि सायन रवि उत्तरगोलीय होय तो **१५** पन्द्रह घडी में युक्त करे और सायनरवि दक्षिणगोलीय हो तो पलात्मक चर **१५** पन्द्रह घडी में घटा दे जो शेष रहे वही दिनार्द्ध होता है। उस दिनार्द्धको **३०** घड़ी में घटा दे तब जो शेष रहे सो रात्र्यर्द्ध होता है । तदनन्तर दिनार्द्धको द्विगुणित करने से दिनमान होता है और रात्र्यर्द्ध को द्विगुणित करने से रात्रिमान होता है और दिनमान तथा रत्रिमान को जोड़ने से अहोरात्र मान होता है। पलभा को पांच से गुणा करके जो गुणफल मिले उसको अंशात्मक माने उसमें पलभा के वर्ग का दशवां भाग अंशात्मक घटा दे जो शेष रहे वह अक्षांश होता है। अक्षांश सर्वदा दक्षिण होता है , क्योंकि हिन्दु स्थान के दक्षिण (विषुववृत्त रेखा) है।

उदाहरण ---पलात्मक चर **९३** यह सायनरवि उत्तरगोलीय है क्योंकि मेषादि छः राशिके अन्तर्गत है इस कारण चर **९३** को **१५** घड़ीमें युक्त किया तब **१६** घड़ी **३३** पल यह दिनार्द्ध हुआ। इस दिनार्द्ध **१६** घ . **३३**प . को **३०** घड़ीमें घटाया तब शेष रहा **१३** घ . **४७** पल रात्र्यर्द्ध हुआ। दिनार्द्ध **१६** व . **३३** पलको द्विगुणित किया तब **३३**घ . **६** पल यह दिनमान हुआ रात्र्यर्द्ध **१३** घ . **२७** को द्विगुणित किया तब **२६** घड़ी **५४** पल यह रात्रिमान हुआ। दिनमान और रात्रिमानको जोडा तब **६०** घड़ी

अहोरात्रिमान हुआ ॥

पलभा **५** अंगुल **४५** प्रतिअंगुलको **५** से गुणा करा तब **२८** अं . **४५** कला हुआ । तब पलभा **५।४५** का वर्ग किया तो **३३।३** हुआ इसमें दश का भाग दिया तब **३** अं . **१८** क . **१८** वि . लब्धि हुए इनको पांचसे गुणा करी हुई पलभा **२८** अं . **४५** क . में युक्त करा तब **२५** अं . **२६** क . **४२** वि . यह काशीका दक्षिण अक्षांश हुआ ॥

भुज -कोटि -पद - सूर्यमन्दोच्च --केन्द्र और रवि मन्द फल साधन की रीति -

यदि ग्रह का राश्यादि मान तीन राशि से कम हो तो वहीं **भुज** होता है । और तीन राशिकी अपेक्षा अधिक हो तो छः राशि में घटाकर जो शेष बचे वह भुज होता है । और छ: राशि से अधिक हो तो छ: राशि ही उसमें घटाने से जो शेष बचे वह भुज होता है । नव राशि से अधिक हो तो बारह राशि में घटाकर जो शेष रहे वही भुज होता है । बारह राशि में घटाने से शेष कोटि होता है । तीन तीन राशि का एक एक पद होता है । २ रा . १८ अं . क . ० विकला यह रवि का मन्दोच्च होता है । मन्दोच्चमें ग्रह घटा देय जो शेष रहे सो मन्दकेन्द्र होता है (और शीघ्रोच्चमें ग्रह घटा कर जो शेष रहे सो शीघ्रकेन्द्र होता है) मेष आदि छः केन्द्र में धन मन्द फल होता है (अथवा शीघ्रफल होता है) । तुला आदि छः केन्द्रमें ऋण मन्द फल होता है । रविका मन्द केन्द्र उक्त रीतिसे लावे । रविका केन्द्र लाकर उसके भुज करे और उन भुजों के अंश करे , उनमें नौ ९ का भाग देय जो लब्धि मिले उसको बीच अंशमें घटावे जो शेष रहे उसको उपरोक्त नवमांश से गुणा कर देय जो गुणनफल होय उसको अलग एकांत स्थान में लिखे । फिर नौ ९ का भाग देय जो लब्धि होय उसको **५७** अंशमें घटावे जो शेष रहे उसको अलग एकांतमें लिखे हुए पूर्वोक्त अंशादिमें भाग देय जो लब्धि होय उसको अंशादि मन्द फल जाने । यह मन्दफल , केन्द्र मेष राशिसे तुलाराशि पर्यंतके भीतर होय तो धन और तुलाराशिसे लेकर मेषपर्यन्त **६** राशिके भीतर होय तो ऋण जाने । तदनन्तर यदि मन्दफल मध्यम रविमें धन होय तो युक्त कर देय और ऋण होय तो घटा देय तब मन्द स्पष्ट रवि होता है **। उदाहरण** – रवि के मन्दोच्च **२** रा ., **१८**अं ., .क . , .वि . है , इसमें मध्यम रवि **१** रा . ४ अ . **१३**क

. ४२वि . घटाया तो शेष रहा **१** रा . **१३**अ . ४६क . **१८**वि . यह रविका केन्द्र हुआ , यह केन्द्र तीन राशि से कम है , इस कारण भुज है । इससे जो राशि है उसके अंश करके अंशों में जोड़े तब **४३**अं . **४६**क . **१८**वि . हुए इनमें नौ ९ का भाग दिया तब लब्धि हुए ४अं . **५१**क . ४८वि . इनको २० अंशमें घटाया तब शेष रहे **१५**अं . ८ क . **१२** वि . इनको भुज के नवमांश ४ अं . **५१** क . ४८ वि . से गुणा करा तब **७३** अं . **३६**क . **५२** वि . हुए इनको दो स्थान में लिखा एक स्थान में ९ नौ का भाग दिया तब ८ अं . **१०** क . **४५** वि . लब्धि हुए इनको **५७** अंशमें घटाया तब शेष रहे ४८ अं . ४९ क . **१५** विकला इनका दूसरे स्थानमें लिखे हुए **७३** अं . **३६**क . **५२** वि .मे भाग देनेके लिये भाज्य **७३**अं . **३६**क . ६२वि . ० भाज्य ४८अं . ४९क . **१५**वि . इन दोनोंकी कला करी तब भाज्य **२६५०१२** भाजक **१७५७५५** हुए । फिर भाज्य **२६५०१२** में **१७५७५५** का भाग दिया तब अंशादि लब्धि हुई **१** अं ., ३०क ., ४८वि . यह रविका मन्द फल हुआ यह धन है क्योंकि केन्द्र मेषादि छः

राशि से कम है। इस कारण इस १ अं., ३० क., २८ वि. मन्दफलको मध्यम रवि १ रा., ४ अं., १३क., ४२वि. मे युक्त किया तब १ रा. ५अं., ४४ क., १० वि. यह मन्दस्पष्ट रवि हुआ।

1.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र में पलभा एवं चरखण्ड एक महत्वपूर्ण इकाई है। मेषादि राशियों में सायन सूर्य से दिनार्द्ध में पलभा का ज्ञान किया जाता है, और जब हमें पलभा का ज्ञान हो जाता है, उसी पलभा से हम चरखण्ड का ज्ञान भी गणितीय रीति से कर लेते है। ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया में हमें इनकी आवश्यकता होती है। आप इस इकाई में पलभा साधन एवं चरखण्ड साधन किस प्रकार होता है। उसकी गणितीय उपपत्ति को अच्छी तरह से समझ पायेंगे।

अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दें -

1. पलभा का ज्ञान किस समय में किया जाता है।
2. सायन सूर्य का क्या अर्थ होता है ।
3. सूर्य ठीक सम्पात बिन्दु पर कब होता है।
4. चरखण्ड का ज्ञान किस आधार पर किया जाता है।
5. एक त्रिज्या का मान कितना होता है ।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

पलभा – द्वादशांगुल शंकु की छाया

चरखण्ड – द्युरात्रवृत्त में उन्मण्डल और क्षितिज वृत्त का अन्तर

ग्रहस्पष्टीकरण – ग्रहाणां स्पष्टीकरणं ग्रहस्पष्टीकरणम् ।

ग्रहगति आदि - ग्रहों की गति आदि

अभ्यास प्रश्न का उत्तर -

1. दिनार्द्ध में
2. अयनांश सहित सूर्य
3. 21 मार्च और 23 सितम्बर को
4. पलभा
5. 3438

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

1.7 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. पलभा को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।
2. चरखण्ड से आप क्या समझते है। उसका साधन कीजिये।

इकाई – 2 लंकोदय मान एवं स्वोदय साधन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड के द्वितीय इकाई **लंकोदय एवं स्वोदय मान** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाईयों में आपनें पलभा एवं चरखण्ड का ज्ञान प्राप्त कर लिया है । यहॉं इस इकाई में आप लंकोदय एवं स्वोदय मान का ज्ञान प्राप्त करेंगे ।

लंका के उदयकालीक मान **लंकोदय** एवं अपने देश का संस्कृत मान **स्वोदय मान** कहलाता है ।

इस इकाई में आप लंकोदय एवं स्वोदय मान से सम्बन्धित समस्त विषयों का अध्ययन प्राप्त करेंगे ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि –

1. लंकोदय क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. लंका का उदयकालिक मान कितना हैं । का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।
3. स्वोदय मान से क्या तात्पर्य है ।
4. लंकोदय से स्वोदयमान का साधन कैसे होता है ।
5. कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में चन्द्रस्पष्टीकरण के महत्व को समझ पायेंगे।
6. आधुनिक लघुगणक विधि द्वारा भी चन्द्रस्पष्टीकरण का ज्ञान कर पायेंगे।
7. प्राचीन विधि से चन्द्रस्पष्टीकरण का ज्ञान कर सकेंगे ।

2.3 लंकोदय एवं स्वोदयमान का परिचय

भूमध्य रेखा पर जो राशियों का उदयकाल है वहॉं का चरखण्ड शून्य होने के कारण उदय काल में परिवर्तन नहीं होता है। यहॉं पर जो राशियों का उदयकाल है उसे **लंकोदय** कहते है ।

आजकल की लंका तो 7 अक्षांश उत्तर पर है । यह प्राचीन लंका नही है । यह पहले भूमध्य रेखा पर समुद्र में थी ऐसा का जाता है । लंका का अक्षांश शून्य था । इसी कारण भूमध्य रेखा पर जो राशियों का उदयकाल होता है उसे लंकोदय कहते है । प्राचीन लंका समुद्र के गर्भ में चली गई होगी ऐसा अनुमान किया जाता है । परन्तु उसका मान अभी तक ज्योतिष शास्त्र में माना जाता रहा है । जिसमें लंका को निरक्ष देश कहा है ।

राशियॉं	**असु में**	**पलों में**	**घड़ी पल में**	**प्राचीन लंकोदय पल**	**वेधोपलब्ध**
मेष कन्या तुला मीन	1674	279	4.39	278	279
वृष सिंह वृश्चिक कुम्भ	1795	292.16	4.59.16	299	299
मिथुन कर्क धनु मकर	1931	321.83	5.21.83	323	322

- + + - 5400 900 15-0 900 900

लंका में मेषराशि का उदय २७८ पल, वृषभ राशि का उदय २९९ पल. मिथुन राशिका उदय ३२३ पल, कर्क का ३२३, सिंह का २९९, कन्या का २७८ पल रहता है और लंका में तुला राशि से मीन राशि तक उदय के पल, कन्या राशि से उलटा मेष राशि तक लिखा है सो जानना जिस देश का उदय लाना हो उस देश का चरखण्ड लेकर क्रम से मेष, वृष, मिथुन के उदय पलों में कम करना और वही चरखण्ड का उल्टा कर्क सिंह कन्या के पलात्मक उदय में क्रम से युक्त करना तो स्वदेश का पलात्मक उदय मेष से कन्या तक होता है और वही उदय विपरीत क्रम में तुला से मीन तक होता है।

भूमध्य रेखा पर प्रत्येक राशियों का उपर बताया है। इसमें मेष, कन्या, तुला और मीन का उदय 1674 असु या 279 पल या 4/39 घटयादि है। यह वेधोपलब्ध लंकोदय है अर्थात् वेध से इतना उदय पल का प्रमाण विदित हुआ है। प्राचीन काल में इन राशियों का लंकोदय 278 पल ही माना गया है। बहुधा प्राचीन लंकोदय का ही उपयोग कई ज्योतिर्विद करते है।

इसी प्रकार वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ का एक ही है और शेष मिथुन, कर्क, धनु और मकर का लंकोदय एक ही है।

इसको इस प्रकार समझना चाहिये कि पूर्व क्षितिज पर मेष राशि के उदय होने से दूसरी राशि के उदय होने तक 1674 असु या 279 पल लगते है। इसके उपरान्त वृषराशि का उदय होता है। वह वृषराशि 1795 असु या 299 पल पूर्व क्षितिज पर रहती है। इसके उपरान्त मिथुन राशि का उदय होना आरम्भ होता है। मिथुन राशि के पूर्ण उदय होने में 1931 असु या 321 – 83’ अर्थात् 322 पल लगते है। इसी प्रकार शेष राशियों का उदय काल का प्रमाण समझना चाहिये। यहीं उदय प्रमाण लंकोदय कहलाता है।

प्राचीन लंकोदय और वेधोपलब्ध लंकोदय में बहुत कम अन्तर दिखलाई पड़ता है। यदि सूक्ष्म गणित करना है तो नवीन प्राप्त वेधोपलब्ध लंकोदय का उपयोग करना होगा। साधारण प्रकार से प्राचीन लंकोदय का ही उपयोग होता है।

भूमध्य रेखा पर इन राशियों का उदयकाल अर्थात् उदय प्रमाण एक सा क्यों नही हैं, इसका कारण समझ लेना चाहिये। मेष से बड़ा वृष का, उससे बड़ा उदयकाल मिथुन का है। मिथुन के समान कर्क का है। कर्क के उपरान्त से उदयकाल घटना आरम्भ होता है। अर्थात् सिंह का कुछ कम और कन्या का और भी कम हो जाता है।

पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करने का मार्ग अंडाकार है। इसी को क्रान्तिवृत्त सूर्य के घूमने का मार्ग कहते है। इसी मार्ग से राशियों का उदय एवं अस्त होता है अर्थात् इसी मार्ग से राशिचक्र घूमता दिखलाई पड़ता है। राशियों का क्रम और जिस क्रम से उदय होता है।

राशि चक्र स्थिर है परन्तु पृथ्वी की गति के कारण पृथ्वी स्थिर और राशिचक्र चलायमान दिखलाई पड़ता है। राशियॉं पूर्व से उदय होकर पश्चिम को जाती दिखाई देती है।

स्वदेशोदय लानेका उदाहरण

मेषराशि के पलात्मक उदय २७८ में लखीमपुरके प्रथम चरखण्ड ६० को घटाया तब २१८ यह पलात्मक लखीमपुरके विषे मेषराशिका उदय हुआ, वृषके पलात्मक उदय २९९ में द्वितीय चरखण्ड ४८ घटाया। तब २५१ यह पलात्मक वृषका उदय हुआ, मिथुनके पलात्मक ३२३ में तृतीय चरखण्ड २० को घटाया। तब ३०३ यह मिथुनका पलात्मक उदय हुआ, अब कर्कके उदय ३२३ सिंहके उदय २९९ कन्याके उदय २७८ में क्रमसे २०।४८।६० युक्त किया तब क्रम से कर्क का ३४३ सिंह का ३४७ कन्या का ३३८ यह पलात्मक उदय हुआ स्वदेशका उदय मेष से कन्या तक का उलटा किया तब तुला से मीन तक का पलात्मक स्व देशोदय हुआ जैसा चक्र में देखना।

उदयकाल में अन्तर और स्वोदय –

उपरोक्त जो लंकोदय मान बताया गया है ज्यों ही वहॉं से अक्षांश बढ़ता है त्यों राशियों के उदय काल में अन्तर पड़ता है। प्रत्येक स्थान पर राशियों का उदय प्रमाण भिन्न - भिन्न होता है। प्रत्येक स्थान पर उस स्थान का जो उदयकाल होता है उसे **स्वोदय** कहते है। स्व अर्थात् अपने स्थान का **स्थानिक उदयकाल**।

लंकोदय से स्वोदय बनाया जाता है। अर्थात् इष्ट स्थान पर इन राशियों का उदयकाल, लंकोदय पर से गणित द्वारा साधन किया जाता है।

प्रत्येक स्थान के स्थानिक उदयकाल स्वोदय बनाने के लिये पलभा या अक्षांश विदित होना चाहिये। यदि किसी स्थान का पलभा विदित हो तो पलभा से उस स्थान का अक्षांश भी प्रकट हो सकता है। किसी स्थान का स्वोदय बनाने के लिये पलभा या अक्षांश विदित होन चाहिये।

यदि किसी स्थान का पलभा विदित हो तो पलभा से उस स्थान का अक्षांश भी प्रकट हो सकता है। यदि किसी स्थान का स्वोदय विदित हो गया तो स्वोदय से ठीक – ठीक लग्न जाना जा सकता है। पलभा अंगुल और व्यांगुल में होता है। 6 व्यांगुल का एक अंगुल होता है। व्यांगुल को प्रत्यंगुल या प्रति – अंगुल भी कहते है। 60 तत्प्रति अंगुल का एक प्रति अंगुल होता है।

पलभा से स्वोदय निकालना –

लग्न साधन करने के लिये स्वोदय बनाने की आवश्यकता पड़ती है। यह स्वोदय पलभा से बनाया जाता है। पलभा साधन की रीति इस प्रकार से है –

काशी की पलभा – 5।45

5।45	5।45	5।45
× 10	×8	×10
50।450	40।360	50।450
7	6	7
57	46	57/3 = 19

इस प्रकार 57, 46 एवं 19 ये तीन चरखण्ड हुये।

लंकोदय मान				काशी का पलात्मक स्वोदय मान		
278	-	57	=	221	मेष	मीन
299	-	46	=	253	वृष	कुम्भ
323	-	19	=	304	मिथुन	मकर
323	+	19	=	342	कर्क	धनु
299	+	46	=	345	सिंह	वृश्चिक
278	+	57	=	335	कन्या	तुला

इसी प्रकार लंकोदयकालिक मान से स्वोदय मान का साधन किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दें -

1. लंकोदय से क्या तात्पर्य है।
2. चरखण्ड का साधन कैसे किया जाता है ।
3. स्वोदय क्या है ।
4. क्या चरखण्ड से स्वोदय साधन किया जाता है ।
5. लंका का उदय मान है ।
6. काशी की पलभा कितनी है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

लंकोदय- लंका का उदय मान

पलभा – द्वादशांगुल शंकु की छाया

चरखण्ड - द्युरात्र वृत्त में उन्मण्डल और क्षितिज का अन्तर

स्वोदय – स्वदेशीय उदय मान

अभ्यास प्रश्न का उत्तर -

1.लंका का उदयकालीक मान

2. पलभा मान से

3. अभीष्ट स्थान का उदय मान

4. हॉं

5. 278, 299, 323

6. 5।45

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

2.7 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. लंकोदय को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।
2. स्वोदय से आप क्या समझते है। उसका साधन कीजिये।

ईकाई – 3 अयनांश

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड के तृतीय इकाई **अयनांश** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपनें पलभा, चरखण्ड, लंकोदय तथा स्वोदय मान का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉं इस इकाई में अयनांश का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

अयन सम्बन्धित अंश को **अयनांश** कहते है। आकाशस्थ समस्त बिन्दु सायन मान से गतिमान है। अयन के ज्ञानाभाव में हम ग्रहों के बारें में सम्यक् अध्ययन प्राप्त नहीं कर सकते है।

इस इकाई में आप अयनांश से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन प्राप्त करेंगे, जिसके पश्चात् आप अयनांश को भली – भॉंति समझ सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि –

1. अयनांश क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. सम्प्रति वेधोपलब्ध अयनांश का मान कितना हैं इसका ज्ञान प्राप्त करेंगे।
3. अयनांश साधन कैसे किया जाता है।
4. कुण्डली निर्माण में अयनांश का क्या प्रयोजन है।
5. ग्रहस्पष्टीकरण की प्रक्रिया में अयनांश के महत्व को समझ पायेंग

3.3 अयनांश का परिचय

अयन सम्बन्धित अंश: अयनांश:। स द्विविधम् – सायन निरयणश्च। अर्थात् अयन सम्बन्धित अंश को अयनांश कहते है, वह दो प्रकार का होता है – सायन और निरयण। आकाशस्थ समस्त बिन्दु सायन मान से गतिमान है।

सूर्य सिद्धान्त में अयनांश साधन इस प्रकार कहा गया है –

त्रिंशत् कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बिते।
तद्गुणादभूदिनैर्भक्ताद भगणांशदवाप्यते।।
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधा।।

3.3.1 अयनांश साधन- अयनांश साधन के कई प्रकार ज्योतिष गणित मे प्रचलित हैं। यहां पर हम चित्रापक्षीय अयनांश साधन बतलायेंगे। क्योंकि आधुनिक पंचागकार इसी अयनांश को प्रयोग में ला रहे हैं।

मेषादि विन्दु से बसंत-संपात विन्दु की दूरी अयनांश कहलाती है।चित्रा तारा से शरद संपात की दूरी

भी यही होने के कारण इस अयनांश को चित्रा पक्षीय अयनांश भी कहा जाता है।

अयनांश गति-

सूर्यसिद्धान्त से 54 विकला प्रतिवर्ष

ग्रहलाघव से 60 विकला प्रतिवर्ष

दृश्य गणित से 50.3 विकला प्रतिवर्ष

विधि -

खखाष्टम्यून 1800 शकात्खशैले: 70
खपन्चभि 50 भाग कलादि लब्ध्यो:।
यदंतरं तत्सहिता द्विहस्ता 22
नवांक 9 दस्त्रा अयनांश संज्ञा ॥

जिस वर्ष का अयनांश निकालना हो उस वर्ष के शाके में से 1800 घटाओ शेष को दो स्थानों मे लिखो एक स्थान में 70 का भाग देकर अंशादि फल लाओ। दूसरे स्थान पर 50 का भाग देकर कला दि फल लाओ। अंशादि फल मे कलादि फल घटाओ जो शेष बचे उसे 22^0 09' 29''
मे जोड़ने से मेष संक्रांति के दिन अयनांश होगा।

उदाहरण - 1 मई 2011 का अयनांश

शाके 1933 -1800 =133

133/70 = लब्धि 1 शेष 63 गुणा 60 = 3780

3780/70 = 54

दूसरी बार

133/50 = लब्धि 2 शेष 33 गुणा 60 =1980

1980/50 = लब्धि 39 शेष 30 गुणा 60 = 1800

1800/50 = लब्धि 36

= 01^0 54' 00'' 00'''

- 02' 39'' 36'''

= 01^0 51' 20'' 24'''

22^0 09' 29''

+01^0 51' 20''

=24^0 00' 49'' यह मेषार्क कालिक अयनांश हुआ।

1 मई 2011 को प्रात: 5:30 का सूर्य स्पष्ट

00 राशि 16 अंश 16 कला 31 विकला या 16.27 अंश

360 अंश मे अयन गति =50.3 विकला

16.27 अंश में अयन गति = 50.3 गुणा 16.27

= 824.88

824.88/360 = 2.29 विकला

इसे मेषार्क कालिक अयनांश में जोड़ देंगे

जोड़ने पर 24^0 00' 51 स्पष्ट अयनांश प्राप्त हुआ।

जगत् के सब पंचांगों की उत्पत्ति प्राचीन काल में धार्मिक क्रियाओं के समय निश्चित करने के लिए हुई है। बाद में उनमें सामाजिक उत्सव और वर्तमान काल में राजकीय महत्व के कार्यक्रम भी शामिल किए गए हैं। हमारे समस्त प्राचीन सामाजिक उत्सवों को भी धार्मिक स्वरूप दिया गया है। हमारे भारत देश में कई शताब्दियों से विविध धर्म प्रचलित हैं। इससे हमारे पंचांग भी विविध प्रकार के बने हैं। इनके मुख्य प्रकार (1) हिंदू, (2) इस्लाम, (3) पारसी और (4) खिष्टीय है। आज के हिंदू पंचांगों के भी करीब 30 प्रकार पाए जाते हैं। हिंदू पंचांगों के अतिरिक्त अन्य (इस्लामी आदि) पंचांगों में गणित का विषय बहुत कम आता है, इससे हमारी अधिकतर चर्चा हिंदू पंचांगों के विषय में ही होगी। अत: इस लेख में, जहाँ अन्यथा न कहा गया हो, वहाँ "पंचांग" शब्द से हिंदू पंचांग ही समझना चाहिए।

हमारे पंचांगों में उत्सवों और व्रतों के अतिरिक्त ग्रहण, सूर्योदयास्त, इष्ट घटनाओं के समय, आकाश में ग्रहों की स्थिति इत्यादि खगोलीय विषय दिए जाते हैं। खगोलशास्त्र आजकल पश्चिम में इतनी उन्नत स्थिति में आ गया है कि वहाँ के पंचांगों में दिए हुए खगोलीय घटनाओं के समय आकाशस्थित ग्रहों की प्रत्यक्ष घटनाओं के साथ सेकंड तक बराबर मिल जाते हैं और यहाँ हमारे पंचांगों का गणित इतना स्थूल हो गया है कि उनके ग्रहणों में डेढ़ घंटे तक का अंतर पाया जाता है। इसका कारण यह है कि जिन ग्रंथों से हमारे पंचांग बनते हैं वे कम से कम 500 वर्ष पुराने हैं और इन 500 वर्षों में पश्चिम में गणित ज्योतिष में बहुत उन्नति हो गई है। इससे हमारे पंचांगों का गणित अर्वाचीन गणित ज्योतिष शास्त्र से करना चाहिए, जिससे वह प्रत्यक्ष आकाश के अनुसार यथार्थ उतरे। ऐसे गणित को "प्रत्यक्ष" या "इक्तुल्य" गणित या "दृग्गणित" कहते हैं। आज गुजरात और महाराष्ट्र में समस्त पंचांग प्रत्यक्ष गणित से बनाए जाते हैं। पर भारत के अन्यान्य प्रदेशों में प्रत्यक्ष गणित से बहुत कम पंचांग बनाए जाते हैं।

किंतु केवल प्रत्यक्ष गणित से हमारे पंचांगों का प्रश्न हल नहीं हो सकता । हमारे पंचांग सूर्यचंद्र की आकाशीय स्थिति के अनुसार बनाए जाते हैं और इनमें अन्य ग्रहों की स्थिति भी दी रहती है । स्थिति

बतलाने की रीति यह है कि आकाश की एक निश्चित रेखा के ऊपर एक निश्चित बिंदु से ग्रहों के अंतर नापे जाते हैं ओर ये अंतर पंचांगों में दिए जाते हैं। उस निश्चित रेखा को "क्रांतिवृत्त", निश्चित बिंदु को "आरंभस्थान" और वहाँ से ग्रह के अंतर को "भोग" कहते हैं। पाश्चात्यों का आरंभस्थान निश्चित है और वह वसंतसंपात है। मगर हमारे पंचांग का आरंभस्थान कौन सा बिंदु हो, इस विषय में हमारे पंडितों में बहुत मतभेद है। वसंतसंपात और हमारे आरंभस्थान के बीच में जो अंतर है, उसकी "अयनांश" कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अयनांश कितना है इस विषय में हमारे पंडितों में मतभेद है। अयनांश के निश्चय के बिना आरंभस्थान का निश्चय नहीं होता और आरंभस्थान के निश्चय के बिना पंचांग बन नहीं सकता। अत: **अयनांश** हमारे पंचांग की महत्वपूर्ण समस्या है।

सायन, निरयण - जिस पंचांग में वसंतसंपात को आरंभस्थान माना जाता है, उसको "सायन" पंचांग कहते हैं और जिस पंचांग में इस संपात के अतिरिक्त किसी और बिंदु को आरंभस्थान माना जाता है, उसको "निरयण" पंचांग कहते हैं। वसंतसंपात, दक्षिणायन, शरत्संपात और उत्तरायण, ये चार बिंदु क्रांतिवृत्त के ऊपर अनुक्रम से 90-90 अंश के अंतर से आए हैं। सूर्य स्थिर है, मगर पृथ्वी सूर्य के चारों और एक वर्ष में पूरा एक चक्कर लगाती है। परंतु हमें भ्रमवश ऐसा भासित होता है कि सूर्य ही हमारे चारों ओर घूम रहा है। सूर्य के इस भासमान वार्षिक मार्ग को "क्रांतिवृत्त" कहते हैं। इस मार्ग पर सूर्य एक वर्ष में पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ हमको दिखाई देता है।

दो संपात और दो अयन, ये चार बिंदु स्थिर नहीं, किंतु ये सब वार्षिक 50 विकला की बहुत छोटी गति से सतत पश्चिम की ओर वापस जा रहे हैं। ऋतुएँ, दिन और रात्रि का बढ़ना घटना, इन सब घटनाओं का आधार ये चार बिंदु हैं, अर्थात् जब सूर्य इन बिंदुओं के पास आता है, तब ये घटनाएँ होती हैं। इससे ऋतु, दिनमान, इत्यादि सायन वर्ष के अनुसार होते हैं। सायन वर्ष का मान 365 दिवस, 5 घंटे, 48 मिनट और 46 सेकंड है।

निरयण पंचांग का आरंभस्थान संपात के सिवाय कोई भी स्थिर या अस्थिर बिंदु हो सकता है। इससे जहाँ स्थिर आरंभस्थान विवक्षित हो, वहाँ असंदिग्धता के लिए "निरयण" के स्थान पर "नाक्षत्र" शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा है। तथापि "नाक्षत्र" के अर्थ में "निरयण" शब्द बहुत प्रयुक्त किया जाता है। तारे स्थिर हैं, इससे सूर्य किसी एक तारा, या स्थिर बिंदु से चलकर जितने समय के बाद फिर उस स्थिर बिंदु या तारा के पास पहुँचे उतने समय को "नाक्षत्र" वर्ष कहते हैं। नाक्षत्र वर्ष का मान 365 दिन, 6 घंटे, 9 मिनट और 10 सेकंड है। तारे दृश्य और स्थिर हैं, उनके संबंध में ग्रहों के आकाशीय स्थान नाक्षत्रपद्धति से हम बतला सकते हैं। यह नाक्षत्रपद्धति का विशेष उपयोग है। सायन वर्ष नाक्षत्र वर्ष से 20 मिनट और 24 सेकंड छोटा है।

हमारे पुराने ढंग के पंचांगों में, जो वर्षमान लिया जाता है, वह 365 दिन, 6 घंटे, 12 मिनट और 36 सेकंड है। यह न शुद्ध सायन है और न शुद्ध नाक्षत्र। यह शुद्ध सायन वर्ष से लगभग 24 मिनट और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष से लगभग मिनट बड़ा है। यह वर्षमान लेने के कारण हमारी ऋतुएँ और तारों के बीच में ग्रहों के स्थान, ये सब हमारे प्रत्यक्ष अवलोकन और अनुभव से भिन्न आते हैं।

ऐसी स्थिति में हमको क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले हमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि हमारे पंचांग में कौन कौन से विषय आते हैं। पंचांग अर्थात् पाँच अंग ये हैं : तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण।

"तिथि" पूर्ण चंद्रबिंब का 15वाँ हिस्सा ओर "करण" 30वाँ हिस्सा बतलाता है। "वार" एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का समय बतलाता है। "नक्षत्र" क्रांतिवृत्त का 27वाँ हिस्सा और "राशि" 30वाँ हिस्सा हैं। "योग" सूर्य और चंद्र के भोगों का योग है। इसका कारण समझने के लिए खगोल की एक दो अन्य बातें जान लेना आवश्यक है।

आकाश का जो गुंबद जैसा गोलार्ध भाग हमें पृथ्वी पर ढक्कन सरीखा रखा हुआ भासित होता है, उसको नीचे की ओर बढ़ाकर यदि पूर्ण गोल किया जाय, तो उसे हम खगोल कहेंगे। पृथ्वी के विषुवत्त के तल को यदि चारों ओर बढ़ाया जाय, तो वह खगोल को एक वृत्त में काटेगा। इस वृत्त को हम "आकाशीय विषुववृत्त" कहेंगे। आकाश में दिखाई देनेवाले किसी पिंड का आकाशीय विषुववृत्त से, उत्तर या दक्षिण, जो अंतर होता है, यह उस पिंड की क्रांति (declination) कही जाती है। गणितशास्त्र का नियम है कि जब किसी दो पिंडों के भोगांशी (celestial longitudes) का योग या वियोग (अंतर) 0 या 180 अंश होता है, तब उन दो पिंडों की क्रांति समान होती है और इसको "क्रांतिसाम्य" कहते हैं। सूर्यचंद्र के क्रांतिसाम्य का समय निकालना, पंचांग के "याग" अंग का उद्देश्य है।

इतना समझने के बाद हम यह सोच सकते हैं कि हमारा पंचांग सायन अथवा किस अयनांश का निरयण (नाक्षत्र) होना चाहिए। खगोल संबंधी कुछ ही विषय ऐसे हैं जिनमें सायन और निरयण का कोई संबंध नहीं रहता, अत: उनमें कहीं कोई मतभेद नहीं है, उदाहरणार्थ वार। जो विषय दो ग्रहों के अंतर पर निर्भर हैं, उनमें भी मतभेद नहीं है, क्योंकि ग्रहों के सायन और निरयण अंतर समान होते हैं। इसका कारण यह है कि भोगों का अंतर लेने में अयनांश वियोग क्रिया में उड़ जाता है। ऐसे विषय है तिथि और करण। इन दोनों में सूर्य और चंद्र का अंतर लेना पड़ता है ग्रहण भी ऐसा ही विषय है। सूर्य के पास यदि कोई अन्य ग्रह आए, तो वह दिखाई नहीं देता और जब वह फिर सूर्य से दूर चला जाता है, तब पुन: दिखाई देने लगता है। इन घटनाओं को ग्रहों का "लोपदर्शन" अथवा "उदयास्त" कहते हैं। ये घटनाएँ सूर्य और ग्रह के बीच के अंतर पर निर्भर करती है, इससे इनमें भी सायन निरयण दोनों प्रकर के गणितों से एक ही उत्तर आता है।

अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें -

1. अयनांश क्या है।
2. अयनांश का साधन कैसे किया जाता है ।
3. अयनांश के भेद कितने है ।
4. ग्रहस्पष्टीकरण में अयनांश का क्या प्रयोजन है ।

5. वार्षिक अयनगति कितनी है।

सूर्य, चंद्र इत्यादि के दैनिक उदय और अस्त के साथ भी सायन या निरयण पद्धति का कोई संबंध नहीं। समस्त ग्रह, ताराओं के बीच, पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं, मगर हमारे दृष्टिभ्रम के कारण कभी कभी वे हमको कुछ समय तक उलटी गति से, अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर, चलते दिखाई देते हैं। इनकी ऐसी गति को "वक्री" गति कहते हैं। इस घटना के साथ भी सायन या निरयण पद्धति का कोई संबंध नहीं। इस प्रकार पंचांग के कुछ विषयों का सायन और निरयण पद्धति से कोई संबंध नहीं है और कुछ विषय ऐसे हैं जिनके सायन और निरयण गणितों के परिणाम समान आते हैं। इन दोनों प्रकारों के विषयों में सायन और निरयण का मतभेद नहीं। अब ऐसे विषय रहे जिनका सायन गणित और भिन्न भिन्न अयनांशों के निरयण गणित, ये सब एक दूसरे से भिन्न आते हैं। ऐसे विषयों में हमको क्या करना चाहिए, अब इसपर विचार करना आवश्यक है।

उत्तरायण, दक्षिणायन और वसंतादि ऋतुओं का संबंध सायन गणना के साथ है। निरयण गणना के साथ इनका संबंध नहीं है। इससे इन विषयों को सायन गणना के अनुसार ही निर्णीत करना चाहिए। उदाहरणत:, उत्तरायण और शिशिर ऋतु का आरंभ 22 दिसंबर से ही मानना चाहिए, 14 जनवरी से नहीं। इससे उलटे विषय हैं अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्र और मेष, वृषभ आदि राशियाँ। ये सब तारों के समुदाय हैं। ये तारे स्थिर हैं, इससे इनका गणित स्थिर आरंभस्थानवाली नाक्षत्र (निरयण) गणना से करना चाहिए, जिससे तारों के बीच में ग्रहों के स्थान यथार्थता से निर्दिष्ट हो सकें।

जब निरयण गणना की बात आती हैं, तब उसके स्थिर आरंभस्थान का अर्थात् अयनांश का प्रश्न स्वाभाविक ही उत्पन्न होता है। संपात और अयन निसर्गसिद्ध हैं, इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। निरयण गणना का स्थिर आरंभस्थान संपात के सदृश नैसर्गिक नहीं, मगर वह सांकेतिक प्रकार से बहुजनसम्मति से कोई भी लिया जा सकता है। यद्यपि इस विषय में हमारे पंडितों का ऐकमत्य नहीं हुआ, तथापि भारत शासननियुक्त "पंचांग संशोधन सीमिति" (कैलेंडर रिफॉर्म कमिटी) ने जिस अयनांश की सिफारिश की है, उसे अब धीरे धीरे सभी पंचांगकार प्रयुक्त कर रहे हैं। वह इस प्रकार से है : 1963 ई. के प्रारंभ (जनवरी, 1) का अयनांश 23 डिग्री 20 मिनट 24.29 सेकेण्ड और वार्षिक अयनगति, अर्थात् अयनांश की वृद्धि = 50.27सेकेण्ड। इस वार्षिक गति से अयनांश भविष्य काल में सर्वदा बढ़ते रहते हैं। यदि भूतकाल का अनांश चाहें, तो इस गति से घटाकर लेना चाहिए।

पंचांग के अश्विनी आदि नक्षत्र और मेषादि राशियाँ क्रांतिवृत्त के समान विभाग हैं, मगर आकाश के अश्विनी आदि और मेषादि तारापुंज आकाश में समान विस्तारवाले नहीं है। ये समान अंतर पर भी स्थित नहीं हैं, अत: पंचांगस्थ और आकाशस्थ नक्षत्रों और राशियों में पूर्ण सादृश्य रहना संभव नहीं है। तथापि यथोचित स्थिर आरंभस्थान लेने से यह सादृश्य लगभग आ जाता है। संपात और अयन चल बिंदु हैं, अत: इनको आरंभस्थान मानने से पंचांग के और आकाश के नक्षत्रों और राशियों का सादृश्य कुछ समय के बाद नहीं रह जाएगा, यह स्पष्ट है।

पंचांग के दैनिक (विष्कंभादि) योगों का उद्देश्य सूर्य चंद्र का क्रांतिसाम्य है, यह ऊपर बतलाया गया

है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह गणित सायन पद्धति से करना चाहिए, यह भी समझाया गया है। इसमें और भी एक बात है। विष्कंभादि योगों में व्यतिपात 17वाँ योग है। इसे गणित सिद्धांत के अनुसार 14वाँ रखना चाहिए। इसका कारण, जैसा हमने ऊपर बतलाया है, यह है कि योग 0 (360) अंश अथवा 180 अंश होना चाहिए। सूर्य चंद्र के क्रांतिसाम्य को "महापात" कहते हैं, जो "व्यतिपात" और "वैधृत" नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें वैधृति 27वाँ योग है, जिसकी समाप्ति 360 डिग्री पर होती है। 180 डिग्री पर 13 योग होते हैं। इससे व्यतिपात 14वाँ योग होना चाहिए, मगर वह 17वाँ है। अतएव उपर्युक्त परिवर्तन आवश्यक है।

"पंचांग" में बतलाया गया है कि "वर्ष" नामक कालमान का हेतु वसंतादि ऋतु बतलाने का है, इससे वर्षमान सायन लेना चाहिए तथा इसके और भी कारण है । हमारे बहुत से सामाजिक उत्सव और धार्मिक कृत्य ऋतुओं के ऊपर निर्भर हैं, जैसे शरत्पूर्णिमा, वसंतपंचमी, शीतलजलयुक्त घट दान, शरद् के श्राद्ध का पायस भोजन, वसंत का निंबभक्षण, शरद् का नवान्नभक्षण इत्यादि । ये सब चांद्र मास के ऊपर निर्भर हैं, चांद्रमास अधिक मास पर निर्भर हैं, अधिक मास सौर संक्रांति के ऊपर निर्भर हैं और सौर संक्रांति वर्षमान के ऊपर निर्भर है । यदि हमारा वर्षमान सायन न हो, तो हमारे सब उत्सव और व्रत गलत ऋतुओं में चले जायेंगें। अंतिम 1.500 वर्षों में, अर्थात् आर्यभट से लेकर आज तक तक की अवधि में हमारा, वर्षमान सायन रहने के कारण हमारे व्रतों और उत्सवों में लगभग 23 दिनों का अंतर पड़ गया है। इस अंतर को हम "अयनांश" कहते हैं। यदि यही स्थिति भविष्य में भी बनी रही तो हमारी शरत्पूर्णिमा वसंत ऋतु में और हमारी वसंतपंचमी शरद्ऋतु में आ जायगी। इस असंगति को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है सायन वर्षमान का अनुसरण। यह अनुसरण हम दो प्रकार से कर सकते हैं :

(1) "शुद्ध सायन" और (2) "विशिष्ट सायन" ।

1. शुद्ध सायन - यह सुविदित है। वह वसंतसंपात से आरंभ होकर फिर वसंत संपात पर समाप्त होता है। इसमें अयनांश सर्वदा. (शून्य) रहता है। वर्तमान हिंदू पंचांग पद्धति के निर्माता आर्यभट के समय में, जो उत्सव जिन ऋतुओं में पड़ा करते थे, वे उत्सव उन्हीं ऋतुओं में आज भी पड़ेंगे। मगर इस पद्धति के अधिक मास वर्तमान प्रणाली के अधिक मासों से भिन्न आएँगे। हमारे आज के ज्योतिषी वर्ग में "पंचांगवाद" का ज्ञान अल्प होने और भिन्न अधिक मास के कारण उत्सव भिन्न मासों में आने से (प्रचलित पद्धति के अनुसार) शुद्ध सायन पंचांग का प्रचार नहीं होता। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पंचांग के अश्विनी आदि नक्षत्र और मेषादि राशियाँ तो नाक्षत्र (निरयण) ही रहेंगी। ही रहेंगी। सायण संक्रांतियों का उपयोग अधिक मास और चांद्र मास नाम के निर्णय के लिए होगा, जैसा आज भी अयनों और ऋतुओं के लिए उनका उपयोग होता है।

2. विशिष्ट सायन - शुद्ध सायन पंचांग का प्रचार आज कठिन है, इसलिए भारत सरकार द्वारा नियुक्त पंचांग संशोधन समिति ने विशिष्ट सायन मार्ग की संस्तुति की है। इस मार्ग में भी वर्षमान तो सायन ही रहेगा, मगर अयनांश 23 अंश स्थिर रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि हमारे उत्सवों में

और उनसे संबद्ध ऋतुओं में लगभग 23 दिनों का जो अंतर आज आता है, वह भविष्य में स्थिर रहेगा, और बढ़ेगा नहीं। दूसरा परिणाम यह होगा कि आज की प्रचलित पद्धति से जो अधिक मास आते है वे ही भविष्य में भी कुछ वर्षों तक आते रहेंगे, परंतु आगे धीरे धीरे उनमें भिन्नता बढ़ती जायगी। आज की प्रचलित पद्धति और शुद्ध सायन पद्धति इन दोनों के बीच का मध्यम मार्ग है।
इस पद्धति के अश्विनी और मेष तथा आकाश के इन नामों के तारापुंजों में प्राय: वैसा ही सादृश्य रहेगा जैसा आजकल वर्तमान है। मगर कुछ समय के बाद उनमें बहुत अंतर पड़ जायगा। वैसी अवस्था आने पर इसका उपाय भी सोचा जायगा, जिसमें हमारे आजकल के आरंभस्थान मेष और अश्विनी के बदले मीन और उत्तरा भाद्रपदा इत्यादि को आरंभ स्थान मानने की व्यवथा रहेगी। इस प्रकार की युक्तियों से, पंचांग सायन रहने पर भी, पंचांग के और आकाश के नक्षत्रों का संबंध कालांतर में भी ठीक बना रहेगा। अधिकांश जनता का संबंध ऋतुओं के साथ है। तारादिकों का संबंध केवल पंडित लोगों से है, जिनका अनुपात जनसाधारण में अत्यल्प है। वे विद्वान् हैं अत: तारों की यथार्थ गणना के लिए कोई अन्य व्यवस्था कर सकते हैं।
(1) भारत सरकार द्वारा नियुक्त पंचांग संशोधन समिति का "राष्ट्रीय पंचांग" इस विशिष्ट सायन मार्ग का एक उदाहरण है, यह ऊपर बतलाया गया है। यह मार्ग चांद्र मासों की व्यवस्था के लिए है। "राष्ट्रीय पंचांग" की दिनगणना के लिए सौर मास और प्रत्येक मास की निश्चित दिनसंख्या रखी गई है (अंगरेजी मासों की तरह), जिससे तिथियों के वृद्धि क्षय और अधिक मास की गड़बड़ी नहीं रहती। यह व्यवस्था केवल व्यावहारिक दिनगणना के लिए है। धार्मिक व्रतों लिए चांद्र मास, अधिक मास, तिथि इत्यादि तो हैं ही। दिनगणना में वर्ष के दिन 365 और प्रति चार वर्ष में एक वर्ष के 366 दिन होते है। इससे राष्ट्रीय दिनांकों का मेल अँगरेजी तारीखों से हमेशा बना रहता है, जैसा नीचे की तालिका में बतलाया गया है।
ब्रह्मगुप्त और लल्ल ने अयन चलन के संबंध में काई चर्चा नहीं की है, परंतु आर्यभट द्वितीय ने इस पर बहुत विचार किया है। अपने ग्रंथ 'मध्यमाध्याय' के श्लोक 11- 12 में इन्होंने 'अयन बिंदु' को एक ग्रह मानकर इसके 'कल्पभगण' की संख्या 5,78,159 लिखी है जिससे अयन बिंदु की वार्षिक गति 173 'विकला' होती है जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकार में स्पष्ट अयनांश जानने के लिए जो रीति बताई गई है उससे प्रकट होता है कि इनके अनुसार अयनांश 24 अंश से अधिक नहीं हो सकता और अयन की वार्षिक गति भी सदा एक सी नहीं रहती। कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़ते-बढ़ते 173 विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट द्वितीय का समय वह था जब अयनगति के संबंध में हमारे सिद्धांतों को कोई निश्चय नहीं हुआ था।
मुंजाल के 'लघुमानस' में अयन चलन के संबंध में स्पष्ट उल्लेख है, जिसके अनुसार एक कल्प में अयन भगण 1,99,669 होता है, जो वर्ष में 59.9 विकला होता है। मुंजाल का समय 854 शक या 932 ईस्वी है, इसलिए आर्यभट का समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिए। इनका समय 800 शक के लगभग होना चाहिए। केतकी ग्रह गणित के अनुसार वार्षिक अयन गति 50.2 विकला है।

3.4 सारांश

अयनांश गणित ज्योतिष का एक अभिन्न इकाई है। आकाशस्थ समस्त बिन्दु सायन मान से गतिमान है । ग्रहस्पष्टीकरण पंचांग का प्राण माना जाता है, उसमें अयनांश के बिना शुद्ध ग्रहगणित की कल्पना नहीं की जाती सकती है। इस इकाई में अयनांश के महत्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है, गणितीय विधि से उसका साधन बताया गया है, जिससे पाठक गण पढ़कर अयानांश के ज्ञान को सरलता से प्राप्त कर लेगें।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

अयनांश – अयन सम्बन्धित अंशादि मान

पलभा – द्वाद्वशांगुल छाया

लंकोदय – लंका का उदय मान

निरयण - अयनांश रहित मान

सायन – अयनांश रहित मान

सुविदित – स्पष्ट रूप से जाना गया

अनुसरण - पीछे चलना

उदायास्त – उदय और अस्त

पंचांगस्थ – पंचांग में स्थित

संक्रान्ति – सूर्य का राशि परिवर्तन

उत्तरायण – मकरादि छ: राशियों में सूर्य की स्थिति का होना

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. अयनसम्बन्धित अंश
2. अभिष्ट शक में 444 घटाकर शेष गणितादि कर्तव्यों के द्वारा
3. दो
4. स्पष्टार्थ
5. 50. 2 विकला

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र

2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

3.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. अयनांश को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।
2. अयनांश के कितने प्रकार है। स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 4 लग्नायन एवं जन्मांगचक्र निर्माण विधि

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई **'लग्नानयन एवं जन्मांग चक्र निर्माण विधि'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पलभा, चरखण्ड एवं अयनांशादि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ लग्नायन की चर्चा करते है और साथ ही जन्मांग चक्र निर्माण की विधि भी प्रस्तुत करते है।

लगतीति लग्नम् । गोलीय रीति से लग्न चार प्रकार के होते है। प्रथम लग्न , चतुर्थ लग्न, सप्तम लग्न एवं दशम लग्न। दो घण्टे का एक लग्न होता है। इस प्रकार 24 घण्टे में 12 लग्न होते है। पंचांग में प्रत्येक दिन के 12 लग्नों का समय दिया रहता है।

कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्न एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लग्न के आधार पर ही हम जातक का फलादेशादि कर्तव्य कर पाते है। इस इकाई में लग्नानयन की सैद्धान्तिक रीति का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त लग्नायन एवं जन्मांग चक्र निर्माण विधि** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- लग्न क्या है।
- लग्न का साधन कैसे होता है।
- लग्नों के प्रकार कितने है।
- जन्मांग चक्र क्या है।
- जन्मांग चक्र निर्माण किस प्रकार किया जाता है।

4.3 लग्न परिचय

सूर्योदय के समय सूर्य जिस राशि में हो वही राशि लग्न होगी, यह निश्चित है। लग्न शब्द से ही प्रतीत होता है कि एक वस्तु का दूसरे वस्तु में लगना। इसीलिए कहा गया है कि **- लगतीति लग्नम्** । वस्तुत: लग्न में यहीं होता है क्योंकि इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त का जो स्थान उदयक्षितिज में जहॉ लगता है , वही राश्यादि (राशि, अंश, कला , विकला) लग्न होता है। यथा गोले –

भवृत्तं प्राक्कुजे यत्र लग्नं लग्नं तदुच्यते।

पश्चात् कुजेऽस्त लग्नं स्यात् तुर्यं याम्योत्तरे त्वधः।
उर्ध्वं याम्योत्तरे यत्र लग्नं तद्दशमाभिधम्।
राश्याद्य जातकादौ तद् गृह्यते व्ययनांशकम्।

अर्थात् क्रान्तिवृत्त उदयक्षितिज वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसे लग्न कहते है। पश्चिम दिशा में जहॉ स्पर्श करता है,उसे सप्तम लग्न तथा अध: दिशा में चतुर्थ लग्न और उर्ध्व दिशा में दशम लग्न होता है। लग्न की यह परिभाषा सैद्धान्तिक गोलीय रीति से कहा गया है। पंचांग में भी दैनिक लग्न सारिणी दिया होता है। उसमें एक लग्न 2 घण्टे का होता है। इस प्रकार से 24 घण्टे में कुल 12 लग्न होता है। यह लग्न पंचांग में मुहूर्त्तों के लिये दिया गया होता है। किस लग्न में कौन सा कार्य शुभ होता है तथा कौन अशुभ, इसका विवेचन पंचागोक्त लग्न के अनुसार ही किया जाता है।

4.3.1 लग्नानयन

लग्नानयन की सैद्धान्तिक रीति के लिये कहा गया है –

तत्काले सायनाऽर्कस्य भुक्तभोग्यांश संगुणात्।
स्वोदयात्खाग्नि लब्धं यद् भुक्तं भोग्यं रवेस्त्यजेत्॥
इष्टनाड़ी पलेभ्यश्च गतगम्यान्निजोदयान्।
शेषं खत्र्या हतं भक्तमशुद्धेन लवादिकम्॥
अशुद्धशुद्धभे हीन युक्तनुर्व्ययनांशकम्।

अर्थात् तात्कालिक स्पष्टसूर्य में अयनांश जोड़ने से सायन सूर्य होता है। सायन सूर्य के भुक्त या भोग्यांशों को सायन सूर्य की राशि के स्वोदय मान से गुणा करें। तब गुणनफल में 30 का भाग देने से लब्धि भोग्य या भुक्त काल होती है। इस भोग्य भुक्त काल को इष्टकाल के पलों में से घटाकर जो शेष रहे उसमें से आगे की राशियों के भुक्त प्रकार प्रकार में पिछली राशियों के स्वोदय मान को घटाते जाएँ। जब न घटे तो शेष को 30 से गुणाकर अशुद्ध राशिमान से भाग देने से लब्धि अंश कलादि होती है। उस अंश कला के पहले अशुद्ध राशि में से एक घटाकर रखने से **'सायन लग्न'** व उसमें से अयनांश घटाने पर '**निरयण लग्न**' होता है। उदाहरणार्थ -

लग्नानयनम् -

माना कि **सूर्यस्पष्ट** – 4।27^0।50।0 राश्यादि है , **अयनांश** - 23^0।45।35 है, पूर्व अध्याय के अनुसार पलभा एवं चरखण्ड का ग्रहण कर लेते है, इष्टकाल 8।20 घटयादि है तो लग्नानयन श्लोकानुसार इस प्रकार से होगा –

स्पष्ट सूर्य - 4।27^0।50।0
अयनांश - + 23^0।45।35
5 । 21^0। 35 ।35 - **सायन सूर्य**

30^0। 00 ।00
- 21^0 । 35 ।35 घटाने पर

8^0 । 24 । 25 भोग्यांश

लग्न साधन भुक्त या भोग्य प्रकार से किया जा सकता है, यहॉ भोग्य रीति से किया जा रहा है। सायन सूर्य कन्या राशि का है अत: कन्या राशि के उदय मान 345 से भोग्यांश को गुणा किया। गुणनफल 2898 । 11 । 25 आया। इसमे 30 का भाग देने पर 96।36।22 पलात्मक मान आया जो भोग्यकाल है।

हमारा इष्टकाल 8।20 घटयादि है तथा उसका पलात्मक मान $8 \times 60 + 20 = 500$ पल हुआ। अब इष्ट पलों में से भोग्य को घटाया –

500 । 00 । 00
- 96 । 36 । 22
403 । 23 । 38 पल मिले।

इन पलों में से जहॉ तक का पलात्मक मान घट सके, घटाने पर –

403 । 23 । 38
- 345 । 00 ।00 तुला राशि का मान - तुला शुद्धराशि
58 । 23 । 38

अशुद्ध राशि वृश्चिक हुई, (नहीं घटने के कारण) ।

शेष पलों को 30 से गुणा किया –

58।23।38
× 30
1740। 690 । 1140

इसमें अशुद्ध राशि वृश्चिक के उदय मान 352 से भाग दिया , भाग देने पर 4 अंश 56 कला 36 विकला आया, अत: 7 । 4^0 । 56 । 36 सायन लग्न है।

इनमें से पूर्व युक्त अयनांश घटाने से निरयण लग्न होगा अत: -

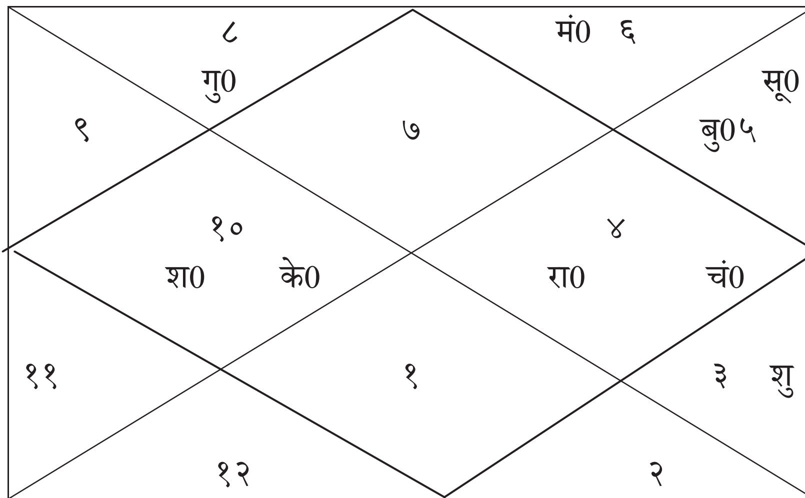
7 । 4^0 । 56 । 36
- 23^0 । 45 । 35 - अयनांश
6 । 11^0 । 11 । 01 निरयण लग्न स्पष्ट।

इसी लग्न स्पष्ट के आधार पर हम जन्मांग चक्र का भी निर्माण करते है। जन्मांग चक्र में जातक का जिस समय में जन्म हुआ होता है, उस समय को हम पंचांग में दैनिक लग्न सारिणी में देख लेते है। पश्चात् उस लग्न को जन्मांग चक्र में लिखकर तात्कालिक प्रश्न कुण्डली का निर्माण कर लेते है। किन्तु जन्मांग चक्र में गणितीय रीति से लग्नस्पष्ट का साधन कर जन्मांग चक्र में लग्न को लिखते है।

4.3.2 जन्मांग चक्र निर्माण विधि –

लग्न के बाद स्पष्ट ग्रहों को जन्मांग चक्र में भावानुसार लिखते है। अत: जन्मकुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्नस्पष्ट के साथ ग्रहस्पष्ट को भी जानना होता है – यथा

हमारा लग्न स्पष्ट आया है 6 । 11 । 22 । 01 इस आधार पर जन्मांग चक्र होगा –



चक्र से स्प्ष्ट है कि तुला लग्न की कुण्डली है। यहॉ यदि सूर्यादि स्पष्ट ग्रहों को कल्पना कर निम्न प्रकार मानते है तो जन्मांग चक्र में ग्रहों को इस प्रकार से स्थापित करेंगे –

स्पष्ट सूर्य – $4|27^0|50|0$

स्पष्ट चन्द्र – $3|20^0|25|30$

स्पष्ट मंगल – $5|25^0|8|35$

स्पष्ट बुध – $4|25^0|23|33$

स्पष्ट गुरू – $7|56^0|23|24$

स्पष्ट शुक्र – $2|24^0|26|45$

स्पष्ट शनि – $9|10^0|12|34$

स्पष्ट राहु – $3|25^0|56|55$

स्पष्ट केतु - $9\ |23^0|22|11$

जिस दिन सूर्य अपनी राशि का संक्रमण करते है अर्थात् सूर्य संक्रान्ति के दिन प्रात: काल सूर्योदय का समय व सूर्य की अधिष्ठिति राशि के लग्न का प्रारम्भ प्राय: एक ही होता है अर्थात् मेष राशि में सूर्य 14 अप्रैल को जाता है। अत: जिस समय सूर्योदय होगा, उसी समय मेष लग्न का प्रारम्भ होगा। तत्पश्चात् वृष, मिथुन, कर्क ,सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु , मकर , कुम्भ एवं मीन आदि द्वादश लग्न होते है।

इस प्रकार से हम लग्नायन को जानकर जन्मांग चक्र का भी निर्माण कर लेते है, और जन्मांग चक्र को स्पष्ट ग्रहों के आधार पर कुण्डली का निर्माण कर लेते है। जन्मांग चक्र में स्थित ग्रहों के अनुसार निम्न प्रकार से फलादेश आदि कर्तव्य करते है -

जन्मांग चक्र के द्वादश भाव में द्वादश राशि स्थित कर जन्मांग चक्र का निर्माण किया जाता है, यह

स्पष्ट हो चुका है। प्रथम भाव में जो राशि लिखी जाती है,उसे लग्न कहते है। प्रत्येक लग्न के फल भिन्न – भिन्न हैं और वह नीचे लिखे अनुसार हैं । जैसे: -

मेष लग्न - इस लग्न में जन्म लिया हुआ जातक प्रचण्ड अभिमानी, गुणवान, क्रोधी , मित्र विरोधी, दुष्टसंगति वाला, अपने पराक्रम से यश प्राप्त करने वाला व अत्यन्त रोषयुक्त होता है।

वृष लग्न - वृष लग्न वाला जातक बहुत गुणवान, धन से पूर्ण, रणधीर, शूर वीर, शान्त चित्त , प्रियवचन बोलने वाला गुरूजनों का भक्त होता है।

मिथुन लग्न - मिथुन लग्न वाला जातक भोगी, श्रेष्ठ अनेक पुत्र व मित्रवाला,गुप्त बात को गुप्त रखने वाला,धनवान, सुशील और राजा के समान उसकी स्थिति होती है।

कर्क लग्न - कर्क लग्न वाला जातक साधुजनों का भक्त , नम्र स्वभाव, निरन्तर उदार चित्त, दानशील, जलविहार करने वाला , कामी व मिष्ठान्न भोजन करने वाला होता है।

सिंह लग्न - सिंह लग्न वाला जातक दुर्बल शरीर, महापराक्रमी, भोगी, अल्प पुत्रोंवाला,अल्प भोजन करने वाला, बुद्धिमान व अभिमानी होता है।

कन्या लग्न - कन्या लग्न वाला जातक उत्तम ज्ञानी, गुणी, बल व भलाई से युक्त, सदैव प्रसन्नचित्त, नित्य लक्ष्मी प्राप्त करने वाला होता है।

तुला लग्न - तुला लग्न वाला जातक अधिक गुणी, धनलाभयुक्त, व्यापार कार्य में अति निपुण, उसके गृह में लक्ष्मी नित्य वास करती हैं और वह अपने कुल का श्रेष्ठ व भूषण होता है।

वृश्चिक लग्न - वृश्चिक लग्न वाला जातक अनेक विद्या में निपुण, सदा कलहप्रिय, शूर वीर वृत्ति का होता है।

धनु लग्न – धनु लग्न वाला जातक सत्यवादी , राजा का सेवक, बुद्धिमान, दूसरों के मन की बात जानने में निपुण, ज्ञानवान, धनुर्विद्या में निपुण व कलाकुशल होता है।

मकर लग्न - मकर लग्न वाला जातक कठोर मनवाला, जो मन में आये वह काम करनेवाला, सठ, अनेक सन्तानों वाला, अति चतुर होते हुये बहुत लोभी होता है।

कुम्भ लग्न - चंचल स्वभाव वाला, अतिकामी, लोगों से मित्रता रखनेवाला, दम्भी और धान्य से युक्त होता है।

मीन लग्न - मीन लग्न वाला जातक बहुत चतुर, अल्पकामी, उत्तम रत्न आभूषण धारण करनेवाला, चंचल, धूर्त, शिल्पशास्त्र में निपुण होता है।

यह लग्न फल शुभ ग्रहों की युति – योगादि पर अवलम्बित है अन्यथा यदि लग्न भाव पर पापग्रहों की युति व दृष्टि हो अथवा लग्न निर्बल हो तो यह फल कम प्रमाण पर मिलेगा। यह पाठक को ध्यान रखना होगा।

सूक्ष्म लग्न साधन रीति –

लग्न सिद्ध करने के लिये सूर्य के उदय समय का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, यह स्पष्ट है कि किन्तु पूर्व से पश्चिम के शहरों में भिन्न - भिन्न समय पर सूर्योदय होना सम्भव है। ऐसे स्थिति में

सूर्योदय का समय शुद्ध निश्चित ज्ञान के अतिरिक्त, शुद्ध जन्म लग्न का मिलना भी अशक्य है।

बोध प्रश्न

1. भवृत्त से तात्पर्य है -
   क.क्षितिज वृत्त ख. क्रान्ति वृत्त ग. पूर्वापर वृत्त घ. दृगवृत्त
2. लग्न कितने प्रकार के होते है –
   क. 2 ख. 3 ग. 4 घ. 5
3. सायनाऽर्क का अर्थ है –
   क. निरयन सूर्य ख. अयन सहित सूर्य ग. सायन घ. अयन सूर्य
4. संक्रान्ति कहते है –
   क. सूर्य का परिवर्तन
   ख. सूर्य का एक राशि से दूसरे राशि में परिवर्तन
   ग. परिवर्तन
   घ. कोई नहीं
5. जन्मांग चक्र में भावों की संख्या कितनी है।
   क. 10 ख. 11 ग. 12 घ. 13

मेष - 278 पल	कर्क – 323 पल	तुला – 278 पल	मकर – 323 पल
वृष – 299 पल	सिंह - 299 पल	वृश्चिक – 299 पल	कुम्भ – 299 पल
मिथुन – 323 पल	कन्या – 278 पल	धनु – 323 पल	मीन – 278 पल

जिस स्थान पर सूर्योदय निश्चित करना हो उस शहर के पलभा पर से चरखण्ड जानकर उपर दिये हुये तीन राशि में से घटाओ और कर्क से कन्या राशि के के पलों में जोड़ो, जिससे किसी भी शहर के सूर्योदय का पलात्मक उदय का ज्ञान होगा व तुला से धन राशि के पलों में जोड़ने और मकर से मीन राशि के पलों में घटाने से द्वादश राशि का पलात्मक रवि उदय समय ज्ञात किया जा सकता है।
पलभा आनयन की विधि पूर्व के अध्यायों में की जा चुकी है। अत: उसी आधार पर जिस शहर की पलभा का आनयन करना हो, करके उसी आधार पर उस शहर का अभीष्ट समय का ज्ञान किया जा सकता है। इसी आधार पर उस शहर में जन्मे किसी जातक का अभीष्ट लग्न का आनयन करना चाहिये।
लग्न में रवि से शनि तक सप्त ग्रह में जो ग्रहस्थिति हो उसका फल निम्न अनुसार करना चाहिये –

1. **लग्न में सूर्य का फल** - मध्यम ऊँचा शरीर, लाल गौर वर्ण, तामसी, धाड़सी, उत्साही, पित्तप्रकृति, कम बोलने वाला।
2. **लग्न में चन्द्रमा का फल** – रूपवान, गोरा वर्ण, सुन्दर शरीर, मितभाषी, तेज ऑखें , चंचल स्वभाव, दुबला – पतला शरीर, कफ वात पित्त प्रकृति, स्त्रियों को प्रिय।

3. **लग्न में मंगल का फल** - कृश शरीर, लाल वर्ण नेत्र, चेहरे पर माता के दाग,धैर्यवान, उदार , चंचल स्वभाव, क्रूरदृष्टि , उग्र स्वभाव, तामसी, क्रोधी।
4. **लग्न में बुध का फल** – प्रसन्नमुख, विनोदी भाषण,मजबूत शरीर व बुद्धिमान,बोलने में प्रवीण, पिंगल नेत्र,कफ – वात –पित्त प्रकृति।
5. **लग्न में गुरू का फल** – गोरा , स्थूल देही, लम्बी नाक , ऊँचा मस्तक, गोल नेत्र , सदाचारी,विद्वान,स्थिर चित्त, गम्भीर स्वभाव, ग्रन्थपठन प्रेमी।
6. **लग्न में शुक्र का फल** – गोरा , कोमल सुन्दर शरीर,तेजस्वी कान्ति,पानीदार ऑखें, घुघरवाले बाल, ऐंठबाज, पोशाक का शौकीन, व्यवस्थितकारभारप्रिय, स्त्रीप्रिय व सुगन्धित पदार्थों का शौकीन ।
7. **लग्न में शनि का फल** - कृश शरीर, काला रंग, पीले नेत्र,मन्दबुद्धि, बलहीन, कृपण,आलसी, मितभाषी परन्तु क्रोधी, कड़े बाल, उत्साही व वात प्रकृति।

जन्मांग चक्र का सम्बन्ध जन्मकुण्डली से है। आइये अब हम जन्मकुण्डली को भी समझते है – मुख्यत: कुण्डली चार प्रकार की होती है –

1. जन्म समय की लग्न कुण्डली
2. जन्म राशि कुण्डली
3. वर्तमान वर्ष कुण्डली
4. प्रश्न कुण्डली

जन्म कुण्डली के अन्तर्गत अनेक प्रकार के प्रश्नों पर विचार करने केलिये सूक्ष्म कुण्डलियॉ भी हैं। जैसे – होरा, द्रेष्काण, तृतीयांश, सप्तमांश, नवमांश और भाव – चलित जिसके आधार पर अत्यन्त सूक्ष्म विचार किया जाता है , परन्तु यह कई विद्वानों का अनुभव है कि इन सब कुण्डलियों में जन्मकुण्डली सबसे मुख्य व प्रभावशाली है और उसे गणित द्वारा सिद्ध कर फलितादि कहने से अधिकांश सन्तोष मिल सकता है।

मनुष्य के जन्म समय आकाशस्थ ग्रहों के गति व स्थिति आदि दर्शानें वाली कुण्डली को जन्म कुण्डली कहते हैं ।

मनुष्य के जन्म समय चन्द्र जिस राशि में स्थित हो उसे लग्न स्थान में लिखकर क्रम से दूसरीराशि व दूसरे ग्रह जिस कुण्डली में लिखे जाते हैं या रहते हैं उसे चन्द्र या राशि कुण्डली कहते हैं।

जन्म वर्ष आरमभ होने के दिन व समय पर एक वर्ष के लिये ग्रहों की स्थिति दर्शाने वाली कुण्डली को वर्षकुण्डली कहते हैं।

किसी भी समय किसी प्रश्न का उत्तर उक्त समय के ग्रहों के स्थिति व गति के अनुसार दर्शाने वाली कुण्डली को प्रश्न कुण्डली कहते है।

जन्म कुण्डली (लग्न) से मनुष्य के रूप , रंग आदि द्वादश भावों के गुणों का सुख – दु:ख मिलना ज्ञात होता है किन्तु राशि कुण्डली से मन की स्थिति, सन्तुष्ट या असन्तुष्ट , हर्ष या विषाद का होना

ज्ञात होता है।

4.5 सारांश

लग्नायन जन्मकुण्डली प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। लग्न केन्द्र है, जन्मांग चक्र का। इसके ज्ञान के आधार पर ही हम फलादेश आदि कर्तव्य का आरम्भ कर पाते है। लग्न से कुण्डली का आरम्भ होता है। गोलीय और सैद्धान्तिक रीति से ज्योतिष के आचार्यों ने लग्न को अलग –अलग परिभाषित किया है। होराद्वयं लग्नम् अर्थात् दो घण्टे का लग्न होता है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पाठक गण लग्न के गोलीय, सैद्धान्तिक व साधन की रीति समझ लेंगे। लग्न से फलादेश आदि कर्तव्य बोध भी इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हो जायेगा। इस इकाई के विषय को और गम्भीरता से समझने के लिये पाठक गणों को सहायक ग्रन्थों का भी अध्ययन करे।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

इष्टकाल – अभीष्ट काल। जन्म समय से सूर्योदय पर्यन्त का काल
लगति – लगता है।
क्षितिज वृत्त – खमध्य से 90 अंश से बना वृत्त
अस्त लग्न - सप्तम लग्न
तुर्य – चतुर्थ
उर्ध्व – उपर
अधः - नीचे
होरा – समय
लग्नायन – लग्न का साधन
खाग्नि – 30
अशुद्ध – जो शुद्ध न हो
निरयण- अयन रहित
सायन – अयन सहित

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ख
4. ख
5. ग

4.8 सहायक ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त - चौखम्भा प्रकाशन
सुलभ ज्योतिष ज्ञान - चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान
ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र
ज्योतिष रहस्य – चौखम्भा प्रकाशन
जन्म पत्र व्यवस्था – चौखम्भा प्रकाशन
भारतीय कुण्डली विज्ञान – चौखम्भा प्रकाशन
केशवीय जातक पद्धति – चौखम्भा प्रकाशन

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लग्न से क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये
2. लग्नायन कीजिये।
3. द्वादश लग्न का फल लिखिये।
4. कल्पित जन्मांग चक्र निर्माण कीजिये।
5. लग्न के महत्व को समझाते हुये उसे स्पष्ट कीजिये।

इकाई - 5 साम्पातिक काल से लग्नानयन

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 लग्नानयन परिचय

5.3.1 साम्पातिक काल से लग्न साधन

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई तृतीय खण्ड की पंचम इकाई **'साम्पातिक काल से लग्नानयन'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पलभा, चरखण्ड, अयनांश एवं लग्न साधन का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॅा समपातिक काल से लग्नायन की चर्चा करते है।
सामान्य रूप में लग्नायन जिस प्रकार होता है, साम्पातिक काल से लग्नायन साधन भी उसी प्रकार से होता है केवल प्रकार अलग होता है।
कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्न एक महत्वपूर्ण इकाई है, लग्न के आधार पर ही हम जातक का फलादेशादि कर्तव्य कर पाते है अत: लग्नसाधन की सामान्य तरीके के साथ – साथ समपातिक काल से भी उसका साधन किस प्रकार हो इसका ज्ञान इस इकाई में कराया जा रहा है।

5.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य पंचांगादि ज्ञान के अन्तर्गत जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त साम्पातिक काल से लग्नानयन** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- लग्न क्या है।
- साम्पातिक काल क्या है।
- साम्पातिक काल से लग्नानयन की विधि क्या है ।
- साम्पातिक काल से लग्नानयन किस प्रकार होता है ।
- लग्नानयन में समापातिक काल का क्या महत्व है ।

5.3 साम्पातिक काल से लग्नायन परिचय

ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य जातक का भविष्य कथन या किसी घटना का फलादेश करना है। फलादेश करने के लिए सही जन्मकुंडली की आवश्यकता होती है और जन्मकुंडली में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका लग्न की होती है। यूं तो लग्न साधन करने के लिए पंचांग से प्रथमदृष्टया प्रत्येक लग्न के लिए प्रारंभ एवं समाप्ति काल देखकर किया जा सकता है। लेकिन उसमें लग्न के अंश कितने शुद्ध हैं इसमें आशंका रहती है। सार्वभौमिक एवं सर्वसम्मति रूप से एन. सी. लाहिरी द्वारा रचित ''टेबल आफ एसेन्डेंट" जो कि निरयण पद्धति पर आधारित है, द्वारा लग्न साधन शुद्ध माना गया है। लग्न साधन कैसे करें? यह आप निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। जन्म कुंडली निर्माण के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। जन्म तिथि, जन्म समय एवं जन्म स्थान।

उदाहरण: जन्म तिथि: 11 जुलाई 1964, जन्म समय: 21.30 घंटे (IST) जन्म स्थान: दिल्ली लग्न साधन करने के लिए सर्वप्रथम साम्पातिक समय की आवश्यकता होती है। अतः सर्वप्रथम दिये गये जन्म विवरण के आधार पर हमें साम्पातिक काल की गणना करनी होगी। **साम्पातिक काल क्या है ?** किसी तारे के सापेक्ष मापा गया समय **साम्पातिक काल** कहलाता है और यह तारा चित्रा नक्षत्र कहलाता है। इसी कारण निरयण पद्धति में प्रयुक्त अयनांश चित्रा पक्षीय अयनांश कहलाता है। किसी विशेष स्थान पर निश्चित समय पर साम्पातिक काल का समय प्रतिदिन 3 मिनट 56.55536 सेकंड की दर से बढ़ता रहता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पृथ्वी की दो गतियां होती हैं। पहली अपनी धुरी पर और दूसरी गति सूर्य के चारों ओर। अर्थात यदि पृथ्वी पर कोई बिंदु लिया जाए तो वह बिंदु वापस अपनी पूर्व स्थिति में 24 घंटे में आ जाता है परंतु यही बिंदु यदि ब्रह्मांड में किसी तारे के संदर्भ में देखा जाए तो उस तारे के सम्मुख पुनः 3 मिनट 56.5536 सेकंड पूर्व आ जाता है। इस तरह पृथ्वी का वह बिंदु तारे के सम्मुख पुनः 23 घंटे 56 मिनट 4.091 सेकंड में आ जाता है। साम्पातिक काल की गणना एफेमेरिज़ द्वारा लग्न गणना के लिए ''टेबल आफ एसेन्डेंट'' की सहायता लेते हैं।

साम्पातिक काल – साम्पातिक काल से लग्नादि साधन करने की पद्धति विशेष सरल होती है। इसमें गणित का विशेष जंजाल नहीं है तथा साधित लग्न भी प्रामाणिक होता है। वर्तमान में यह विधि लोकप्रिय होती जा रही है।

साम्पातिक इष्टकाल स्थान –

यद्यपि आजकल परम्परागत पंचागों में भी दोपहर 12 बजे या रात्रि बजे का साम्पातिक काल दिया जाने लगा है, लेकिन एन0सी0लहरी के पंचांग में दिया गया साम्पातिक काल सर्वाधिक शुद्ध होता है। साम्पतिक कालि में अधिकतम अशुद्धि या भिन्नता एक सेकेण्ड तक ही चल सकती है। शुद्ध साम्पातिक इष्टकाल का साधन इस प्रकार करना चाहिये –

माना कि 14.09.2013 को प्रात: 9:30 बजे दिल्ली का साम्पातिक काल जानना है लहरी की लग्न सारिणी से 14 सितम्बर का साम्पातिक काल ग्रहण किया। उसमें 2013 का साम्पातिक काल संस्कार भी जोड़ा।

		घ0मि0से0
14 सितम्बर का सा0का0 -		11।31।07
2013 का सा0का0 -	+	02। 50
		11।33।57

यह साम्पातिक काल सार्वत्रिक रूप से दोपहर बजे का रहा। इसमें दिल्ली का सा0काल संस्कार + 0.03 सेकेण्ड जोड़ने से 11।34।00 घंटे सा0काल दिल्ली में स्थानीय मध्याह्न अर्थात् दोपहर 12:00 बजे LMT का हो गया। ध्यातव्य हो कि साम्पातिक काल सदैव स्थानीय समय में ही अभिव्यक्त किया जाता है। दोपहर 12 : 00 बजे के साम्पातिक काल से प्रात:काल के स्थानीय इष्ट समय को घटाने व दोपहर बाद का इष्ट समय होने से योग करने पर स्थानीय अभीष्ट समय का साम्पातिक

काल प्राप्त हो जायेगा। दिल्ली के लिये स्थानीय समय का साम्पातिक काल प्राप्त हो जायेगा। दिल्ली के लिये स्थानीय समय बनाने हेतु स्टैण्डर्ड समय में 21 मिनट 8 सेकेण्ड घटाई जाती है। इसे ज्ञात करने की विधि यहीं आगे बताई जा रही है। अत: प्रात: 9:30 IST को दिल्ली का LMT या स्थानीय समय बनाने के लिये उक्त संस्कार किया।

9:30 A.M भारतीय स्टे0 टा0 IST
- 0।21।28
9।8।52 A.M स्थानीय समय या LMT

हमारे पास दिल्ली का 12 बजे का सा0का0 उपलब्ध है तथा 9.08.52 बजे का जानना है तो 12 बजे से अभीष्ट समय जितना पीछे है , उतना समय हम 12 बजे के सा0का0 में से घटा देंगे। एतदर्थ 12.00 – 9.8.52 घंटे = 2.51.8 घंटे का अन्तर प्राप्त हुआ। इस अन्तर में एक संस्कार प्रति घंटा 10 सेकेण्ड की दर से करना आवश्यक है। इसकी सारिणी भी लहरी की एक पुस्तक में दी गई है। अत: 2.51.8 घंटे + 28 सेकेण्ड = 2.51.36 घण्टे अन्तर को दोपहर 12 बजे के साम्पातिक काल में से घटा देने पर अभीष्ट समय का साम्पातिक काल ज्ञात हो जायेगा।

12 बजे का पूर्व प्राप्त सा0का0 - 11.34 .00
ऋण अन्तर - 2।51। 36
8.42.24 अभीष्ट साम्पातिक काल।

यही हमारा 14 सितम्बर 2013 का साम्पातिक काल हुआ।

साम्पातिक काल से लग्नानयन –

पूर्व में बताये गये साम्पातिक इष्टकाल साधन को पुन: से संक्षेप में व प्रयोगात्मक रूप से करते हैं। सर्वप्रथम स्टै0 टा0 9:30 A.M को स्थानीय समय बनाये। एतदर्थ स्टै0 अन्तर 21 मिनट 8 सेकेण्ड को स्टै0 टा0 में से घटाया तो 9.30.00 - 0.21.08 = 9.08.52 A.M स्थानीय समय या LMT हुआ। यह समय दोपहर 12 बजे से कितना पहले है यह जानने के लिये इसे 12 बजे में से घटाया तो 12:00 -9.08.52 = 02.51.08 घण्टे अन्तर प्राप्त हुआ। इसे प्रतिघण्टा 10 से0 की दर से बढ़ाया, क्योंकि पृथ्वी भ्रमण के 24 घण्टे × 10 सेकेण्ड = 24 ×60 ×60 × 10 सेकेण्ड = 24 × 36000 सेकेण्ड = 864000 सेकेण्ड वाले भेद को मिटाना आवश्यक है। इसके लिये लहरी की लग्न सारिणी के पृष्ठ 5 पर एक सारणी भी दी गई है।

2घण्टे का संस्कार = 20 सेकेण्ड
51 मिनट का संस्कार = + 08 सेकेण्ड लगभग
28 सेकेण्ड

अत: शुद्ध व कार्य योग्य अन्तर 2.51.08 घंटे + 0.00.28 घंटे जोड़ने से 2.51.36 हुआ। इसे 12 बजे के साम्पातिक काल 11.34.00 में से घटाया –

11.34.00 घंटे 12 बजे का साम्पातिक काल

2 .51.36 घंटे संस्कृत का अन्तर

8.42.24 अभीष्ट कालीन साम्पातिक काल

हमने दिल्ली के अक्षांश 28^0. 39 पर निर्मित लग्नसारिणी लहरी की पुस्तक का अवलोकन किया। हमारा साम्पातिकइष्टकाल 8.42.24 घंटे है।

	रा0अं0क0
8 घंटे 40 मिनटपर लग्न	6 . 11. 56
2 मिनट का संस्कार	0. 0. 26
24 सेकेण्ड का अन्तर	+ 6।12^0। 27

उक्त लग्न प्राप्त हुआ। इसमें अभी अयनांश संस्कार करना शेष है। लहरी की सभी लग्न सारिणियॉ 23 अंश अयनांश के आधार पर बनी हैं। वर्तमान में अयनांश 23^0 .45 है। अत: 45 इसमें से घटाना आवश्यक है,तब हमारा अभीष्ट निरयण लग्न होगा।

6.12^0.27 हुआ 23 अयनांश पर लग्न

45

6.11^0.42 हुआ 23^0 45 अयनांश पर लग्न।

लग्न साधन की प्रक्रिया द्वारा ही दशम लग्न का ज्ञान भी लहरी की लग्न सारिणी से दशम लग्न वाले पृष्ठ से किया जा सकता है।

8 घंटे 40 मिनट पर दशम लग्न -	3.14.35
2 मिनट 24 सेकेण्ड का संस्कार -	+ 0.0.36
	3।15^0।11

इसमें लग्न की तरह ही 45 का अयनांश संस्कार करने से अभीष्ट दशम लग्न या 3.14^0.26 प्राप्त हुआ।

बोध प्रश्न -

1. किसी तारे के सापेक्ष मापा गया समय कहलाता है –
   क.काल ख. साम्पातिक काल ग. इष्टकाल घ. लग्न काल
2. साम्पातिक काल को भी कहते है –
   क. टेबल ऑफ एफेमेरिज
   ख. टेबल ऑफ एसेन्डेंट
   ग. टेबल ऑफ ऐक्लिप्स
   घ. कोई नहीं

3. डॉ लाहिरी द्वारा निर्मित सारिणी किस पद्धति पर आधारित है।
   क. सायन पद्धति
   ख. निरयण पद्धति
   ग. दोलन पद्धति
   घ. लग्न
4. LMT क्या है –
   क. स्टैण्डर्ड समय
   ख. स्थानीय समय
   ग. मानक समय
   घ. अक्षांश
5. स्थानीय का अर्थ होता है –
   क. किसी देश का
   ख. अभीष्ट स्थान का
   ग. स्थान का
   घ. कोई नहीं

5.5 सारांश

लग्नायन जन्मकुण्डली प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। लग्नायन की नूतन विधि डॉ एन0सी0 लाहिरी द्वारा निर्मित सारिणीयों के आधार पर की गई है। आधुनिक ज्योतिष के वेत्ता लाहिरी के द्वारा निर्मित सारिणीयों को ज्यादा शुद्ध मानते है। डॉ0 लाहिरी द्वारा कथित लग्नानयन की इस नूतन विधि का नाम साम्पातिक लग्नानयन है। साम्पातिक लग्नानयन, प्राचीन विधि द्वारा कृत्य लग्नानयन से सूक्ष्म है, तथा इसमें गणित का उतना प्रपंच नही है। ऐसा अर्वाचीन ज्योतिर्विदों का मानना है। मेरी दृष्टि में तो प्राचीन विधि ही ज़्यादा सही है। तथापि आधुनिक ज्योतिष पाठकों को नवीन – नवीन अनुसन्धान करना चाहिये,इस दृष्टिकोण से साम्पातिक काल से लग्नानयन की विधि का इस इकाई में वर्णन किया जा रहा है , आशा है पाठकगण इसे आसानी से समझ सकेगें।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

साम्पातिक काल – चित्रा तारा के सापेक्ष मापा गया समय
सम्मुख – सामने
अर्वाचीन – नवीन
चित्रा - 27 नक्षत्रों में एक नक्षत्र
अयनांश – अयन सम्बन्धित अंश
एफेमेरिज – पंचांग

सरल - आसान

सर्वाधिक – सबसे अधिक

सार्वत्रिक – सभी स्थलों पर

स्थानीय – स्व स्थान का

प्रयोगात्मक – जो प्रयोग में लाया जा सके

लाहिरी – ज्योतिष वेत्ता

सायन – अयन सहित

निरयण – अयन रहित

5.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ख

3. ख

4. ख

5. ख

5.8 सहायक ग्रन्थ सूची

सूर्यसिद्धान्त - चौखम्भा प्रकाशन

सुलभ ज्योतिष ज्ञान - चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान

ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र

ज्योतिष रहस्य – चौखम्भा प्रकाशन

जन्म पत्र व्यवस्था – चौखम्भा प्रकाशन

भारतीय कुण्डली विज्ञान – चौखम्भा प्रकाशन

केशवीय जातक पद्धति – चौखम्भा प्रकाशन

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. साम्पातिक काल क्या है ? स्पष्ट कीजिये
2. साम्पातिक काल से लग्नानयन कीजिये।
3. साम्पातिक काल में क्या विशेषता है ।
4. साम्पातिक काल से लग्नानयन का महत्व निरूपण कीजिये।

खण्ड - 4

द्वादशभाव साधन

इकाई – 1 नतोन्नतकालज्ञान

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई ज्योतिष शास्त्र के **नतोन्नत काल** ज्ञान से संबंधित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने कुण्डली निर्माण के अन्तर्गत ग्रहसाधन से संबंधित विषयों का अध्ययन किया होगा, नत एवं उन्नत काल की आवश्यकता ग्रहसाधन के क्रम में होती है। इस इकाई में आप नत एवं उन्नत काल ज्ञान को प्राप्त करेंगें।

ज्योतिष शास्त्र में कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में जब हम दशम भाव साधन करते हैं तो सायन सूर्य द्वारा लग्न साधन की विधि से ही दशम लग्न स्पष्ट किया जाता है। अन्तर यह हैं कि स्वोदय मान के स्थान पर लंकोदय मान का प्रयोग करते है और सूर्योदय से इष्टकाल के स्थान पर **नतकाल** का प्रयोग करते है। वस्तुत: सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से मध्यान्ह रेखा से इष्ट के अन्तर को **नत** कहते है। नत को आंग्लभाषा में **Meridian distance** कहते है। मध्यान्ह रेखा = दशम स्थान, सिर के उपर का स्थान = दोपहर। वस्तुत: नत शब्द का अर्थ होता है – झुका हुआ

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान लेंगे कि **नत एवं उन्नत** काल क्या है तथा इनका प्रयोग कहॉ किया जाता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पाठकों को नत एवं उन्नत काल का बोध कराने से है तथा ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन के अन्तर्गत कुण्डली निर्माणादि प्रक्रिया में उपर्युक्त विषयों को सम्यक् रूप से समझाने के लिए है –

निम्लिखित रूप से आप क्रमश: इस इकाई के उद्देश्यों को समझ सकते है –

1. इसके अध्ययन के पश्चात आप बता सकेंगें कि नत एवं उन्नत काल क्या है।
2. नत एवं उन्नत काल का क्या महत्व है।
3. नत एवं उन्नत का प्रयोग कहॉ – कहॉ होता है।
4. ग्रहस्पष्टीकरण में इसका क्या योगदान है।
5. दशमभाव साधन में इसका क्या महत्व है।
6. कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में इसका उपयोग कहॉ – कहॉ है।

1.3 नतोन्नत काल परिचय –

ग्रहों की यथार्थ स्थिति किस भाव में किस प्रकार की है इसके स्पष्टीकरण के लिये भाव साधन की आवश्यकता होती है। जैसे लग्न साधन किया जाता है उसी प्रकार भाव का भी साधन किया जाता है। लग्न साधन करने क उपरांत दशम भाव साधन करना पडता है। दशम साधन करने के लिये पहले नत साधन कर लेना चाहिये। नत साधन मध्यान्ह रेखा किया जाता है।

1.3.1 नतोन्नत काल की परिभाषा एवं स्वरूप

मध्यान्ह रेखा से इष्ट के अन्तर को नत कहते है। नत को आंग्लभाषा में Meridian distance कहते है। मध्यान्ह रेखा = दशम स्थान, सिर के उपर का स्थान = दोपहर।

नत 2 प्रकार का होता है – पूर्वनत एवं पश्चिम।

पूर्वनत – मध्यान्ह रेखा के इसी पार अर्थात् अर्द्ध रात्रि से मध्यान्ह तक का इष्ट हो तो पूर्व नत होता है।

पश्चिम नत – मध्यान्ह के उस पार अर्द्धरात्रि तक इष्ट हो तो पश्चिम नत होता है। मध्यान्ह से अर्द्धरात्रि के समय में सदा 30 घडी का अन्तर रहता है क्योंकि पूरा दिनमान 60 घडी का होता है। उन्नत अर्द्धरात्रि के स्थान से मध्यान्ह तक गिना जाता है।

पूर्व उन्नत = अर्द्धरात्रि से मध्यान्ह तक इष्ट हो तो पूर्व नत होता है।

पश्चिम उन्नत = मध्यान्ह से अर्द्धरात्रि तक इष्ट हो तो अर्द्धरात्रि से अस्त स्थान पर से होते हुए जो अंतर मध्यान्ह तक नापा जाता है उसे पश्चिम उन्नत कहते है।

स्पषट रूप से समझने के लिए मध्यान्ह से अर्द्धरात्रि स्थान तक एक रेखा खींच लीजिए। ठीक सिर के उपर मध्यान्ह होता हैं, उसे दशम स्थान भी कहते है। अपने पैर के नीचे अर्द्धरात्रि का स्थान होता है उसे चतुर्थ स्थान कहते है। इस प्रकार रेखा खींचने से 2 विभाग हो जाते है। वह विभाग जो लग्न पूर्व की ओर पडता है, पूर्व नत है और जो विभाग अस्त पश्चिम की ओर पडता है वह पश्चिम नत है। दिन और रात्रि के कारण प्रत्येक के 2 विभाग हो जाते है।

दिन में -

1. दिवा पूर्व नत = सूर्योदय से मध्यान्ह तक
1. दिवा पश्चिम नत = मध्यान्ह से सूर्यास्त तक

रात्रि में –

1. रात्रि पश्चिम नत = सूर्योदय के उपरांत अर्द्धरात्रि तक
2. रात्रि पूर्व नत = अर्द्धरात्रि के उपरांत सूर्योदय तक

नतोन्नत काल का सैद्धान्तिक विवेचन –

दिवा पूर्व नत = दिन में मध्यान्ह के पूर्व इष्ट काल हो = दिनार्द्ध – दिन गत घटी अर्थात्

इष्ट

दिवा पश्चिम नत = दिन में मध्यान्ह के पश्चात् इष्ट हो = दिनार्द्ध – दिन शेष घटी या इष्ट दिनार्द्ध

रात्रि पश्चिम नत = रात्रि में मध्य रात्रि के पूर्व का इष्टकाल हो = दिनार्द्ध + रात्रि गत घटी या इष्ट दिनार्द्ध

रात्रि पूर्व नत = अर्द्धरात्रि के पश्चात् का इष्ट हो = दिनार्द्ध + रात्रि शेष घटी या दिनार्द्ध + 60 घडी इष्ट

सूर्योदय से सूर्य अस्त तक के समय को दिनमान कहते है। दिनमान को आधा करने से दिनार्द्ध होता है। दिनार्द्ध का समय मध्यान्ह दशम स्थान पर सूर्य आने पर होता है। सूर्योदय से इष्टकाल तक जितना समय होता है, उसे इष्ट कहते है।

दिन गत घटी = दिन में जो इष्ट हो।

दिन शेष घटी = दिनमान में इष्ट घटाने पर दिनमान का जो समय बचता है। दिनमान को 60 घटी में से घटाने से रात्रिमान होता है। रात्रिमान का आधा रात्रि अर्द्धरात्रि होता है।

रात्रि का इष्टकाल हो तो इष्ट – दिनमान = रात्रिगत घटी

अर्द्धरात्रि के बाद का इष्ट हो = 60 घटी – इष्ट = रात्रि शेष घटी।

दशम साधन करने के लिए मध्यान्ह से इष्टकाल तक अन्तर नाप के उपरोक्त प्रकार से निकाला जाता है, चाहें यह दूरी मध्यान्ह से पूर्व की ओर हो, चाहे पश्चिम की ओर हों, मध्यान्ह से अर्द्धरात्रि तक जहॉ कहीं भी इसके भीतर इष्टकाल हो उस इष्टकाल तक नापा जाता हैं।

अभ्यास प्रश्न - 1

1.1 निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें –

1. **'नत' का शाब्दिक अर्थ होता है।**
   क. लेटा हुआ ख. झुका हुआ ग. सोया हुआ घ. दौडता हुआ
2. **नत कहते है –**
   क. मध्यान्ह से इष्ट तक ख. खमध्य से इष्ट तक ग. सूर्योदय से इष्ट तक घ. सूर्यास्त से इष्ट तक
3. **अर्द्धरात्रि से मध्यान्ह तक इष्ट हो तो, होता है।**
   क. पूर्व नत ख. पश्चिम नत ग. मध्य नत घ. मध्यान्ह नत
4. **सूर्योदय के उपरांत अर्द्धरात्रि तक होता है।**

क. पूर्व नत ख. पश्चिम नत ग. मध्य नत घ. इनमें से कोई नही

5. नत को आंग्लभाषा में कहते है –

   क. Meridian distance ख. Upper distance ग. Lower distance घ. Meridian

साधन –

पूर्व दिवा नत = दिन में मध्यान्ह से पहले और सूर्योदय के उपरान्त जो इष्ट हो वह दिवा **पूर्व नत** कहलाता है । इसे निकालने के लिए सूर्योदय के उपरांत जितना इष्ट हुआ हो दिनार्द्ध मध्यान्ह काल में से घटाओं तो मध्यान्ह की दूरी इष्टकाल से निकल आयेगी । इसी दूरी को पूर्व नत कहते है ।

1. माना कि दिनमान = $32^{घ}$ / $0^{प}$ है दिनार्द्ध 16/0 हुआ । रात्रिमान 60 घटी – दिनमान 32 – 0 = 28 घटी । रात्रि अर्द्ध 14 / 0 हुआ। यदि अपना इष्ट 10 घटी हैं तो यह इष्ट मध्यान्ह या दिनार्द्ध के पहले का हैं तो दिनार्द्ध 16 – 0, - इष्ट 10 – 0 = 6 घटी शेष रहा । यह 6 घटी दिवा पूर्व नत है । इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यान्ह होने में 6 घटी शेष है ।

2. दिवा पश्चिम नत = दिन में मध्यान्ह के उपरांत का सूर्यास्त तक का इष्टकाल हो तो दिवा पश्चिम नत होता है । यहॉ ध्यातव्य हैं कि मध्यान्ह से इष्टकाल कितनी दूर है इसके लिये इष्टकाल में से दिनार्द्ध घटा दो तो मध्यान्ह की दूरी निकल आयेगी ।

   जैसे इष्ट 20 घटी है । उपरोक्त दिनार्द्ध 16 घटी हैं तो इष्ट से दिनार्द्ध घटाया इष्ट – दिनार्द्ध = 4 घटी = यह दिवा पश्चिम नत हुआ अर्थात् मध्यान्ह 20 – 0 – 16 – 0 पश्चिम को 4 घटी इष्ट आगे चला गया है ।

   इसको इस प्रकार भी निकाल सकते है। इष्टकाल 20 घटी दिनमान 32 घटी हैं तो दिनमान – इष्ट = 12 घटी दिन की शेष घटी हुई । दिन की शेष घटी को दिनार्द्ध में से घटा देना दिनार्द्ध 16 / 0 – दिन शेष घटी 12 /0 = 4 घटी । यही पश्चिम नत हुआ । जिसका अर्थ यह हैं कि मध्यान्ह से इष्टकाल 4 घटी आगे दूरी पर चला गया है ।

3. **रात्रि पश्चिम नत** = सूर्यास्त होने के उपरान्त और अर्द्धरात्रि के बीच का इष्टकाल हो तो दिनार्द्ध में रात्रि गत घटी जोड दो तो पश्चिम की और मध्यान्ह से इष्टकाल की दूरी निकल आयेगी ।

   जैसे रात्रि का इष्ट काल 40 घटी हैं दिनमान 32 घटी हैं तो गत रात्रि घटी इष्ट – दिनमान घ. प. –

   40 -0-32-0 = 8 – 0 = रात्रि गत घटी हुई । अर्थात् सूर्यास्त के उपरान्त 8 घटी और जाने पर इष्ट मिलता है । गत रात्रि घटी 8 – 0 + दिनार्द्ध 16 -0 = 24 घटी होता है । यहॉ 24 घटी पश्चिम नत हुआ । इससे प्रगट हुआ कि पश्चिम की ओर मध्यान्ह से 24 घटी और

इष्टकाल गया है अर्थात् मध्यान्ह से इष्टकाल की दूरी 24 घटी है।

इसे इस प्रकार भी निकाला जा सकता हैं कि इष्ट में से दिनार्द्ध घटा दो तो रात्रि का पश्चिम नत निकल आयेगा। इष्ट – दिनार्द्ध 40- 0-16 – 0 = 24 घटी हुई। यही रात्रि का पश्चिम नत हुआ। वास्तव में दिवा पश्चिम नत और रात्रि पश्चिम नत निकालने को एक ही रीति है। चाहे दिन का इष्ट हो वह पश्चिम नत ही कहलाएगा। दोनों एक ही हैं यहॉ केवल समझाने के लिये दिन और रात्रि का भेद करके उदाहरण देकर समझाया है।

4.रात्रि पूर्वनत – अर्द्धरात्रि के उपरान्त सूर्योदय तक का इष्टकाल हो तो रात्रि पूर्व नत होता है। दिनार्द्ध में रात्रि की शेष घटी जोड दो तो मध्यान्ह से पूर्व की ओर इष्टकाल की दूरी निकल आयेगी। जैसे इष्ट 50 घटी है। अब रात्रि की शेष घटी निकालनी है अर्थात् रात्रि कितने घटी और बची है यह जानने को 60 घटी में से इष्ट घटाने से रात्रि को शेष घटी निकल आती है। 60 घटी – इष्ट 50 घटी = 10 घटी रात्रि शेष रही।

इसे दिनार्द्ध में जोडा 16 दिनार्द्ध + 10 रात्रि शेष घडी = 26 घंटे यह रात्रि का पूर्व नत हुआ। अर्थात् इष्ट से मध्यान्ह 26 घटी की दूरी पर है।

अर्द्धरात्रि के उपरान्त मध्यान्ह तक कहीं भी इष्ट हो तो पूर्व नत ही कहलाता है। अपना इष्ट अर्द्धरात्रि के उपरान्त है इससे पूर्व नत कहलाया। या दिनार्द्ध + 60 घटी – इष्ट = पूर्व नत। दिनार्द्ध अल्प होने से इष्ट नहीं घटता इससे 60 जोडकर इष्टकाल घटाना पडता है। जैसे 16- 0 50 – 0 = 16 + 60 – 50 = 76 – 50 = 26 घटी पूर्व नत हुआ। नत के मुख्य 2 ही भेद हैं पूर्व नत और पश्चिम नत, जिनका काम पडता है और मुख्य 2 ही रीति नत निकालने की है।

1. पूर्व नत = दिनार्द्ध – इष्ट, इष्ट न घटे तो दिनार्द्ध में 60 जोडकर घटाना
2. पश्चिम नत = इष्ट – दिनार्द्ध

नत समझाने के लिये ही उपर 4 भेद करके समझाये हैं। दशम साधन करने के लिये इसी नतकाल की आवश्यकता पडती है। पूर्व नत हो तो भुक्त प्रकार से, पश्चिम नत हो तो भोग्य प्रकार से नत को इष्ट मानकर लंकोदय पर से लग्नवत् क्रिया करने से दशम भाव स्पष्ट होता है।

उन्नत -

दशम भाव साधन करने के लिये कभी उन्नत का भी आवश्यकता पड जाती है। उन्नत क्या है।

उन्नत = 30 घटी – नत

30 घटी में से नत घटा देने से उन्नत होता है। मध्यान्ह और अर्द्धरात्रि में सदा 30 घटी का अंतर रहता है। जैसा नीचे बताये उदाहरण से प्रगट होगा।

दिन रात्र दोनों मध्यान्ह अर्द्ध दोनों मध्यान्ह संध्या अर्द्धरात्रि का मध्यान्ह

मान मान का योग दिनार्द्ध रात्रि का योग इष्ट इष्टदिनमान इष्ट दिनमान और रात्रि अर्द्ध + अर्द्धरात्रि के इष्ट में **अंतर**

31	29	60	15 ॥	14 ॥	30	15 ॥	31	31+ 14 ॥	= 45॥	30
32	28	60	16	14	30	16	32	32 + 14	= 46	30
33	27	60	16 ॥	13 ॥	30	16 ॥	33	33 + 13 ॥	= 46 ॥	30

मध्यान्ह में दशम भाव का स्थान जहॉ होता हैं वहीं दिनार्द्ध होता हैं और अर्द्धरात्रि में चतुर्थ भाव का स्थान जहॉ होता है वहॉ रात्रि अर्द्ध होता है। उपर दिनमान के 3 उदाहरण देकर बतलाये गये हैं। दिनमान 31 घटी हैं तो रात्रि अर्द्धरात्रि का इष्ट 45 ॥ होता है। इस अर्द्धरात्रि के इष्ट में से दिनार्द्ध 15 ॥ घटी घटाया तो शेष 30 घटी ही रहती है। इस प्रकार मध्यान्ह और अर्द्धरात्रि के बीच सदा 30 घटी का अन्तर रहता है।

मध्यान्ह से इष्टकाल की दूरी को नत कहते है, और अर्द्धरात्रि से इष्ट की दूरी को उन्नत कहते हैं। जिस प्रकार नत मध्यान्ह से अर्द्धरात्रि तक नापा जाता है उसी प्रकार उन्नत अर्द्धरात्रि से मध्यान्ह तक का इष्ट का अंतर नापा जाता है। इसी कारण 30 घटी में से नत घटी पल घटा देने से उन्नत की घटी पल आ जाती है।

1.3.3 नतोन्नत काल का महत्व

नतोन्नत काल का महत्व ज्योतिष शास्त्र में कुण्डली निर्माण प्रक्रिया के साथ साथ सैद्धान्तिक विवेचन करने में भी है। दशम भाव साधन करने के लिए नत एवं उन्नत काल का ज्ञान परमावश्यक है। प्राचीन आचार्यो ने नतोन्नत काल ज्ञानार्थ कहा है –

एवं लंकोदयैर्भुक्तं भोग्यं शोध्यं पलीकृतात्।

पूर्वपश्चान्नतादन्यत् प्राग्वत्तदशमं भवेत् ॥

लग्न साधन के अनुसार ही लंकोदय मान व नतकाल द्वारा सायन सूर्य से दशम साधन करना चाहिए

दिनार्द्ध से लेकर रात्रयर्ध से पूर्व तक का इष्ट काल हो, अर्थात् जन्म समय P.M प्रकट किया गया हो तो **पश्चिम नत** होता है। इसके अतिरिक्त समय का इष्टकाल हो अर्थात् जन्मसमय को A.M में अभिव्यक्त किया गया हो तो **पूर्वनत** होता है।

1.4 सारांश

ज्योतिष शास्त्र के स्कन्धत्रय में गणित स्कन्ध के अन्तर्गत तथा गोलीय ज्ञानार्थ नत एवं उन्नत काल का ज्ञान परमावश्यक है। दिनमान के आधा दिनार्ध होता है, तथा रात्रिमान का आधा रात्रयर्ध होता है। इसी दोनों के आधार पर हम **नत** एवं **उन्नत** काल का ज्ञान प्राप्त करते है। दिनमान मे रात्रयर्ध जोडने से **मिश्रमान** होता है। दिनार्ध घडी को इष्टकाल में से घटा लें। शेष यदि 30 घटी से कम हो तो शेष ही पश्चिम नत होता है। यदि शेष 30 घटी से अधिक हो तो उसे 60 में से घटाने पर पूर्व नत होता है। सारांशार्थ मध्यान्ह काल से लेकर जन्म समय तक की दूरी नतकाल है। मध्यान्ह से

जितने घडी पहले जन्म हो वह पूर्वनत और जितने घटी बाद में जन्म हो वह पश्चिम नत है।

1.5 परिभाषिक शब्दावली

नतकाल – मध्यान्ह रेखा से इष्ट के अन्तर को **नत** कहते है।

उन्नत काल – 30 घटी में से नत घटा देने से उन्नत काल होता है।

मध्यान्ह रेखा – जो पृथ्वी के ठीक मध्य से होकर गुजरती है।

मिश्रमान - दिनमान + रात्र्यर्ध = मिश्रमान

अभ्यास प्रश्न – 2

1. नत काल से आप क्या समझते है।
2. उन्नत काल क्या है।
3. मिश्रमान क्या है।
4. नत एवं उन्नत काल साधक सूत्र क्या है।
5. नतोन्नत काल का सैद्धान्तिक विवेचन कीजिये।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर संख्या – 1

1.ख

2. क

3. क

4. ख

5. क

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर संख्या – 2

1.नत शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है – झुका हुआ। गणितीय विवेचन के आधार पर मध्यान्ह रेखा से इष्ट के अन्तर को **नत कहते है।** नत को आंग्लभाषा में **Meridian distance** कहते है। मध्यान्ह रेखा = दशम स्थान, सिर के उपर का स्थान = दोपहर। नत 2 प्रकार का होता है – पूर्वनत एवं पश्चिम **पूर्वनत** – मध्यान्ह रेखा के इसी पार अर्थात् अर्द्ध रात्रि से मध्यान्ह तक का इष्ट हो तो पूर्व नत होता है।

उन्नत = 30 घटी – नत। 30 घटी में से नत घटा देने से उन्नत होता है। मध्यान्ह और अर्द्धरात्रि में

सदा 30 घटी का अंतर रहता है। उन्नत का अर्थ होता है – उठा हुआ।
दिनमान मे रात्रयर्ध जोडने से **मिश्रमान** होता है। निरक्षादि देशों में सदैव मिश्रमान 45 घटी होता है।
दिवा पूर्व नत = दिन में मध्यान्ह के पूर्व इष्ट काल हो = दिनार्द्ध – दिन गत घटी अर्थात् इष्ट दिवा
पश्चिम नत = दिन में मध्यान्ह के पश्चात् इष्ट हो = दिनार्द्ध – दिन शेष घटी या इष्ट दिनार्द्ध
रात्रि पश्चिम नत = रात्रि में मध्य रात्रि के पूर्व का इष्टकाल हो = दिनार्द्ध + रात्रि गत घटी या इष्ट दिनार्द्ध
रात्रि पूर्व नत = अर्द्धरात्रि के पश्चात् का इष्ट हो = दिनार्द्ध + रात्रि शेष घटी या दिनार्द्ध + 60 घडी इष्ट

पूर्व दिवा नत = दिन में मध्यान्ह से पहले और सूर्योदय के उपरान्त जो इष्ट हो वह दिवा **पूर्व नत** कहलाता है। इसे निकालने के लिए सूर्योदय के उपरांत जितना इष्ट हुआ हो दिनार्द्ध मध्यान्ह काल में से घटाओं तो मध्यान्ह की दूरी इष्टकाल से निकल आयेगी। इसी दूरी को पूर्व नत कहते है।

माना कि दिनमान = $32^{घ} / 0^{प}$ है दिनार्द्ध 16/0 हुआ। रात्रिमान 60 घटी – दिनमान 32 – 0 = 28 घटी। रात्रि अर्द्ध 14 / 0 हुआ। यदि अपना इष्ट 10 घटी हैं तो यह इष्ट मध्यान्ह या दिनार्द्ध के पहले का हैं तो दिनार्द्ध 16 – 0, - इष्ट 10 – 0 = 6 घटी शेष रहा। यह 6 घटी दिवा पूर्व नत है। इसका अर्थ यह हुआ कि मध्यान्ह होने में 6 घटी शेष है।

दिवा पश्चिम नत = दिन में मध्यान्ह के उपरांत का सूर्यास्त तक का इष्टकाल हो तो दिवा पश्चिम नत होता है। यहॉ ध्यातव्य हैं कि मध्यान्ह से इष्टकाल कितनी दूर है इसके लिये इष्टकाल में से दिनार्द्ध घटा दो तो मध्यान्ह की दूरी निकल आयेगी।

जैसे इष्ट 20 घटी है। उपरोक्त दिनार्द्ध 16 घटी हैं तो इष्ट से दिनार्द्ध घटाया इष्ट – दिनार्द्ध = 4 घटी = यह दिवा पश्चिम नत हुआ अर्थात् मध्यान्ह 20 – 0 – 16 – 0 पश्चिम को 4 घटी इष्ट आगे चला गया है।

इसको इस प्रकार भी निकाल सकते है। इष्टकाल 20 घटी दिनमान 32 घटी हैं तो दिनमान – इष्ट = 12 घटी दिन की शेष घटी हुई। दिन की शेष घटी को दिनार्द्ध में से घटा देना दिनार्द्ध 16 / 0 – दिन शेष घटी 12 /0 = 4 घटी। यही पश्चिम नत हुआ। जिसका अर्थ यह हैं कि मध्यान्ह से इष्टकाल 4 घटी आगे दूरी पर चला गया है।

रात्रि पश्चिम नत = सूर्यास्त होने के उपरान्त और अर्द्धरात्रि के बीच का इष्टकाल हो तो दिनार्द्ध में रात्रि गत घटी जोड दो तो पश्चिम की और मध्यान्ह से इष्टकाल की दूरी निकल आयेगी।

जैसे रात्रि का इष्ट काल 40 घटी हैं दिनमान 32 घटी हैं तो गत रात्रि घटी इष्ट – दिनमान घ. प. – 40 -0-32-0 = 8 – 0 = रात्रि गत घटी हुई। अर्थात् सूर्यास्त के उपरान्त 8 घटी और जाने पर इष्ट मिलता है। गत रात्रि घटी 8 – 0 + दिनार्द्ध 16 -0 = 24 घटी होता है। यहॉ 24 घटी पश्चिम नत हुआ। इससे प्रगट हुआ कि पश्चिम की ओर मध्यान्ह से 24 घटी और इष्टकाल गया है अर्थात् मध्यान्ह से इष्टकाल की दूरी 24 घटी है।

इसे इस प्रकार भी निकाला जा सकता हैं कि इष्ट में से दिनार्द्ध घटा दो तो रात्रि का पश्चिम नत निकल आयेगा। इष्ट – दिनार्द्ध 40- 0-16 – 0 = 24 घटी हुई। यही रात्रि का पश्चिम नत हुआ। वास्तव में दिवा पश्चिम नत और रात्रि पश्चिम नत निकालने को एक ही रीति है। चाहे दिन का इष्ट हो वह पश्चिम नत ही कहलाएगा। दोनों एक ही हैं यहॉ केवल समझाने के लिये दिन और रात्रि का भेद करके उदाहरण देकर समझाया है।

रात्रि पूर्वनत – अर्द्धरात्रि के उपरान्त सूर्योदय तक का इष्टकाल हो तो रात्रि पूर्व नत होता है। दिनार्द्ध में रात्रि की शेष घटी जोड दो तो मध्यान्ह से पूर्व की ओर इष्टकाल की दूरी निकल आयेगी।

जैसे इष्ट 50 घटी है। अब रात्रि की शेष घटी निकालनी है अर्थात् रात्रि कितने घटी और बची है यह जानने को 60 घटी में से इष्ट घटाने से रात्रि को शेष घटी निकल आती है। 60 घटी – इष्ट 50 घटी = 10 घटी रात्रि शेष रही।

इसे दिनार्द्ध में जोडा 16 दिनार्द्ध + 10 रात्रि शेष घडी = 26 घंटे यह रात्रि का पूर्व नत हुआ। अर्थात् इष्ट से मध्यान्ह 26 घटी की दूरी पर है।

अर्द्धरात्रि के उपरान्त मध्यान्ह तक कहीं भी इष्ट हो तो पूर्व नत ही कहलाता है। अपना इष्ट अर्द्धरात्रि के उपरान्त है इससे पूर्व नत कहलाया। या दिनार्द्ध + 60 घटी – इष्ट = पूर्व नत। दिनार्द्ध अल्प होने से इष्ट नहीं घटता इससे 60 जोडकर इष्टकाल घटाना पडता है। जैसे 16- 0 50 – 0 = 16 + 60 – 50 = 76 – 50 = 26 घटी पूर्व नत हुआ।

नत के मुख्य 2 ही भेद हैं पूर्व नत और पश्चिम नत, जिनका काम पडता है और मुख्य 2 ही रीति नत निकालने की है।

पूर्व नत = दिनार्द्ध – इष्ट, इष्ट न घटे तो दिनार्द्ध में 60 जोडकर घटाना

पश्चिम नत = इष्ट – दिनार्द्ध

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व – डॉ सुरेशचन्द्र मिश्र

1. सचित्र ज्योतिष शिक्षा – बाबूलाल ठाकुर

2. भारतीय ज्योतिष – मीठालाल ओझा

3. जन्मपत्र व्यवस्था – सीताराम झा
4. ताजिकनीलकण्ठी – नीलकण्ठ दैवज्ञ

1.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. नतोन्नत काल को परिभाषित करते हुए उसकी सैद्धान्तिक विवेचन कीजिये।
2. नतोन्नत काल के साधक सूत्रों का लेखन करते हुए उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

इकाई - 2 दशमलग्न साधन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई **दशम लग्न** साधन से संबंधित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने **दशम लग्न** साधनार्थ नत एवं उन्नत काल का ज्ञान कर लिया है, तदनुसार यहॉ हम दशम लग्न साधन का विवेचन करेंगे।

लगतीति लग्नम्। उदय क्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता हैं उसे **लग्न** कहते है। उर्ध्व दिशा में जहॉ क्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में स्पर्श करता हैं, उसे **दशम लग्न** कहते है। सायन सूर्य द्वारा लग्न साधन की विधि से ही दशम लग्न स्पष्ट किया जाता है। अन्तर यह हैं कि स्वोदय मान के स्थान पर लंकोदय मान का प्रयोग होगा और सूर्योदयात् इष्टकाल के स्थान पर नतकाल का प्रयोग होता है।

प्रस्तुत अध्याय में दशम लग्न साधन कैसे किया जाता है इसका विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य ग्रहों के स्पष्टीकरण के अन्तर्गत दशम लग्न साधन का बोध कराने से है। निम्नलिखित रूप में उद्देश्यों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है ..

1. दशम लग्न क्या है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
2. दशम लग्न साधन के लिए विभिन्न उपकरणों का ज्ञान प्राप्त कर सकते है।
3. दशम लग्न का साधन कैसे किया जाता है? इसका ज्ञान कर पायेंगें।
4. दशम लग्न साधन किस प्रकार से किया जाता हैं, इसका गणितीय विवेचन कर पायेंगे।
5. दशम लग्न साधन के गोलीय पक्षों का ज्ञान कर सकेंगें।
6. दशम लग्न के महत्व को समझ पायेंगें।
7. दशम लग्न साधन के विभिन्न् पहलुओं पर प्रकाश डाल पायेंगें।

2.3 दशम लग्न परिचय

2.3.1 लग्न परिचय एवं साधन : -

लगतीति लग्नम्। गोलीय रीति से उदयक्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसे लग्न कहते है। क्षितिज वृत्त में पश्चिम दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसे सप्तम लग्न, अधो दिशा में चतुर्थ और उर्ध्व दिशा में **दशम** लग्न कहते है। जिस समयका लग्न बनाना चाहें उस समय

के स्पष्टसूर्य में तत्काल अयनांश युक्त करें तो उसकी सायन संज्ञा होती है। उस राश्यादि सायनार्क में से राशि का त्याग करके जो अंशादिक फल रहे उसको भुक्त कहते है। उस भुक्तको ३० अंशो में कम कर देने से शेष को अंशादि भोग्य फल कहते है। तदनन्तर जो राशि दूर की थी उसमें एक मिलाकर तत्परिमित राशिके उदयसे भुक्त अथवा भोग्यको गुणाकरके तीस ३० का भाग दे। तब क्रम से भुक्त काल अथवा भोग्य काल के पल होते हैं। तदनन्तर अभीष्ट घडियों के पल करके उसमें भोग्यकाल के पल घटावे जो शेष रहे उसमें जिस उदय से गुणा किया था उससे आगे के जितने पलात्मक उदय घट सकें उतने घटावें। पीछे से जो पलादिक शेष रहें उनको तीस संख्या से गुणा करे तब जो गुणन फल हो उसमें जो उदय घट नहीं सका हो उसका भाग दे। तब जो अंशादि लब्ध हो उसमें मेषराशि से लेकर जितनी राशि का उदय घटा हो उतनी राशि युक्त करें तब जो अंक आवें उनमें अयनांश घटाये तब जो शेष रहे वह अभीष्ट काल की राश्यादि लग्न होती है।

जो भोग्यकाल थोडा हो अर्थात् इष्टघटी पलों में नहीं घटै तो इष्टघटी पल को तीस ३० से गुणा करें अनन्तर सायनसूर्य के राश्युदय से भाग दे। भाग देने से जो अंशादिक लब्ध मिलें उनको सूर्य में युक्त कर दें। संयुक्त कर देने से ही लग्न स्पष्ट हो जाता है और रात्रि के विषम लग्न साधन हो तो स्पष्ट सूर्य में ६ राशि युक्त करना। अनन्तर पूर्वरीतिप्रमाण लग्न बनाना चाहिये। परन्तु अभीष्टकाल रखते समय जो इष्टकाल हो उसमें दिनमान कम करके जो शेष रहे वहीं अभीष्ट रखना चाहिये।

लग्नसाधनोदाहरण

स्पष्ट सूर्य राश्यादि ००।८।५२।५५ में अयनांश २२।५८।५। को युक्त किया तब १।१।५१।०० यह सायनरवि हुआ राशि १ को छोडकर भुक्त अंशादि १।५१।०० को ३० में घटाया तो २८।९।०० यह भोग्यांश हुए। अब सायनार्क वृषराशिका है तो वृषराशिके उदय २५१ से भोग्यांशादि २८।९।०० को गुणादिया (और विपल व प्रतिविपलको ६० से चढादिया) तो ७०६५।३९।०० हुए। इनमें ३० का भाग दिया भाग लेनेसे २३५।३१।१८ सूर्यके भोग्यपलादि अंक हुए, ये इष्टकाल ०।२० से अधिक हैं, इस कारण पलात्मक न्यून इष्टकाल २० को ३० से गुणा किया तब ६०० हुए, यहां सायन सूर्य वृषराशिका है इस कारण वृषराशिके उदय २५१ का ६०० में भाग लगाया तब अंशादि लब्धि हुई २ अं. ३ क. २५ वि. इसको स्पष्टविमें युक्त किया तब रा. ० राश्यादि ६।११।१६।२० यह सप्तभाव स्पष्ट हुआ।

दशमसाधनार्थ नतानयन

जो ठीक मध्याह्नमें अपन जन्म होय तो तात्कालिक सूर्य दशमभाव होता है और जो ठीक मध्यरात्रिसमय इष्टकाल हो तो तात्कालिक स्पष्ट सूर्य चतुर्थ भाव होता है।

रात्रिशेष घटीपलमें दिनार्ध घटीपल युक्त करै तो रात्रिका पूर्व नत हो और रात्रिगत घटीफल में दिनार्ध घटीपल युक्त करें तो रात्रिका पश्चिमनत होता है तथा दिनार्द्ध घटीफलमें अभीष्ट घटी पल घटजानेसे दिनका पूर्वनत और अभीष्टकालमें दिनार्ध घटजावै तो दिनका परनत होता है। अर्थात् अर्धरात्रिपर्यन्त अथवा मध्याह्नपर्यन्त के भीतर का इष्टकाल हो तो पूर्वनत और उपरान्त से पश्चिमनत होता है।

सायनार्क के भुक्तकाल वा भोग्यकाल को लङ्कोदय से लग्नवत् साधन करें तथा पूर्वनत में ऋण क्रिया से और पश्चिम नत में धन क्रियावत् दशमसाधन करै अर्थात् पूर्वोक्तरीतिसे सायनांक के भुक्तकाल व भोग्यकाल को ग्रहण कर अंशादिकोंको दशम भाव स्पष्ट करने के अर्थ लंकोदय राशिप्रमाण से गुणा करें और तीस ३० संख्या से भाग देकर पलादि को ग्रहण करें फिर उन भुक्त वा भोग्य पलात्मक अंकों को पूर्वनत होय तब पूर्वनत को इष्टकाल कल्पना करके उसी सें सूर्य के भुक्तकाल को शोधन करें और संपूर्ण शेष क्रिया ऋण लग्न के समान करें और जब पश्चिमनत हो तो पश्चिम नत को इष्टकाल मानकर उसी से सूर्य के भोग्यकाल का शोधन करें, अन्य सब क्रिया धन लग्न के समान करने से दशमभाव सिद्ध होता है नत को तीस संख्या में हीन करने से उन्नत होता है।

2.3.2 दशम चतुर्थ भाव साधनोदाहरण -

लग्नसाधन के रीति से दशम भाव साधन किया जाता है केवल भेद इतना ही है कि, लग्नसाधन में स्वदेशोदय लग्न का प्रमाण लिया जाता है और दशम साधन में लंकोदय का प्रमाण लिया जाता है और इष्टकाल के स्थान में नत वा उन्नत काल की घटी पल का ग्रहण है। तहां लग्नसाधन के उदाहरण में भोग्यांशों से लग्नसाधन का क्रम दर्शाया है। अब भुक्तांशों पर से दशम साधन का उदाहरण लिपिबद्ध करते हैं, तात्कालिक सायनार्क ०१।१।५१।०० एक १ राशि को छोडकर अंशादि १।५१।० भुक्त हुये, इनको लंकोदयी वृष राशि के उदय से गुणा किया तो पलादि हुये, ५५३।९।०० इसमें ३० का भाग दिया, भाग देने से १८।२८।१८ यह सूर्य के भुक्त पलादि, अंक हुए। इनको पूर्वनत १५।४३ की पलात्मक संख्या ९४३ में घटाया तो ९२४।३३।४२ शेष रहे। इसमें वृष से पीछे की राशि मेष के लंकोदय मान २७८ मीन के २७८ कुंभ के २९९ उदयों को घटाया तो ६९।३३।४२ शेष रहे। इसमें मकर का उदय ३०३ नहीं घटता, इस कारण शेष ६९।३३।४२ को ३० से गुणा कर दिया तब २।८६।५१।०० हुये। इसमें अशुद्ध मकर के मान ३०३ से भाग दिया तो लब्ध अंशादि ६।४९।६ हुये यहां ऋण लग्न के क्रिया से दशम साधन किया है इस कारण अशुद्धोदय मकर की संख्या मेष से दशवीं है तो दशराशि में घटाया तो ९।२३।१०।५४ हुए इसमें अयनांशों को घटाया तो ९।०।१२।४९ यह राश्यादि स्पष्ट दशम भाव हुआ। दशम में ६ राशि युक्त किया तो ३।०१३।४९ यह चतुर्थ भाव हुआ।

धनादि भाव साधन

लग्नको चतुर्थ भावमें घटाने से जो शेषांक हो उनमें छः का भाग दे अर्थात् लग्न व चतुर्थ के अंतर का षष्ठांश (छठा भाग) लें। वह षष्ठांश राश्यादि लग्न में जोड़ दे तो लग्न की विराम संधि और धन भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने से धन भाव स्फुट होता है धन भावमें षष्ठांश जोड देने से धन भाव की विराम (समाप्ति) संधि और तृतीय भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करें तो तृतीय भाव होता है फिर तृतीय भाव में षष्ठांश युक्त करें तो तृतीय भाव की विराम संधि और चतुर्थ भाव की आरंभ संधि होती है और तृतीय भाव की संधि में एक जोड दें तो वह चतुर्थ भाव की विराम संधि होती है। तृतीय भाव में दो जोड देने से पंचम भाव स्फुट होता है।

द्वितीय भाव की संधि में तीन जोड़ देने से पंचम भाव की संधि होती है, धन भाव में चार युक्त करनें से छठा भाव होता है। लग्न की संधि में पांच युक्त करें तो रिपु भाव की संधि होती है। संधि सहित लग्नादिक भावों में छः २ राशि संयुक्त करने से सप्तम आदि के सब भाव सन्धि सहित होते हैं।

धनादिभावसाधनोदाहरण

लग्नराश्यादि ००।११।१६।२० चतुर्थभाव राश्यादि ३।००।१२।४९ चतुर्थ में लग्नको घटाया अर्थात् लग्न चतुर्थ का अंतर २।१८।५६।४९ इसमें ६ का भाग दिया अर्थात् षष्ठांश निकाला तो ००।१३।९।२५ यह अंक राश्यादि (षष्ठांश संज्ञक) हुए। इस षष्ठांशको लग्नमें युक्त किया तो ००।२४।२५।४५ यह लग्नकी विराम और धन भावकी आरंभ संधि हुई। इसमें षष्ठांश जोड दिया तो ०१।७।३५।१० यह धन भाव हुआ। इसमें षष्ठांश युक्त किया तो १।२०।४४।३५ यह धन भावकी विरामसंधि हुई इसी प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे बारहों भावका स्पष्ट चक्र लिखा है। सो चक्रमें देखकर संपूर्ण भावोंका साधन करना भली भाँति समझ लेना चाहिये।

भावकुंडली

संधि, ग्रह इनमें जो अधिक हो उसमें कमतीको हीन करके अर्थात् भावतुल्य ग्रह होय तो पूर्णफल २० विश्वा देता है तथा ग्रह भावसे कमती होय तो ग्रहमेंसे आरंभसंधि कम करना. एवं ग्रह भावमें अधिक होय तो विरामसंधिमेंसे ग्रह कम करना अर्थात् समीपवर्ती संधि और ग्रहका अंतर करना। फिर शेष अर्थात् अंतरको बीसने गुणा करै तदनंतर उसमें भाव और संधिके अंतरसे भागलेबे, भाग लेनेसे जो अंशादि फल मिलै उसीको विंशोपक कहा है अर्थात् इतने विश्वा यह ग्रह फल देगा

विंशोपका बलोदाहरण

सूर्यराश्यादि ००।८।५२।५५ तनुभाव ००।११।१६।२० से कम है इस कारण सूर्यमेंसे आरंभ संधि अर्थात् समीपकी संधि ११।२४।२५।४५ को घटाया अर्थात् अंतर किया तो शेष अंशादि १४।२७।१० रहे। इनको २० से गुणा तो २८९।३।२० यह भाज्य हुआ, अब तनुभाव ००।११।१६।२० और इसकी संधि ११।२४।२५।४५ का अन्तर किया तो शेष अंशादि १६।५०।३५ रहे यह भाजक जानो. भाग लेनेके अर्थ भाज्य भाजकको ६० से गुण दिया तो भाज्य १०४०६०० हुआ और भाजक ६०६३५ हुआ इससे भाग लेनेपर लब्ध १७।९ यह सूर्यका विंशोपकात्मक पल भया अर्थात् तनु (लग्न) भावमें सूर्यका १७।९ विश्वा बल जानना. इसी प्रकार चन्द्रमा आदिका विश्वा बलसाधन करें। चं. १। वि. मं. १६ ॥ वि. बुध. २ ॥ वि. बृ. ८॥ वि. शुक्र. १६ वि. शनि ८॥ राहु. १३। विश्वा केतु १३। विश्वा बल मिला।

अभ्यास प्रश्न –

निम्नलिखित प्रश्नों का एक शब्द में उत्तर दें -

1. लग्न किसे कहते है।
2. गोल में दशम लग्न कहॉं होता है ।
3. दशम लग्न साधनार्थ सर्वप्रथम क्या साधन किया जाता है ।

4. स्वोदय का क्या तात्पर्य है ।
5. अयनांश का क्या अर्थ है ।

2.3.3 प्राचीन विधि में दशम साधन –

सायन सूर्य द्वारा लग्न साधन की विधि से ही दशम लग्न स्प्ष्ट किया जाता है। अन्तर यह है कि स्वोदय मान के स्थान पर लंकोदय मान का प्रयोग होग और सूर्योदयात् इष्टकाल के स्थान पर नतकालन का प्रयोग करना होगा। प्रक्रिया बिल्कुल वही होगी। इस पद्धति द्वारा लग्न व दशम साधन करने वाले लोगों को ये श्लोक अवश्य स्मरण रखना चाहिये –

तत्काले सायनार्कस्य भुक्तभोग्यांशसंगुणात्।
स्वोदयात्खाग्नि लब्धं यद् भुक्तं भोग्यं रवेस्त्यजेत्॥
इष्टनाड़ी पलेभ्यश्च गतगम्यान्निजोदयान्।
शेषं खत्र्या हतं भक्तमशुद्धेन लवादिकम्॥
अशुद्धशुद्धभे हीनयुक्तनुर्व्ययनांशकम्॥

तात्कालिक सूर्य में अयनांश मिलाकर सायन सूर्य होता है। सायन सूर्य के भुक्त या भोग्यांशों को सायन सूर्य की राशि के स्वोदय मान से गुणा करें। तब गुणनफल में 30 का भाग देने से लब्धि भोग्य या भुक्त काल होती है। इस भोग्य भुक्त काल को इष्टकाल के पलों में से घटाकर जो शेष रहे, उसमें से आगे की राशियों के स्वोदय मान को घटाते जायें। जब न घटे तो शेष को 30 से गुणाकर अशुद्ध राशिमान से भाग देने से लब्धि अंश कलादि होती है। उस अंश कला के पहले अशुद्ध राशि में से एक घटाकर रखने से सायन लग्न व उसमें से अयनांश घटाने पर निरयण लग्न होता है।

2.4 दशम लग्न साधन – भुक्त एवं भोग्य रीति से

एवं लंकोदर्यर्भुक्तं भोग्यं शोध्यं पलीकृतात्।
पूर्वपश्चान्नतादन्यात् प्राग्वत्तदशमं भवेत्॥

इसी प्रकार लंकोदय व नतकाल द्वारा सायन सूर्य से लग्न साधनवत् दशम लग्न साधन करना चाहिये। ध्यातव्य हो कि पश्चिम नत हो तो भोग्यांशों द्वारा प्राप्त भोग्य काल से एवं पूर्व नत हो तो भुक्त प्रकार से क्रिया करनी चाहिये।

भुक्त रीति से दशम साधन का उदाहरण

माना कि सूर्य - 5।18^0।0।0 है जिसका भुक्त पल 166।48 है, तथा अयनांश – 23।41।26 । पूर्व नत होने से भुक्त रीति से साधन करेंगे। भुक्त रीति होने से सूर्य के भुक्तपल को पूर्वनत से घटाकर विरूद्ध क्रम से राशियॉं घटाने के उपरान्त अशुद्ध राशि से शेष के अंश पल बनाकर अशुद्ध राशि से

घटाकर सायन दशम लग्न निकालेंगे।

पल वि.

पूर्व नत 240। 0

कन्या भुक्त 166।48

73।12

लंकोदय सिंह 299 - अशुद्ध

सायन सिंह - 4।22^0।39।20

अयनांश - - 23।41।26

3।28।57।54

इसीलिये निरयन दशम भाव

राश्यादिक - 3।28^0।57।54

73।12 × 30 = 2196 = 7^0।20।40

सिंह 299 अशुद्ध 299 – सिंह का मान

73।12

× 30

2196।0

2196 = 7।20।40

299

5 ।0। 0। 0

0।7।20।40

4।22^0।39।20 सायन दशम भाव

भोग्य रीति से दशम साधन –

इष्ट – 12।। घटी है दिनार्द्ध 16।। घटी है। दिनार्द्ध 0 न घटने से इष्ट में 60 घटी जोड़ने से 72।। हुआ। इसमें से दिनार्द्ध 16।। घटी घटाया तो 56 घटी = 3360 पल हुये। माना कि सायान सूर्य 5।18।0।0 है जिसका कन्या भोग्य पल 111।12 है।

पल 0 वि0

दशम का इष्ट 3360।0

कन्या भोग्य 111।12

3248।48

तुला से मीन तक 6 राशि = 1800

मेष से मिथुन तक 3 राशि = 1448 – 48

900 – 0

548 – 48

कर्क 323

225-48

सिंह अशुद्ध राशि 299

$\frac{225 \mid 48 \times 30}{299} = \frac{6774}{299}$

225।48

× 30

$\frac{6774 \mid 0}{299} = 22^0 \mid 39 \mid 20$

= 4।22^0।39।20 राश्यादिक मानम् सायन दशम।

2.5 सारांश

जन्मकुण्डली निर्माण में अथवा गणित ज्योतिष में दशम लग्न का ज्ञान परमावश्यक है। दशम लग्न साधन का गणितीय पक्ष इस अध्याय में आप कर चुके है। दशम लग्न के साधन का रीति समझने से आप कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में दक्ष हो सकते है, तथा ज्योतिष में ओर गति पा सकते है। गोलीय रीति से भी दशम लग्न का ज्ञान प्राप्त कर सकने में आप सफल हो सकेगें। इस इकाई का उद्देश्य ही उपर्युक्त विषयों का सम्यक् अध्ययन कराने से था। आशा है पाठक गण इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् दशम लग्न एवं उसकी साधन विधि को भली – भॉति समझ सकेगें।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली -

लग्न – उदय क्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में पूर्व दिशा में जहॉ स्पर्श करता है, उसका नाम लग्न है।

दशम लग्न - उर्ध्व दिशा में जहॉ क्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में जहॉ स्पर्श करता है, उसका नाम दशम लग्न है।

नत – मध्याह्न रेखा से इष्ट के अन्तर को **नत** कहते है।

उन्नत – 30 घटी – नत = उन्नत।

चतुर्थ लग्न - अध: दिशा में क्षितिज वृत्त क्रान्ति वृत्त में जहॉ स्पर्श करता है, उसका नाम चतुर्थ लग्न कहते है।

अभ्यास प्रश्न का उत्तर -

1.लगतीति लग्नम्

2. उर्ध्व दिशा में

3. नत एवं उन्नत साधन

4. स्वदेशीय उदय मान

5. अयन सम्बन्धित अंश

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. ज्योतिष सर्वस्व - चौखम्भा प्रकाशन
5. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
6. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

2.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. दशम लग्न को परिभाषित करते हुये उसका स्पष्ट रूप से साधन करें।

2. भुक्त एवं भोग्य प्रकार से दशम लग्न का साधन कीजिये।

इकाई - 3 षष्ठांश ज्ञान विधि

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चतुर्थ खण्ड की तृतीय इकाई **'षष्ठांश ज्ञान विधि'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पलभा, चरखण्ड एवं अयनांशादि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ षष्ठांश की चर्चा करते है और साथ ही षष्ठांश ज्ञान की विधि भी प्रस्तुत किया जा रहा है। **षष्ठांश का अर्थ है – छठॉ अंश।** द्वादश भाव के अन्तर्गत षष्ठांश ज्ञान किया जाता है । द्वादश भाव साधन के अन्तर्गत षष्ठांश का प्रयोग होता है।

कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्न एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लग्न के आधार पर ही हम जातक का फलादेशादि कर्तव्य कर पाते है। इस इकाई के अध्ययन से पाठकगण षष्ठांश का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त षष्ठांश ज्ञान विधि** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- लग्न क्या है।
- लग्न का साधन कैसे होता है।
- लग्नों के प्रकार कितने है।
- जन्मांग चक्र क्या है।
- जन्मांग चक्र निर्माण किस प्रकार किया जाता है।

3.3 षष्ठांश परिचय

षष्ठ का शाब्दिक अर्थ होता है – छ: और अंश का अर्थ है – भाग या हिस्सा। अर्थात् छठे भाग को षष्ठांश कहते है। अब प्रश्न उठता है कि किसका छठा भाग ? तो इससे पूर्व की इकाईयों में आपने लग्न और चतुर्थ भाव का ज्ञान किया है। यहॉ षष्ठांश की परिभाषा के अन्तर्गत आप जान लिजिये की लग्न और चतुर्थ भाव के अन्तर को **'षष्ठांश'** कहते है।

षष्ठांश को समझने के लिये द्वादश भाव को भी समझना होगा अत: ससन्धि द्वादश भाव का अध्ययन हम पश्चात् की इकाई में करेगें।

भावों के सामूहिक नाम भी हैं - जैसे केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम और त्रिकोण आदि। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भाव को 'केन्द्र' कहा जाता है। दूसरे, पांचवें, आठवें और ग्यारहवें स्थान को 'पणफर' कहते हैं। तीसरे, छठे, नवें और बारहवें भाव को 'आपोक्लिम' कहते हैं तथा प्रथम, पंचम और नवम

भाव को 'त्रिकोण' कहते हैं। तीसरे, छठे और दसवें भाव को 'उपचय', छठे, आठवें, व बारहवें भाव को 'त्रिक', दूसरे व आठवें भाव को 'मारक' तथा तीसरे, छठे व ग्यारहवें भाव को 'त्रिषडाय' कहते हैं। भाव स्पष्ट करने की जो प्रचलित रीति है उसके अनुसार लग्न से दशम भाव को स्पष्ट किया जाता है। दशम भाव में छः राशि जोड़ने से चतुर्थ भाव स्पष्ट हो जाता है।

3.3.1 षष्ठांश साधन

चतुर्थ में से लग्न को घटा कर उसे छः से भाग देने पर जो षष्ठांश होता है, उसे लग्न में जोड़ने पर प्रथम भाव को सन्धि, सन्धि में पुनः षष्ठांश जोड़ने पर द्वित्तीय भाव, द्वितीय भाव में षष्ठांश × २ को जोड़ने से तीसरा भाव तथा तथा पांचवां और छठा भाव स्पष्ट करने के लिए तीस अंशों में से षष्ठांश को घटाकर जो शेष बचता है, उसे जोड़ते हैं। भाव स्पष्ट करने की यही रीति आज भी प्रचलित है। इस रीति से कोई भी भाव समान अंशों (३० अंश) में नहीं आता, जबकि प्रत्येक भाव को समान अंश का होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि कोई भी ग्रह, जो कुंडली में चौथे भाव का अधिपति होता है, भाव स्पष्ट करने में वह पांचवे या तीसरे भाव का अधिपति बन जाता है।

इसलिए आज भाव स्पष्ट करने की जो परिपाटी चल रही है, वह ठीक नहीं है। भारत में इस रीति का प्रचार अरब और मिस्र आदि देशों से हुआ। फलित विकास के लेखक स्वर्गीय पं. रामचरन ओझा ने लिखा है कि भाव साधन की जो पद्धति आज भारत में प्रचलित है वह मुसलमानी मतानुसार है, ऋषिप्रणीत नहीं है। '**सिद्धान्त तत्त्व विवेक**' में इसका पूर्णतया खण्डन किया गया है। जैमिनी सूत्र में राशियों की दशा दी गयी है। भाव स्पष्ट की इस प्रणाली को मनाने से किसी राशि की दशा दो बार आयेगी तो किसी के एक बार भी नहीं आयेगी। '**सर्वे भावा लग्नांशसमा**:' अर्थात् सभी भाव लग्न के अंशों के समान हों, ऐसा नहीं हो सकेगा। सभी शास्त्रकारों ने लग्न के बाईसवें द्रेष्काण को मारक कहा है, पर यह तभी संभव हो सकता है जब अष्टम भाव लग्न के अंशादि के बराबर हो। आचार्य वराहमिहिर ने भी उपर्युक्त बात कही है। इससे यह सिद्ध होता है कि भाव स्पष्ट करने की यह रीति सह शुद्ध नहीं है। आर्ष वचनों के अनुसार लग्न स्पष्ट में एक-एक राशि जोड़ने से भाव स्पष्ट (द्वादश भाव) हो जाते हैं। लग्न स्पष्ट के बराबर सभी राशियों के भाव मध्य मानने की परिपाटी रही थी। भाव मध्य से पन्द्रह अंश पूर्व भाव प्रारंभ तथा भाव मध्य से पन्द्रह अंश पश्चात भाव समाप्त होता है। जब किसी भाव में कोई ग्रह होता है तो पूर्ण फल प्रदान करता है। जैसे वृषभ लग्न के २० अंश (१/२०) उदित हुए तो मिथुन के २० अंश पर ग्रह द्वितीय और कर्क के २० अंश पर ग्रह तृतीय भाव का फल करेगा। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

षष्ठांश यंत्र- षष्ठांश यंत्र सम्राट यंत्र का ही एक हिस्सा है। यह वलयाकार यंत्र सम्राट यंत्र के आधार से पूर्व और पश्चिम दिशाओं में चन्द्रमा के आकार में स्थित है। यह यंत्र भी ग्रहों नक्षत्रों की स्थिति और अंश का ज्ञान करने के लिए प्रयुक्त होता था।

जिस कुंडली का भाव स्पष्ट करना हो सबसे पहले उसके लग्न के अंश निकाल लिये जाते हैं तथा इसी प्रकार कुंडली के दशम भाव के अंश निकाले जाते हैं। लग्न के अंश को निरयण पद्धति में प्रथम

भाव का मध्य माना जाता है और दशम भाव के अंश को दशम भाव का मध्य बिन्दु माना जाता है।

षष्ठांश की परिभाषा –

प्रथम भाव में से दशम भाव मध्य को घटा कर तथा 6 से भाग करके जो मान आता है वह प्रथम और सप्तम भाव के बीच का 'षष्ठांश' कहलाता है। इस षष्ठांश को दशम भाव मध्य में 6 बार जोड़ते हैं तो दशम से प्रथम भाव तक के प्रारंभ, अंत और मध्य ज्ञात होते हैं तथा इन मानों में 6 राशि जोड़ देते हैं तो चतुर्थ से सप्तम भाव के बीच भाव के मध्य, प्रारंभ एवं अंत प्राप्त होते हैं। अब सप्तम से दशम भाव के मध्य षष्ठांश ज्ञात करने के लिए दशम व प्रथम भाव के षष्ठांश के मान को 30 Degree में से घटा देते हैं। इस षष्ठांश को सप्तम भाव मध्य में 6 बार जोड़ते हैं तो सप्तम से दशम के बीच भाव स्पष्ट हो जाते हैं। इन भाव स्पष्ट में यदि 6 राशि जोड़ देते हैं तो चतुर्थ से प्रथम के बीच भाव स्पष्ट हो जाता है। इस गणना के उपरांत प्रत्येक ग्रह का ग्रह स्पष्ट करते हैं तथा ग्रह स्पष्ट करने के उपरांत ग्रहों के अंश के अनुसार भावों को आधार मानकर यदि कुंडली में ग्रहों को स्थापित किया जाए तो जो कुंडली निर्मित होती है उसे चलित कुंडली कहते हैं। यदि ग्रहों के लिए भावों को आधार न मानकर सिर्फ राशि ही आधार मानी जाए और कुंडली में ग्रह स्थापित किये जाएं तो लग्न कुंडली बनती है। एक राशि का निर्धारित मान 300 होता है परंतु एक भाव का मान आवश्यक नहीं कि 300 ही हो । अतः कुछ ग्रह समान राशि में होते हुए भी भिन्न भावों में स्थित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए माना किसी ग्रह के अंश 6 रा. 4^0 हो तथा छठे भाव का प्रारंभ 6 रा. 5^0 तथा अंत 7 रा. 3^0 हो तो लग्न कुंडली के अनुसार ग्रह तुला राशि में स्थित होगा तथा भाव के अनुसार ग्रह चलित कुंडली में पंचम भाव में स्थित होगा। इस प्रकार यहां भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है कि ग्रह कैसे फल देगा। लग्न कुंडली के अनुसार फल देखना चाहिए या चलित कुंडली के आधार पर। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ग्रह की राशि तो तुला ही रहेगी लेकिन भाव पंचम होगा। अतः ग्रह इस आधार पर फल देगा कि ग्रह के तुला राशि में स्थित होने पर कैसा प्रभाव रहता है परंतु फल पंचम भाव के ही देगा क्योंकि ग्रह पंचम भाव में स्थित है। अर्थात यदि ग्रह को मंगल माना जाए तो हम यह देखेंगे कि मंगल और तुला राशि के स्वामी शुक्र के मध्य कैसा संबंध है जो कि शत्रुता का संबंध स्थापित करता है तथा शुक्र शुभ ग्रह है और मंगल एक पाप ग्रह है अर्थात मंगल और शुक्र का संबंध ठीक नहीं होगा। ऐसे में मंगल अशुभ फल देगा और वह अशुभ फल छठे भाव के न होकर पंचम भाव के हांगे। इसमें कुछ विद्वानों का यह मानना है कि मंगल चलित कुंडली में कन्या में चला जाएगा अतः हमें बुध और मंगल के बीच संबंध मानकर पंचम भाव का फल कहना चाहिए, जो कि गलत होगा। क्योंकि ग्रह स्पष्ट को देखें तो ग्रह तुला राशि में ही स्थित है। केवल भाव परिवर्तन होने से राशि परिवर्तन नहीं होता है। कुछ लोगों का मानना है कि ग्रह छठे भाव का ही फल देगा क्योंकि ग्रह लग्न कुंडली में छठे भाव में स्थित है और वे लोग चलित कुंडली को महत्व नहीं देते। वे मानते हैं कि ग्रह का राशि में होना ही भाव का भी निर्धारण करेगा, जो कि गलत है। वास्तव में छठे भाव का प्रारंभ ही तुला राशि के 5^0 से प्रारंभ होता है तथा ग्रह तुला राशि के 4^0 पर स्थित है जो कि पंचम भाव है। इस

प्रकार यदि हम भाव और राशि के अंतर को ठीक से समझ सके तो ग्रह की स्थिति और उसके फल को कहने में कोई भी संशय नहीं होगा। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों का मानना यह भी है जो ग्रह संधि में चले जाते हैं वे ग्रह निष्क्रिय हो जाते हैं। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता है। वास्तव में संधि क्या होती है ? जन्म कुंडली में संधि ऐसा स्थान होता है जहां पर लग्न कुंडली के अनुसार राशि समान हो परंतु चलित कुंडली के अनुसार भाव परिवर्तित हो ऐसी स्थिति में स्थित ग्रह भाव संधि में कहलाता है । अतः ऐसा ग्रह जो भाव संधि में स्थित होता है न तो वह निष्क्रिय होता है और न ही राशि परिवर्तन करता है बल्कि वह सिर्फ भाव परिवर्तन करता है। ऐसे ग्रह को निष्क्रिय कैसे मान सकते हैं। यह सारा विचार निरयण पद्धति को आधार मानकर किया गया है जिसमें कि लग्न के अंश को प्रथम भाव का मध्य माना जाता है जब कि पाश्चात्य पद्धति के अनुसार लग्न के अंश को प्रथम भाव का मध्य न मानकर प्रथम भाव का प्रारंभ माना जाता है तथा इसी के आधार पर भाव स्पष्ट किया जाता है । इस प्रकार निरयण पद्धति और पाश्चात्य पद्धति को ध्यान से देखा जाए और भाव को 30^0 का माना जाए तो भाव स्पष्ट में 15^0 का अंतर आ जाता है। इस प्रकार निरयण पद्धति और पाश्चात्य पद्धति के चलित चक्र में अंतर आ जाता है। यह अंतर इसलिए आता है क्योंकि निरयण पद्धति में जिस समय वास्तविक सूर्योदय होता है उसी को ही सूर्योदय समय माना जाता है जबकि पाश्चात्य पद्धति में यह माना जाता है कि वास्तविक सूर्योदय से लगभग एक घंटे पूर्व ही सूर्योदय हो जाता है। यह एक लंबी बहस का विषय है अतः विद्वानों में मतभेद होना स्वाभाविक है कि सूर्योदय का समय किसे माना जाए। भाव और राशियां अलग - 2 होती हैं। किसी भी भाव का प्रारंभ व अंत आवश्यक नहीं है कि राशि के प्रारंभ व अंत के समान हो अर्थात किसी भाव का प्रारंभ व अंत एक राशि के मध्य में से प्रारंभ होकर दूसरी राशि के मध्य में हो । यदि लग्न कुंडली व चलित कुंडली बनायी जाए तो निम्न प्रकार बनेगी। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है कि प्रथम भाव मध्य जो कि लग्न कहलाता है वृष राशि में स्थित है अर्थात निरयण पद्धति के अनुसार लग्न वृष राशि का होगा। लेकिन पाश्चात्य पद्धति के अनुसार प्रथम भाव प्रारंभ ही कुंडली का लग्न कहलाता है, इसके अनुसार लग्न मेष बनता है। संलग्न चित्र में मंगल जो कि तुला राशि में प्रदर्शित किया गया है लग्न कुंडली के अनुसार तुला राशि में होने के कारण छठे भाव में स्थित होगा जबकि पंचम भाव में होने के कारण चलित कुंडली में पंचम भाव में होगा। अर्थात इसका तात्पर्य यह है कि राशि तुला होगी लेकिन भाव पंचम होगा। कई बार मन में संदेह आता है कि चलित कुंडली में पंचम भाव में होने के कारण मंगल कन्या राशि में है तो यह लोगों का भ्रम है कि भाव बदलने से राशि परिर्वतन हो जाता है, जबकि ऐसा नहीं होता। राशि तुला ही रहेगी लेकिन भाव में स्थिति छठे में न होकर पंचम भाव में होगी। अर्थात जब मंगल की दशा चलेगी तो मंगल तुला राशि में रहते हुए पंचम भाव के फल देगा। पाश्चात्य पद्धति के अनुसार प्रथम भाव का प्रारंभ ही लग्न कहलाता है और प्रथम भाव का प्रारंभ मेष राशि से है अर्थात पाश्चात्य पद्धति के अनुसार चलित कुंडली में लग्न मेष होगा । इस प्रकार सभी ग्रहों की स्थिति पाश्चात्य पद्धति के लग्न में लगभग 15^0 बदल जाती है।

बोध प्रश्न : -

1.षष्ठांश का शाब्दिक अर्थ है –

क. साठवॉ हिस्सा ख. षष्ठ ग. छठॉ हिस्सा घ. कोई नहीं

2. केन्द्र से बोध होता है –

क. 1,4,7,10 ख. 2,5,8,11 ग. 3,6,9,12 घ. 1,4,8,12

3. चतुर्थ लग्न में से लग्न को घटाकर उसे छः भाग देने पर .... होता है।

क. सप्तमांश ख. नवमांश ग. षष्ठांश घ. द्वादशांश

4. भावों की संख्या कितनी है।

क. 10 ख. 12 ग. 8 घ. 9

5. 30^0 = ?

क. 1 राशि ख. 2 राशि ग. 3 राशि घ. 4 राशि

महर्षि पराशर ने एक राशि को 16 प्रकार के मापकों पर विभाजित किया है। इन सभी वर्गों को मिला कर ‘षोडश वर्ग’ की संज्ञा दी गयी है। इन वर्गों में सबसे बड़ा वर्ग स्वयं जन्म, या राशि (30 अंश) को माना गया है तथा **सबसे छोटा वर्ग षष्टयंश**, या साठवां भाग (30 कला) होता है। इन वर्गों को अंग्रेजी में ‘डिवीजन्स’ कहा जाता है। वर्ग कुंडली बनाने के लिए प्रत्येक वर्ग, या खंड को एक राशि मान लिया जाता है। इस प्रकार जन्म, या ग्रह वर्ग में एक राशि 30 अंश की मानी जाती है, तो षष्ट्यंश में 30 कला की एक राशि मानी जाती है; अर्थात् एक राशि के 60वें भाग को एक राशि मान लिया जाता है। इस गणना के अनुसार राशि को जितने वर्गों में बांटा जाता है, उतनी ही गुनी राशियां मानी जाती हैं; अर्थात् 12 राशियों की उतनी ही बार आवृत्ति मानी जाती है, जैसे नवांश वर्ग में 12×9 = 108 रशियां, षष्ठांश में 12×60 =720 राशियां (60 आवृतियां) वर्गों में ग्रह की स्थिति से ग्रह का बलाबल जाना जा सकता है। जन्मपत्री बनाने से यह पता चल जाता है कि जातक के जन्म लेने के समय कौन सा ग्रह किस स्थिति में था। ग्रहों की स्थिति के पश्चात उनके बलाबल का ज्ञान प्राप्त करते हैं, क्योंकि ग्रहों के बलाबल के आधार पर ही उनके द्वारा देय फल कि स्थिति से अवगत हो सकते हैं। ग्रहों के बल को जानने के लिए ही षोडश वर्ग साधन किये जाते हैं। वर्ग साधन के पश्चात ग्रह की शक्ति, उसके प्रभाव और उसकी कारकता को जान लेते हैं। एक ग्रह जितने अधिक से अधिक वर्गों में अपनी उच्च/मूल त्रिकोण/ स्व/ मित्र राशि में होगा, वह उतना ही शुभ और बली माना जाता है। इसके विपरीत अधिक से अधिक शत्रु नीच/क्रूर राशि वर्गो में स्थित ग्रह अशुभ और निर्बल माना जाता है। महर्षि पराशर के अनुसार राशि के वर्ग विभाजन का एक और प्रमुख उद्देश्य है। विभिन्न वर्ग, मानव जीवन के अलग-अलग पक्षों के अध्ययन हेतु, प्रभावी उपकरण हैं, जैसे यदि स्वयं के सुख का अध्ययन करना हो, तो जन्मकुंडली के जन्म लग्न से विचार करना चाहिए। यदि संपत्ति, पृथ्वी, जमीन, मकान आदि अचल तथा सोना चांदी, रुपया आदि चल संपत्ति का विचार करना है, तो, जन्मकुंडली के साथ-साथ, होरा लग्न का अध्ययन भी आवश्यक है। होरायां वै संपदादिकम्।।

उसी प्रकार भाई-बंधु, भगिनी के सुख-दुःख का अध्ययन, विचार करना हो, तो, जन्मकुंडली के साथ-साथ, द्रेष्काण वर्ग का अध्ययन भी आवश्यक है। ॥ द्रेष्काणे भ्रातृजं बंधु सौख्यं विचिन्त्यम्॥ चतुर्थांश से भाग्य एवं शिक्षा का अध्ययन करना चाहिए ॥ तूर्यासे भाग्य चिंतनम्॥ यदि पुत्र-पौत्र आदि परिवार का विचार करना हो, तो, जन्मकुंडली के साथ-साथ, सप्तमांश कुंडली का भी अध्ययन आवश्यक है। ॥ स्यात्सप्तांशे संतति पुत्रपौत्री॥ नवमांश से स्त्री का आचरण, स्वभाव, चेष्टा एवं प्रकृति देखे जाते हैं॥ जातक ग्रंथों के अनुसार ''नूनं नवांशे तु कलत्र सौख्यम्॥'' नवांश से कलत्र (पत्नी) सुख का पूरा पता चलता है। नवांश का महत्व सुनार की कसौटी की भांति है। सुनार कसौटी पर कस कर सुवर्ण के खरेपन की जांच करता है। दैवज्ञ नवांशगत ग्रह स्थिति का गंभीर अध्ययन कर के ग्रहों के वास्तविक बलाबल एवं कुंडली की शक्ति का ज्ञान करता है। कोई भी शुभाशुभ योग, जन्मकुंडली की अपेक्षा, नवांश कुंडली में शुभ होने पर अधिक शुभ, अशुभ होने पर अधिक अशुभ कहा जाएगा। कोई भी योग्य ज्योतिषी ग्रह फल निर्णय के समय नवांश की उपेक्षा नहीं कर सकता। ध्यान रहे, अत्यंत प्रबल राजयोग भी अशक्त, या निष्फल हो जाता है, यदि वह योगकारक ग्रह नवांश में नीचादि दोषयुक्त हो। इसके विपरीत यदि मुख्य लग्न कुंडली कुछ दोषयुक्त भी हो, किंतु दोषजनक ग्रह नवांश कुंडली में सुधरा हो, तो मुख्य कुंडली बहुत बल पा जाती है। नवांश कुंडली तो वास्तव में जन्मकुंडली का मेरुदंड है। यदि नवांश कुंडली में, नीचांश के कारण, ग्रह निर्बल हों, तो वह व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता, भले ही जन्मकुंडली में ग्रह प्रबल हों। बहुधा देखनें में आता है कि किसी व्यक्ति की कुंडली में विशिष्ट राजयोग पड़ा हुआ है, परंतु उसका जीवन गिरी हुई हालत में ही गुजरता है। ऐसे ही किसी की कुंडली में अधिसंख्य ग्रह, या विशिष्ट ग्रह नीच के हैं, परंतु देखने में वे महाभाग्यवान हैं। इसका कारण नवांशगत ग्रहों की परिस्थिति है, क्योंकि फलादेश कथन में नवांश कुंडली और वर्गोत्तम का भी ग्रह भाव में विशेष महत्व है। नवांश कुंडली के बिना फलादेश करना लंगड़े की दौड़ के समान ही है, क्योंकि विशेष विचारों में जन्मकुंडली से भी अधिक महत्व नवांश कुंडली का होता है। स्वोच्चे नीचांश के दुःखी नीये स्वोच्चांश के सुखी। स्वांशे वर्गोत्तमे भोगी राजयोगी भविष्यति।'' जैसे जन्मकुंडली में कोई ग्रह अपनी उच्च राशि का है और वही ग्रह नवांश कुंडली में नीच राशिगत है, तो उसकी राशिगत उच्चता निरर्थक है। नवांश की स्थिति को देखते हुए वह ग्रह नीच ही समझा जाएगा। इसके विपरीत यदि कोई ग्रह जन्मकुंडली में नीचस्थ है और वही ग्रह नवांश कुंडली में उच्च का है, तो उसका नीचत्व भंग हो जाता है। वह ग्रह उच्च सदृश फलप्रद रहेगा। कोई भी ग्रह जन्मकुंडली के बुरे से बुरे स्थान में बैठा हो, किंतु वह यदि अपनी उच्च राशि के नवांश में, या अपनी स्वराशि के नवांश में है, तो वह जागरूक होता है तथा उत्तम फल देता है। मित्र ग्रह का राशि के नवांश में होने पर वह स्वप्नावस्था में होता है और मध्यम फल देता है। यदि ग्रह अपनी नीच राशि के नवमांश में, अथवा शत्रु राशि के नवमांश में होता है, तो वह सुप्त होता है और अशुभ फल देता है। इसलिए फलादेश करते समय, जन्म लग्न के साथ-साथ, नवमांश पर विचार करना आवश्यक है। चंद्र और गुरु का वर्गोत्तम होना राजयोगप्रद है। शुक्र भी, वर्गोत्तमी हो कर, शुभ और

उत्तम भाग्य योग बनाता है। लग्न का वर्गोत्तमी होना विशेष लाभप्रद है। वर्गोत्तम लग्नगत चंद्र, या स्वनवांश गत चंद्रमा को शुभ सौभाग्यप्रद कहा गया है। शुभ ग्रह किंवा पाप ग्रह भी वर्गोत्तम स्थिति में शुभ फलप्रद ही सिद्ध होता है। वर्गोत्तम लग्नेश यदि वक्री हो, साथ ही आत्मकारक ग्रह के साथ हो, तो उसे अधिक बलशाली एवं श्रेयस्कर समझना चाहिए। इस प्रकार, ग्रह स्थिति को दृष्टि में रखते हुए, भविष्य कथन में आश्चर्यजनक रूप से सफलता मिलती है। यह अनुभूत है। यस्य क्षेत्रस्य यो भागो वत्यंशस्तद् बलान्मतः। अवलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः ।। जिस राशि का जो नवांश है, वह उस राशि के बल से अधिक बली होता है। राशि की दुर्बलता से नवांश भी तदनुरूप निर्बल होता है। यदि राशि मध्यम बली हो, तो नवांश भी मध्यम बली होता है। इस बात का फलादेश में सर्वत्र ध्यान रखना चाहिए। नवांशे नाथे स्वलवे स्वमादौ शुभ क्षित्राढये शुभ योग हीने प्राप्नोति राममतुलाम वश्यं नरो बिनायासमपाप रूपाम्।। नवांशेष अपने नवांश में हो, अथवा अपनी स्वराशि उच्च द्रेष्काणादि में हो, शुभ ग्रहों से युक्त हो, अशुभ संबंध से रहित हो, तो पुरुष अतुल गुणवती, उत्तम स्वभाव वाली, सुंदर स्त्री को, बिना परिश्रम के ही, प्राप्त करता है। केंद्रे तर्दाशेऽष्टि समान्तरिष्ट त्रिकोणगे तत्वमिते विवाहः। नवांश लग्ने खल खेट युक्ते जाया लवे वा न विवाह सौख्यम।। इस प्रकार दांपत्य जीवन के संबंध में केवल जन्मकुंडली (बिना नवांश कुंडली) से लिया गया निर्णय अपूर्ण ही माना जाता है। सम्मान, यश और प्रसिद्धि, कोई बड़ी समस्या, जिसका अपने जीवन से संबंध संभव हो, इनका विचार 'दशमांश' कुंडली से करना चाहिए। द्वादशांश कुंडली से माता-पिता की स्थिति तथा सुख, दुःख का विचार करना चाहिए। ।। स्याद् द्वादशांशे पितृमातृसौख्यम्।। इसी प्रकार यदि सुख-दुख का तथा गाड़ी, मोटर आदि वाहन का विचार करना हो, तो 'षोडशांश' कुंडली से विचार करना चाहिए। जातक ग्रंथों के अनुसार: ।। सुखाऽसुखस्य विज्ञानं वाहनानां विचिन्त्यम्।। विशांश कुंडली से उपासना की सिद्धि-असिद्धि का विचार करना चाहिए। ।। उपासनाय विज्ञानं साध्यं विंशति भाग के विचिन्त्यम्''।। इसी प्रकार यदि विद्या की प्राप्ति-अप्राप्ति का विचार करना हो, तो चतुर्विंशांश कुंडली से करना चाहिए। सप्तविंशांश से अपने बलाबल का विचार तथा त्रिशांश कुंडली से अरिष्ट (कष्ट, रोग) आदि का विचार करना चाहिए। खवेशांश में भले, बुरे, शुभ, अशुभ का विचार करना चाहिए। ''अक्षवेदांश' तथा 'षष्ठयांश' में संपूर्ण समस्याओं का विचार करना चाहिए। संक्षेप में महर्षि पराशर के अनुसार विभिन्न वर्गों के अध्ययन का उद्देश्य निम्नानुसार है: वर्ग सं. नाम वर्ग उद्देश्य 1. जन्म गृह देह, या स्वयं 2. होरा संपदा, बृद्धि 3 द्रेष्काण भाई-भगिनी सुख 4. चतुर्थांश भाग्य एवं शिक्षा 5. सप्तांश पुत्र-पौत्रादि 6. नवांश कलत्र सुख (दांपत्य जीवन) 7. दशमांश राज्य एवं व्यवसाय 8. द्वादशांश मनोकांक्षा और वाहन सुख 9. षोडशांश मनोकांक्षा और वाहन सुख 10. विंशांश वैज्ञानिक उपलब्धियां 11 चतुर्थ विंशांश शैक्षिक उपलब्धियां 12. भांश (सप्त विंशांश) शक्ति एवं दुर्भाग्य 13. त्रिशांश अरिष्ट एवं स्त्री चरित्र 14. स्वदेदांश शुभाशुभ परिणाम 15. अक्षवेद्श मिश्रित फल 16 षष्ट्यंश व्यवसाय में शुभाशुभता उपर्युक्त सभी षोडश वर्गों का साधन तथा इनके आधार पर फलादेश करना कष्टसाध्य है। इसलिए, महर्षि पराशर सहित, प्राचीन ज्योतिर्विदों ने महत्व के आधार पर

षड्वर्ग, सप्तवर्ग, या अधिक से अधिक दशवर्ग में फलादेश करना ही उचित तथा पर्याप्त माना है। षड वर्ग: षडवर्ग के अंतर्गत जन्म ग्रह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश सम्मिलित किये जाते हैं। सप्त वर्ग: षडवर्ग में सप्तांश वर्ग सम्मिलित करने से सप्तवर्ग बन जाते हैं। दश वर्ग: सप्तवर्ग में दशमांश, षोडशांश और षष्ठयांश सम्मिलित करने पर दशवर्ग बन जाते हैं। सामान्यतः वर्ग साधनरहित जन्मकुंडली को 'जन्माक्षर' कहा जाता है। परंतु उपर्युक्त वर्गों सहित जन्मपत्री को, वर्ग संख्यानुसार, सप्तवर्गीय, या दशवर्गीय जन्मपत्री कहा जाता है। ज्योतिष विद्वान पराशर की 16 वर्ग कुंडलियों की व्यवस्था मे एक वर्ग कुंडली दशमांश है। यह राशि के दसवें भाग के विभाजन के आधार पर निर्धारित की गयी है। जिस प्रकार राशि चक्र में दशम भाव को कर्म क्षेत्र, ख्याति एवं व्यवसाय का भाव माना गया है, उसी प्रकार दशमांश कुंडली पूर्ण रूप से जीवन के कर्मक्षेत्र, ख्याति आदि का प्रतिनिधित्व करती है। यह एक महत्वपूर्ण वर्ग कुंडली है। सभी यह जानने की जिज्ञासा रखते हैं कि भविष्य में समाज में उसका स्तर क्या होगा? एक जातक को अपने कर्म एवं प्रयासों द्वारा प्राप्त व्यक्तिगत उपलब्धियों को एवं अपनी मेहनत से प्राप्त जीवन स्तर, आय, पदोन्नति, पदावनति को दशमांश कुंडली दर्शाती है। यदि जन्मकुंडली में दशम भाव में प्रभुत्वशाली स्थिति हो और, दशमांश कुंडली एवं एकादशांश कुंडली के साथ-साथ, नवांश में भी स्थिति श्रेष्ठ हो, तो ऐसा जातक संबंधित ग्रह की दशा, अंतर्दशा में सफलता के शिखर को छूता है। एकादशांश भाग्य से प्राप्त सफलता श्रेष्ठता को दर्शाती है। 60 के दशक के विद्वान शेषाद्रि अय्यर ने वर्ग कुंडलियों पर अनेक शोध किये थे। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित एवं अपने शोध के आधार पर उन्होंने, कुंडलियों के फल कथन हेतु, अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये, जिनमें प्रमुख 10 नियम निम्न लिखित हैं: - नैसर्गिक शुभ ग्रह (गुरु, शुक्र, बुध एवं चंद्रमा) 12, 1, 2 भाव में हों, तो शुभ फल देते हैं। नैसर्गिक पापी ग्रह (शनि, मंगल, सूर्य, राहु और केतु) अशुभ फलदायक होते हैं। - वर्ग कुंडली में ग्रहों का राशि परिवर्तन अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। योगकारक ग्रह वर्ग कुंडली में जीवन भर शुभ फल देते हैं, विशेषकर अपनी महादशा एवं अंतर्दशा में। वर्ग कुंडली के लग्न को जितने ज्यादा ग्रह देखते हैं, उतना ही जीवन का संबंधित पक्ष सफल एवं शुभ फलदायक होता है, जैसे किसी की नवांश कुंडली के लग्न को ज्यादा ग्रह देखते हों (या अन्य प्रकार से प्रभावित करते हों) तो उतना ही उसका वैवाहिक जीवन सफल होगा। - वर्ग कुंडली में लग्न एवं चंद्रमा दोनों को समान महत्व दे कर अध्ययन किया जाना चाहिए। - यदि राशि कुंडली एवं वर्ग कुंडली में कोई ग्रह - लग्न एक ही हो, तो जीवन के उस पक्ष विशेष के लिए उस ग्रह/लग्न को वर्गोत्तम माना जाना चाहिए। - वक्री ग्रह को सब वर्ग कुंडलियों में पिछले भाव में स्थित मान कर भी अध्ययन करना चाहिए। - किसी भी वर्ग कुंडली में मंगल छठे भाव में श्रेष्ठ फल देता है, क्योंकि यह लग्न पर दृष्टि डालता है। - भाव के स्वामी के संबंध में केवल लग्नेश का ही विचार किया जाता है। - वर्ग कुंडली का अध्ययन सदैव लग्न कुंडली के साथ ही करना चाहिए। जीवन के पक्ष विशेष के लिए वर्ग कुंडली लग्न कुंडली से आगे है। - डी-10 (दशमांश वर्ग कुंडली) में भावों का फल कथन निम्न लिखित विचारों के अनुसार किया जाता है, ऐसा विद्वानों का मत है: डी-10

(दशमांश) की लग्न राशि एवं दशम भाव की राशि को कार्य राशि कहा गया है। दशमांश वर्ग कुंडली में लग्न के बाद दशम भाव को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें स्थित ग्रह अपनी दशा में राजयोग देते हैं। द्वितीय भाव अर्थ भाव है। इससे षष्ठ एवं दशम भाव त्रिकोण में हैं। षष्ठ भाव नौकरी का एवं दशम भाव राजयोग/ ख्याति का माना गया है। अष्टम भाव को सेवा निवृत्ति/पैतृक धन का भाव कहा गया है। तृतीय भाव आसपास के स्थानांतरण एवं द्वादश भाव लंबी दूरी के स्थानांतरण का माना गया है। नवम भाव उच्च अधिकारी एवं पंचम भाव अधीनस्थ लोगों का माना गया है। केंद्र एवं त्रिकोण शुभ स्थान माने जाते हैं। उदाहरण: अब, विषय को और स्पष्ट करने हेतु, वास्तविक जीवन की जन्मकुंडलियों की चर्चा करेंगे। ये कुंडलियां भारत के पूर्व प्रधानमंत्रियों की हैं। उदाहरण 1: पंडित जवाहर लाल नेहरु जन्म दिनांक: 14-11-1889 जन्म समय: 11: 30 सायं (एल. एम. टी) जन्म स्थान: इलाहाबाद 1947 में, देश की स्वतंत्रता के बाद, यह भारत के प्रधानमंत्री बने और आजीवन प्रधानमंत्री रहे। इनके जीवन में मंगल की महादशा जून 1946 से आरंभ हुई थी। दशमांश में मंगल दशम भाव में दिग्बली एवं लग्नेश है। लग्न कुंडली में भी वह दशम भाव को देख रहा है। राहु दशमांश में द्वादश भाव में तुला राशि में है। किंतु इसका स्वामी शुक्र, द्वितीय भाव में स्थित हो कर, सप्तम भाव में स्थित गुरु से राशि परिवर्तन कर रहा है। इस राशि परिवर्तन से गुरु शुक्र का फल दे रहा है। यह गुरु लग्न को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। लग्न कुंडली में भी राहु बुध की राशि में है एवं बुध, चतुर्थ भाव में बैठ कर, दशम भाव पर दृष्टि डाल रहा है। इस प्रकार लग्न एवं दशमांश दोनों चक्रों में लगभग सभी ग्रहों का प्रभाव होने से वह अति लोकप्रिय नेता रहे। उदाहरण 2: श्रीमती इंदिरा गांधी जन्म दिनांक: 19-11-1917 जन्म समय: 11:11 रात्रि जन्म स्थान: इलाहाबाद प्रधानमंत्रित्व काल: 22-1-1966 से 24-3-1977 तथा 14-1-1980 से 31-10-1984 तक गुरु की महादशा नवंबर 1954 से नवंबर 1970 तक तथा शनि की महादशा नवंबर 1970 से नवंबर 1989 तक रही थी। गुरु, वक्री होने के कारण, अपने पिछले घर में स्थापित माना जाएगा। दशमांश में गुरु, लग्नेश हो कर, लग्न से दशम भाव पर पूर्ण दृष्टि डाल रहा है। दशमांश में शनि, उच्च का हो कर, लग्न पर दृष्टि डाल रहा है। दशमांश की उपर्युक्त बली स्थिति के कारण ये भारत की शक्तिशाली नेता एवं प्रधानमंत्री, गुरु और शनि की महादशा में, रहीं। इस प्रकार देखते हैं कि मानव के कर्मक्षेत्र/व्यवसाय से संबंधित आकलन के लिए, राशि चक्र के साथ-साथ, दशमांश चक्र का भी सूक्ष्म अध्ययन किया जाना चाहिए। जीवन में कर्म क्षेत्र में उन्नति /अवनति एवं राजयोग का दशमांश कुंडली प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार वैवाहिक जीवन के सुख/दुःख, सफलता, विफलता एवं समय आदि का नवांश कुंडली पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करती है। अतः इसका, राशि कुंडली के साथ-साथ, वैवाहिक पक्ष के आकलन हेतु, गंभीरता से अध्ययन किया जाना चाहिए। वैसे भी वर्ग कुंडलियों में डी-9 सबसे महत्वपूर्ण कुंडली है। इस प्रकार पाते हैं कि जीवन के विभिन्न प्रक्षों के सूक्ष्म अध्ययन के लिए संबंधित वर्ग कुंडली का विशेष महत्व है। पराशर द्वारा स्थपित 16 वर्गों के बाद जोड़ी गयी 4 वर्ग कुंडलियां इस क्रम में विशेष विचारणीय हैं। केवल राशि कुंडली से भावी संभावनाओं के सही आकलन में पूर्ण सफल नहीं हो

सकते। जीवन में अनेक बार अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव एवं उथलपुथल आता है। इसके पूर्वानुमान के लिए एकादशेश (डी-11) का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। महर्षियों ने जब इन नियमों की रचना की थी, उस समय संभवतया अपना भविष्य जानने की इतनी जल्दी किसी को न थी, जितनी आज है। उस समय, जन्मकुंडली निर्माण के साथ-साथ, अन्य विभिन्न वर्गों की गणना की जाती थी, जो बहुत ही मेहनत का कार्य था। उस गणना के आधार पर फल कथन किया जाता था। उन्हें अपना भविष्य के लिए ज्योतिषी की सलाह लेनी पड़ती थी और इसी कारण ज्योतिषी को राज्य का आश्रय प्राप्त था। आज परिस्थितियां बदल चुकी हैं। आज अमीरों की संख्या असंख्य है तथा उन्हें हर पल अपने भविष्य को बेहतर बनाने की फिक्र लगी रहती है। संभवतया इसी कारण ज्योतिषियों का कार्य भी काफी बढ़ गया है तथा उन्हें राज्य के आश्रय की आवश्यकता भी नहीं है। ज्यो-ज्यों अमीरो की संख्या बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों ज्योतिषियों के पास भीड़ बढ़ती जाएगी। कारण स्पष्ट है। धन की बढ़ती इच्छा मनुष्य को लगातार असुरक्षित करती जा रही है। ज्योतिष कार्य में वृद्धि के कारण इस विद्या ने भी आधुनिक विज्ञान की देन कंप्यूटर का सहारा लिया और बहुत ही कठिन गणनाएं, बिना दिमाग पर जोर डाले, कंप्यूटर से तैयार होकर, प्रिंटर से छपकर, साफ और स्पष्ट तरीके से सामने आने लगीं। आज स्थिति यह है कि ज्योतिष के गणित भाग को सीखने की आवश्यकता नहीं रह गयी है। इस प्रकार उस बचे हुए समय का सदुपयोग यदि विद्वान करना चाहें, तो, फलित ज्योतिष में वर्गों का सही उपयोग करे तो, सटीक फलकथन किया जा सकता है। परंतु परेशानी यह भी है कि जितनी जल्दी भविष्य जानने वाले को होती है, उससे भी अधिक जल्दी भविष्य बताने वालों की होती है। केवल लग्न कुंडली दिखा कर भविष्य पूछना तथा केवल लग्न कुंडली के आधार पर ही फलादेश करना दोनों पक्षों के लिए विवशता सी बन चुकी है, जबकि वास्तविकता यह है कि यदि अधूरा कार्य करेंगे, तो उसका परिणाम भी अधूरा ही मिलेगा। अतः कुछ धैर्य धारण कर के वर्गों का सही उपयोग अवश्य करना चाहिए, ताकि फल कथन में अधिक सत्यता आए और इस शास्त्र पर सबका विश्वास बना रहे। एक शब्द और कहना चाहेंगे कि जिस प्रकार षोडश ऋृंगार से युक्त, भरपूर यौवन को प्राप्त षोडशी पत्नी का पति के बिना किसी मूल्यांकन की कोई सार्थकता नहीं रह जाती, ठीक उसी प्रकार से षोडश वर्ग के अलंकार से युक्त जन्मपत्रिका की, चलित चक्र के बिना, कोई सार्थकता नहीं रह पाती। बिना चलित चक्रेण, यथोक्तं भावजं फलम् । नारियौवन सम्प्राप्तं,पतिहीना यथा भवेत।। भाव की पुष्टि से ही फलादेश की ओर प्रवृत्त होना चाहिए। जिस भाव के अंश पूर्ण हों, तो पूर्ण फलादेश उस भाव को मिलेगा। भाव के विराम होने पर, या ह्रास होने पर उस भाव का फल भी नष्ट हो जाता है, ऐसा ज्ञानी जनों ने कहा है। भाव प्रकृतौ हि फलप्रकृतिः पूर्ण फलैं भाव समाशकेषु ह्रासः क्रमादभाव विराम काले, फलस्य नाशः कथितो मुनिन्द्रौं:।।

धनादि भाव साधन में षष्ठांश

लग्न को चतुर्थ भाव में घटाने से जो शेषांक हो, उनमें छ: का भाग दे अर्थात् लग्न व चतुर्थ के अन्तर का षष्ठांश ग्रहण करें । वह षष्ठांश राश्यादि लग्न में जोड़ दे तो लग्न की विराम संधि और धन भाव

की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने से धन भाव स्फुट होता है। धन भाव में षष्ठांश जोड़ देने से धन भाव की विराम संधि और तृतीय भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने पर तृतीय भाव होता है, फिर तृतीय भाव में षष्ठांश युक्त करने पर तृतीय भाव की विराम संधि और चतुर्थ भाव की आंरभ संधि होती है ओर तृतीय भाव संधि में एक जोड़ दे तो वह चतुर्थ भाव की विराम संधि होती है। तृतीय भाव में जोड़ देने से पंचम भाव स्फुट होता है। द्वितीय भाव की संधि में तीन जोड़नेसे पंचम भाव संधि होती है , धन भाव में चार युक्त करने से छठा भाग होता है। लग्न की संधि में पॉच युक्त करने पर रिपु भाव अर्थात् षष्ठ भाव की संधि होती है। संधि सहित लग्नादिक भावों में छ: - छ: राशि संयुक्त करने से सप्तम आदिक सब भाव सन्धि सहित होते है।

3.5 सारांश

जन्मकुण्डली निर्माण में लग्न और दशम लग्न के पश्चात् भाव साधन में षष्ठांश की आवश्यकता होती है। षष्ठांश ज्ञान के बिना आप सन्धि सहित द्वादश भाव को नहीं समझ सकते। लग्न और चतुर्थ का अन्तर षष्ठांश होता है। अत: षष्ठांश के लिये लग्न और चतुर्थ का ज्ञान होना आवश्यक है। इससे पूर्व के इकाईयों में आप लग्न और चतुर्थ से परिचित हो चुके है। इस इकाई में इन दोनों के आधार पर षष्ठांश का ज्ञान कराया गया है। षष्ठांश ज्ञान की विधि को स्पष्टतया समझाना ही इस इकाई का प्रथम उद्देश्य है। आशा है पाठक गण इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् षष्ठांश ज्ञान एवं उसका साधन विधि को भली – भॉति समझ सकेगें।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली -

षष्ठ – छ:

अंश - भाग या हिस्सा

केन्द्र – 1,4,7,10

पणफर – 2,5,8,11

त्रिकोण - 5,9

त्रिषडाय – 3,6,11

आर्ष वचन - ऋषि वचन

उपरान्त – बाद में

निरयण – अयन रहित

पाश्चात्य - पश्चिम

निष्क्रिय – उदासीन

बोध प्रश्नों के उत्तर -

1. ग
2. क
3. ग
4. ख
5. क

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र – रंजन पब्लिकेशन्स
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर – चौखम्भा प्रकाशन , वाराणसी
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
5. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

3.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. षष्ठांश से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. भावों में षष्ठांश की क्या आवश्यकता होती है।
3. षष्ठांश ज्ञान विधि का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिये।

इकाई - 4 ससन्धि भाव साधन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भाव परिचय

4.3.1 ससन्धि भाव साधन

4.3.2 द्वादश भाव साधन

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चतुर्थ खण्ड की चतुर्थ इकाई **'ससन्धि भाव साधन'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पलभा, चरखण्ड एवं अयनांश, षष्ठांश का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहाँ ससन्धि भाव की चर्चा करते है और साथ ही उसकी निर्माण विधि भी प्रस्तुत करते है। भावों की संख्या 12 है। द्वादश भाव की सन्धि सहित साधन **'ससन्धि द्वादश भाव'** कहलाता है। कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में लग्न एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, लग्न के आधार पर ही हम जातक का फलादेशादि कर्तव्य कर पाते है। इस इकाई में ससन्धि द्वादश भाव का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

4.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **ज्योतिषशास्त्रोक्त ससन्धि भाव साधन** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- भाव क्या है।
- द्वादश भाव का साधन कैसे होता है।
- सन्धि क्या है।
- ससन्धि द्वादश भाव का साधन किस प्रकार किया जाता है ।
- ससन्धि द्वादश भाव का महत्व क्या है ।

4.3 द्वादश भाव परिचय

जन्मकुण्डली में बनने वाले कोष्ठकों को 'भाव' कहा जाता है। कुण्डली में बारह कोष्ठक अर्थात् भाव होते हैं। इन कोष्ठकों को भाव, भवन, स्थान तो कहते ही हैं, साथ ही इनसे विचार करने वाले विषयों के नाम पर भी इनका नामकरण कर दिया जाता है। जैसे प्रथम भाव को लग्न, तनु, उदय या जन्म, द्वित्तीय भाव को धन, कुटुम्ब या कोश, तीसरे भाव को सहज, पराक्रम,चतुर्थ भाव को सुख, पंचम भाव को विद्या या सुत भाव, षष्ठ भाव को रिपु या ऋण भाव, सप्तम भाव को जाया, अष्टम भाव को मृत्यु , नवम भाव को भाग्य , दशम भाव को कर्म भाव , एकादश भाव में आय भाव, द्वादश भाव को व्यय भाव आदि भी कहते हैं।

प्रथम भाव से लेकर द्वादश भाव पर्यन्त द्वादश भाव होते है। भाव के अधिपति ग्रह को भावेश कहते हैं। जब हम आयेश कहेंगे तो ग्यारहवें स्थान पर जो राशि है

उसका स्वामी आयेश होगा। मान लें कि ग्यारहवें स्थान पर सिंह राशि का अधिपति सूर्य है तो यहाँ आयेश का अर्थ सूर्य होगा।

ससन्धि द्वादश भाव –

सषडभे लग्नखे जायातुर्यौ लग्नोनतुर्यत:।
षष्ठांशयुक्तनु: सन्धिरग्रे षष्ठांशयोजनात्॥
त्रय: ससन्धयो भावा षष्ठांशोनैकयुक्सुखात्।
अग्रे त्रय: षडेवं ते भार्धयुक्ता: परेऽपि षट॥
खेटे भावसमे पूर्णं फलं सन्धिसमे तु खम्॥

अन्वय: - प्रथमलग्न = दशमलग्ने , सषट्भे = षड्राशियुक्ते, तदा जायातुर्यौ = सप्तमचतुर्थभावौ भवत:। (अर्थात् लग्नं षड्राशियुक्तं सप्तमभाव:। दशमलग्नं षड्राशियुक्तं तदा चतुर्थभावो भवति।) लग्नोनतुर्यत: = प्रथमलग्नहीनचतुर्थभावात्, षष्टांशयुक् तनु: = लग्नशोधितचतुर्थभावस्य षष्ठांशेन युक्तं लग्नं , तनु: सन्धि = लग्नसन्धि: स्यात्। ततोऽग्रे षष्ठांशयोजनात् ससन्धय: त्रय: = ससन्धिधनसहजसुखभावा: स्यु:। अर्थात् लग्ने षष्ठांशयोजननेन लग्नसन्धि:। लग्नसन्धौ षष्ठांशयोजनेन धनभाव:। धनभावे तत्षष्ठांशयोजनेन धनसन्धि:। धनसन्धौ तत्षष्ठांशयोजननेन सहजभाव:। सहजे षष्ठांशयोजननेन सहजसन्धि:। सहजसन्धौ षष्ठांशयोजनेन सुखभाव:।इति। अथ पंचमादिभावसाधनमुच्यते – षष्ठांशोनैकयुक्सुखात् = षष्ठांश एकराशौ विशोध्य: , शेषं यत्तेन युक् = युक्तं, सुखं = चतुर्थभावो यो भवति तस्मात् , अग्रे = चतुर्थभावात्परे , त्रय: = चतुर्थपंचमषष्ठभावा: भवन्ति। एवं लग्नात् षड्भावा: सिद्धयन्ति। ते = षट् लग्नादिषष्टान्तभावा: , भार्धयुक्ता: = षड्राशियुक्ता:, तदा परे = सप्तमादिद्वादशान्ता: , अपि षट् भावा जाता: । भावसमे = ग्रहे, पूर्ण जातकताजिकोक्तफलं समग्रं भवति । सन्धिसमे खेटे खं = शून्यं फलं भवतीति।

अर्थ – लग्न में छ: राशि जोड़ने से सप्तमभाव होता है। दशम लग्न में छ: राशि जोड़ने से चतुर्थ भाव होता है। अब चतुर्थ भाव में लग्न को घटाकर शेष का षष्ठांश बनाना, उसको लग्न में जोड़ने से लग्न की सन्धि हुई। उसमें फिर षष्ठांश जोड़ने से धन भाव, धन भाव में वही षष्ठांश जोड़ने से धन की सन्धि बनी, फिर उसमें षष्ठांश जोड़ने से सहज भाव बना, फिर उसमें षष्ठांश जोड़ने से सहजसन्धि होगी। फिर षष्ठांश जोड़ने से चतुर्थ भाव हुआ। तनु , धन , सहज ये तीन भाव हुये। चतुर्थ भाव तो ज्ञात ही है।

अब उसी षष्ठांश को एक राशि में घटाकर शेष को चतुर्थभाव में जोड़ा, तो चतुर्थ भाव की सन्धि हुई, फिर उसमें वही शेष को जोड़ा तो पंचम भाव हुआ। फिर उसमें वही शेष को जोड़ा पंचम भाव की सन्धि हुई। फिर उसमें शेष को जोड़ा तो षष्ठभाव हुआ। फिर उसमें वही शेष को जोड़ा, तो षष्ठभाव की सन्धि हुई। षष्ठभाव की सन्धि में उसी को जोड़ा तो सप्तम भाव बना, यहॉ सप्तम तो ज्ञात ही था, इसलिये ये 5।6।7 तीन भाव बने। यहॉ यदि शेष जोड़ने से सप्तम भाव, पूर्वसिद्ध सप्तम के तुल्य हुआ तो ठीक हैं, नहीं तो अशुद्ध समझना चाहिये। तब पुन: जोड़ना चाहिये।

इस प्रकार ये छ: भाव में छ: - छ: राशि जोड़ने से शेष छ: जाया मृत्यु धर्म कर्म आय व्यय ये भाव हो जायेंगे।

उदाहरण –

प्रथमलग्न - 3।27।7।4 इसमें छ: राशि जोड़ा, तो सप्तम भाव 9।27।7।4 हुआ और दशम लग्न 0।24।42।11 में छ: राशि जोड़ा तो चतुर्थ भाव 6।24 ।42।11 हुआ। अब –

3।27।7।4 इस प्रथम लग्न को चतुर्थभाव 6।24।42।11 में घटाया तो शेष बचा 2।27।35।7 इसका

षष्ठांश 0।14।35।51 शेष 1 रहा,

लग्न 3।27। 7 । 4

जोड़ने से लग्न सन्धि 4।11।42।55

फिर षष्ठांशजोड़ने से धन भाव 4।26।18।46

एवं षष्ठांश जोड़ने से धन सन्धि 5।10।54।37

एवं षष्ठांश जोड़ने से सहज भाव 5।25।30।29

षष्ठांश का शेष में अर्धाधिक ग्रहण से फिर षष्ठांश जोड़ने से सहज सन्धि - 6।10।6।20

इसमें फिर षष्ठांश जोड़ने पर सुखभाव - 6।24।42।11

यहॉ यह जोड़ा हुआ चतुर्थभावगणितागत चतुर्थभाव से मिल गया, ठीक है । अब उस षष्ठांश0।14।35।51 को 30 अंश में घटाया शेष 0।15।24।9 यहॉ एक विकला का षडंश ऋण शेष है, अत: चतुर्थ स्थान में एक घट जायेगा। अर्धाधिक नियम से इस षष्ठांश को –

00।15।24।9

06।24।42।11

चतुर्थ भाव में जोड़ा, तो सुख भाव की सन्धि हुई 07।10।06।20

फिर उस शेष को जोड़नें से सुत भाव 07।25।30।28

फिर उस शेष को जोड़ने से सुत सन्धि 08।10।54।37

फिर उस शेष को जोड़ने पर रिपु भाव 08।26।18।46

पुन: उस शेष को जोड़ने पर रिपु सन्धि 09।11।42।55

फिर उस शेष को जोड़ने पर जाया भाव 09।27।7।4

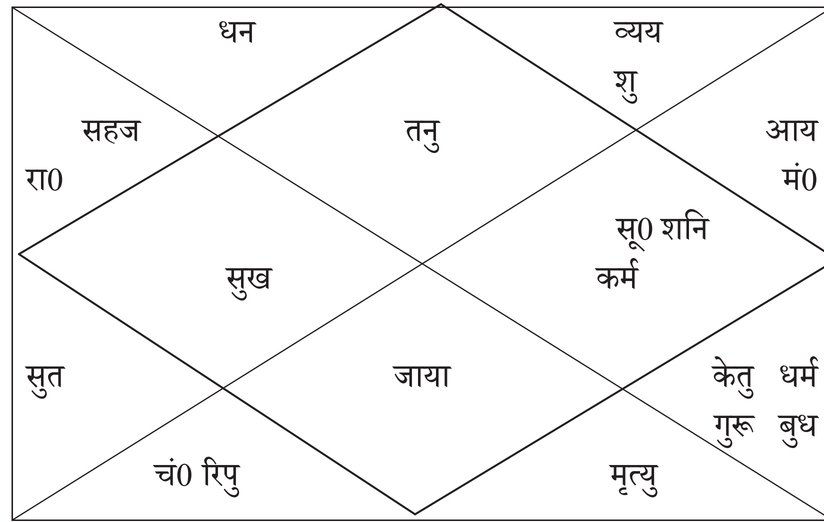
यह सषडभ लग्न के समान हो गया, इसलिये गणित ठीक है। अब इन छ: ससन्धि भावों में छ: छ: जोड़ने पर शेष छ: भाव हो जायेंगे।

निम्नलिखित चक्र में आप अवलोकन कर ससन्धि द्वादश भाव के गणितीय पक्ष को समझ सकते है।

तनु	३	२७	७	४	सन्धि	४	११	४२	५५
धन	४	२६	१८	४६	सन्धि	५	१०	५४	३७
सहज	५	२५	३०	२९	सन्धि	६	१०	६	२०
सुख	६	२४	४२	११	सन्धि	७	१०	६	२०
सुत	७	२५	३०	२८	सन्धि	८	१०	५४	३७

रिपु	८	२६	१८	४६	सन्धि	९	११	४२	५५
जाया	९	२७	७	४	सन्धि	१०	११	४२	५५
मृत्यु	१०	२६	१८	४६	सन्धि	११	१०	५४	३७
धर्म	११	२५	३०	२९	सन्धि	००	१०	६	२०
कर्म	००	२४	४२	११	सन्धि	१	१०	६	२०
आय	०१	२५	३०	२८	सन्धि	२	१०	५४	३७
व्यय	०२	२६	१८	४६	सन्धि	३	११	४२	५५

अथ भावकुण्डली चक्रम् –



भाव कुण्डली में ग्रहनिवेश विचार पहले कुण्डली लिखकर उसमें तनु, धन, सहज,सुख, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय एवं व्यय ये द्वादश भावों के नाम लिखकर विचारना कि कौन ग्रह किस खाने में होगा ? -

यथा सूर्य ००।१२।५७।५० , तो देखिये धर्म भाव की सन्धि ००।१०।६।२० इससे सूर्य अधिक है, और कर्म भाव ००।२४।४२।११ से न्यून है, इसलिये कर्म भाव ही पड़ा । चन्द्रमा ८।५।३९।३३ है यहॉ यह सुत भाव से अधिक , सुतसन्धि से न्यून है इसलिये सुतसन्धि में पड़ा।

अथ मंगल १।२२।१३।५३ है, यह भावचक्र देखने से कर्मसन्धि से आगे आय भाव के अन्दर पड़ा, इसलिये आय भाव में मंगल हुआ।

बुध ११।२३।५९।०९ है, यह मृत्यु के सन्धि से आगे और धर्म भाव के अन्दर पडा इसलिये धर्म भाव में बुध हुआ।

एवं गुरू ००।०२।४९।८ यह धर्म भाव से अधिक, तथा उसकी सन्धि से न्यून है। इसलिये धर्म की सन्धि में पड़ा। शुक्र ०१।२८।१९।१७ है, यह आय भाव से अधिक, आय भाव की सन्धि से न्यून है।

इसलिये आय की सन्धि में शुक्र पड़ा।

शनि ००।१०।५५।१३ है , यह धर्म की सन्धि से अधिक कर्म भाव से न्यून है। इसलिये कर्मभाव में पड़ा।

राहु ०६।००।५।५० है, यह सहज भाव से अधिक, उसकी सन्धि से न्यून है इसलिये सहज सन्धि में लिखा।

केतु ००।००।५।५० , यह धर्मभाव से अधिक , उसकी सन्धि से न्यून है, अत: सन्धि में पड़ा। मुथहा ८।५।३४।१२ है, यह सुत सन्धि में पड़ी।

अथ भावस्थग्रहफल-

खेटे सन्धिद्वयान्त:स्थे फलं तद्भावजं भवेत्।

हीनेऽधिके द्विसन्धिभ्यां भावे पूर्वापरे फलम्॥

अर्थ- आरम्भसन्धि और विराम सन्धि के बीच में ग्रह को रहने से उस भाव का फल देता है। यदि आरम्भ सन्धि से ग्रह कम हो तो पूर्वभाग का फल, या विराम सन्धि से अधिक ग्रह हो तो अगलेभाव में रहने का फल देता है।

उदाहरणार्थ यहॉ ससन्धि भावचक्र में सूर्य ००।१२।५७।५ है। यह आरम्भ सन्धि धर्मभाव की सन्धि ००।१०।१०।०० से अधिक है, और विराम सन्धि कर्मभाव की सन्धि १।१०।१०।०० से न्यून है इसलिये ठीक – ठीक कर्मभाव में रहने का जो फल है उसको देंगे। यहॉ शनि आय की सन्धि से न्यून है इसलिये आय भाव का फल देंगे, ऐसे ही बुध मृत्यु भाव के सन्धि से अधिक है, इसलिये धर्मभाव के फल देंगे ।

लग्न को चतुर्थ भाव में घटाने से जो शेषांक हो, उनमें छ: का भाग दे अर्थात् लग्न व चतुर्थ के अन्तर का षष्ठांश ग्रहण करें। वह षष्ठांश राश्यादि लग्न में जोड़ दे तो लग्न की विराम संधि और धन भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने से धन भाव स्फुट होता है। धन भाव में षष्ठांश जोड़ देने से धन भाव की विराम संधि और तृतीय भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने पर तृतीय भाव होता है, फिर तृतीय भाव में षष्ठांश युक्त करने पर तृतीय भाव की विराम संधि और चतुर्थ भाव की आंरभ संधि होती है ओर तृतीय भाव संधि में एक जोड़ दे तो वह चतुर्थ भाव की विराम संधि होती है। तृतीय भाव में जोड़ देने से पंचम भाव स्फुट होता है। द्वितीय भाव की संधि में तीन जोड़नेसे पंचम भाव संधि होती है , धन भाव में चार युक्त करने से छठा भाग होता है। लग्न की संधि में पॉच युक्त करने पर रिपु भाव अर्थात् षष्ठ भाव की संधि होती है। संधि सहित लग्नादिक भावों में छ: - छ: राशि संयुक्त करने से सप्तम आदिक सब भाव सन्धि सहित होते है।

बोध प्रश्न –

1. जन्मकुण्डली में बनने वाले कोष्ठकों को क्या कहा जाता है –
   क. कुण्डली ख. भाव ग. राशि घ. नक्षत्र

2. भावों की संख्या कितनी है –

क. 12 ख. 14 ग. 16 घ. 18

3. जाया भाव किस भाव को कहते है –

क. पंचम भाव ख. षष्ठ भाव ग. सप्तम भाव घ. अष्टम भाव

4. लग्न में छ: राशि जोड़ने पर होता है-

क. पंचमभाव ख. सप्तम भाव ग. अष्टम भाव घ. नवम भाव

5. जन्मकुण्डली में पंचमभाव को भी कहा जाता है

क. रिपु भाव ख. कर्म भाव ग. आय भाव घ. सुत भाव

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप ने जाना कि - लग्न को चतुर्थ भाव में घटाने से जो शेषांक हो, उनमें छ: का भाग दे अर्थात् लग्न व चतुर्थ के अन्तर का षष्ठांश ग्रहण करें। वह षष्ठांश राश्यादि लग्न में जोड़ दे तो लग्न की विराम संधि और धन भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने से धन भाव स्फुट होता है। धन भाव में षष्ठांश जोड़ देने से धन भाव की विराम संधि और तृतीय भाव की आरंभ संधि होती है। उस संधि में षष्ठांश युक्त करने पर तृतीय भाव होता है, फिर तृतीय भाव में षष्ठांश युक्त करने पर तृतीय भाव की विराम संधि और चतुर्थ भाव की आरंभ संधि होती है ओर तृतीय भाव संधि में एक जोड़ दे तो वह चतुर्थ भाव की विराम संधि होती है। तृतीय भाव में जोड़ देने से पंचम भाव स्फुट होता है। द्वितीय भाव की संधि में तीन जोड़नेसे पंचम भाव संधि होती है , धन भाव में चार युक्त करने से छठा भाग होता है। लग्न की संधि में पॉच युक्त करने पर रिपु भाव अर्थात् षष्ठ भाव की संधि होती है। संधि सहित लग्नादिक भावों में छ: - छ: राशि संयुक्त करने से सप्तम आदिक सब भाव सन्धि सहित होते है। अत: ससन्धिद्वादशभाव का वर्णन स्पष्ट हुआ।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली -

सप्तम – सातवॉ

अधिपति - मालिक

भावेश – भाव के स्वामी

आयेश – आय का स्वामी

षड्राशियुक्त - छ: राशि युक्त

लग्नात् – लग्न से

भार्धयुक्ता: - षड्राशियुक्त

चतुर्थांश - चतुर्थ अंश

शेष – बचा हुआ

खेट – ग्रह

पूर्वभाग – पहले का भाग

धर्मभाव- कुण्डली के नवम भाव

कर्म भाव – कुण्डली का दशम भाव

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1. ख
2. क
3. ग
4. ख
5. घ

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र – रंजन पब्लिकेशन्स
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर – चौखम्भा प्रकाशन , वाराणसी
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
5. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

4.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. सन्धि से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. द्वादश भाव से क्या तात्पर्य है । लिखिये ।
3. ससन्धि द्वादश भाव का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

इकाई – 5 चलित चक्र निर्माण

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चतुर्थ खण्ड की पंचम इकाई **'चलित चक्र निर्माण'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पलभा, चरखण्ड एवं अयनांशादि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ चलित चक्र निर्माण की चर्चा करते है।

जन्मकुण्डली के अनुसार ही चलित चक्र का भी निर्माण होता है। द्वादश भाव साधन के अनुसार हम चलित चक्र में ग्रहों को स्थित करते है।

कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में चलित चक्र एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, ससन्धि द्वादशभाव के आधार पर हम चलित चक्र का निर्माण कर पाते है। इस इकाई में चलितचक्र निर्माण का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **चलित चक्र** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- चलित चक्र क्या है।
- चलित चक्र का साधन कैसे होता है।
- चलित चक्र के प्रकार कितने है।
- कुण्डली में चलित चक्र का क्या उपयोग है ।
- चलित चक्र का गणितीय पक्ष क्या है ।

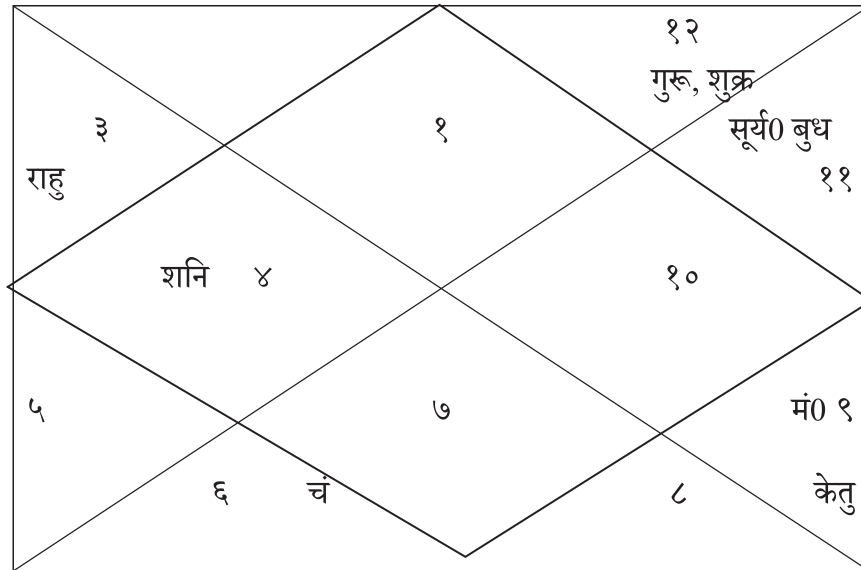
5.3 चलित चक्र परिचय

ससन्धि द्वादश भावों के स्पष्ट राश्यादि व ग्रहों के स्पष्ट राश्यादि की तुलना करके चलित या भाव कुण्डली का निर्माण किया जाता है। लग्न कुण्डली या चन्द्र कुण्डली से हमें यह पता चलता है कि इष्ट समय में ग्रह किस राशि में स्थित है, जबकि चलित कुण्डली से शेष ग्रह की सम्यक् भाव स्थिति का ज्ञान होता है। चलित कहने का तात्पर्य यह है कि – इसमें ग्रहों की स्थिति चल, चलायमान होती है, खिसक सकती है , अत: चलित चक्र कहना सार्थक संज्ञा है।

भाव क्या है ? पूर्व के अध्याय में कहा जा चुका है कि किसी भाव की पिछली सन्धि के राश्यांशों से लेकर अगली सन्धि के राश्यांशों के भीतर यदि ग्रह स्पष्ट पड़ता हो तो उक्त ग्रह उसी भाव में

माना जाता है । जब ग्रहस्पष्ट के राश्यादि सन्धि के राश्यादि के बराबर हो, विशेषतया अंश साम्य हों, कलाओं में समानता हो या न हो, तभी ग्रह सन्धि में माना जाएगा। जब ग्रहस्पष्ट आरम्भ सन्धि से कम हो तो पिछले भाव में तथा विराम सन्धि से अधिक हो तो अगले भाव में लिखा जायेगा।

चलित कुण्डली वास्तव में भाव कुण्डली है, अत: उसमें जन्म लग्नवत् राशि सूचक अंक लिखने के बजाए केवल एक, दो , तीन आदि भाव सूचक रोमन अंक या प्र0 द्वित0तृ आदि भाव सूचक आद्यक्षर लिखना ठीक अधिक रहेगा। ध्यान रखिये, भाव चलित केवल भाव स्थित मात्र का ही द्योतक है, न कि राशि स्थिति का यदि कोई ग्रह चलित में अगली या पिछली सन्धियों के आर – पार भी चला जाए तो उससे ग्रह की राशि स्थिति नहीं बदलती है। हमारे उदाहरण का चलित चक्र निम्नांकित है –



उदाहरणार्थ माना कि यदि सूर्यस्पष्ट 4।27^{0}।50 है। लग्न कुण्डली में वह ग्यारहवें भाव में है। अब भाव स्पष्ट चक्र में देखा कि एकादश भाव 3।28^{0}।58।40 से प्रारम्भ होकर 4।28^{0}।4।00 तक है। सूर्य स्पष्ट उक्त दोनों सन्धियों के मध्य होने से एकादश भाव में ही सूर्य दिखाया गया है इसी प्रकार सब ग्रहों को समझ लेना चाहिये।

भावफल विवेक के नियम –

भाव मध्य किसी भी भाव का शिखर है। उस पर बैठा हुआ ग्रह उस भाव का पूर्ण फल देता है तथा इधर – उधर रहने से उस भावफल में आनुपातिक कमी आ जाती है तथा इधर – उधर रहने से उस भावफल में आनुपातिक कमी आ जाती है । कहा गया है कि सन्धि पर पहुॅच कर ग्रह सर्वथा

फलरहित हो जाता है।अर्थात् सन्धिगत ग्रह किसी भी भाव का फल नहीं देता है। इस बात को याद रखने के लिये निम्नलिखित श्लोक को जानना चाहिये –

ग्रह: सन्धिद्वयान्त: स्थ: दिशेत्तद्भावजं फलम्।
भावांशतुल्ये सम्पूर्णं न्यूनाधिक्येऽनुपातत: ।।
आरम्भसन्धे: क्षीणांश: पूर्वभावे ग्रहो मत: ।
विरामादधिकांशस्तु प्रथतेऽग्रिमभावजम्।।
सन्धेस्तुल्यांशक: खेट: सदा सन्धिगतो भवेत्।
तुल्यत्वं राशिलवयोर्विचार्यं न कलात्मकम्।।
भावाधिपत्यं सर्वत्र भावमध्यानुसारत:।
विभेदत्वे सदा ज्ञेयं राशिचक्राद्यथाक्रमम्।।
भावचक्रे तु ज्ञातव्या खगानां भावसंस्थिति: ।
राशिस्थितिस्तु विज्ञेया जन्मलग्नप्रमाणत:।।
भावानामाधिपत्यं सकलखगभावसंस्थितिं चापि।
ज्ञात्वा विबुधैरेवं भावांगे फलं विनिर्दश्यम् ।।

ग्रह स्पष्ट चक्र लिखते समय यदि अवसर हो तो ग्रहों के नक्षत्र चरण भी लिख देना चाहिय, किन्तु ग्रहों की वक्री मार्गी स्थिति तथा उदयास्त अवश्य लिखना चाहिये।

बोध प्रश्न –

1. चलित से तात्पर्य है –
   क.चलना ख. ग्रहों का चलना ग. खिसकना घ. कोई नहीं
2. चलित कुण्डली को भी कहा जाता है –
   क. चल कुण्डली ख. भाव कुण्डली ग. नवमांश कुण्डली घ. द्रेष्काण कुण्डली
3. चलित कुण्डली के निर्माण का आधार है –
   क. भाव ख. द्वादश भाव ग. ससन्धिद्वादश भाव घ. कोई नहीं
4. खगानां से तात्पर्य है –
   क. खग ख. ग्रहाणां ग. राशिनां घ. नक्षत्राणां
5. चलित कुण्डली में ग्रहों की स्थिति होती है –
   क.चलायमान ख. स्थिर ग. मन्द गति घ. तीव्र गति

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि चलित कहने का तात्पर्य यह है कि – इसमें ग्रहों की स्थिति चल, चलायमान होती है, खिसक सकती है , अत: चलित चक्र में ग्रहों की स्थिति चलायमान होती है।

जब ग्रहस्पष्ट के राश्यादि सन्धि के राश्यादि के बराबर हो, विशेषतया अंश साम्य हों, कलाओं में समानता हो या न हो, तभी ग्रह सन्धि में माना जाएगा। जब ग्रहस्पष्ट आरम्भ सन्धि से कम हो तो पिछले भाव में तथा विराम सन्धि से अधिक हो तो अगले भाव में लिखा जायेगा।

चलित कुण्डली वास्तव में भाव कुण्डली है, अत: उसमें जन्म लग्नवत् राशि सूचक अंक लिखने के बजाए केवल एक, दो , तीन आदि भाव सूचक रोमन अंक या प्र0 द्वित0तृ आदि भाव सूचक आद्यक्षर लिखना ठीक अधिक रहेगा। अत: पाठकगण इस इकाई में चलितचक्रनिर्माण को समझ जायेगें।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली -

निर्माणार्थ – निर्माण के लिये

चलित - ग्रहों की स्थिति चल

राश्यंश – राशि का अंश

लग्नवत् - लग्न के समान

उर्ध्व - उपर

भावफल – भाव का फल

भावांश – भाव का अंश

खेट: - ग्रह

विबुधै: - सुधी जन

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1. ख
2. ख
3. ग
4. ख
5. क

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र – रंजन पब्लिकेशन्स
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर – चौखम्भा प्रकाशन , वाराणसी
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
5. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

5.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा
3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. चलित चक्र से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।

2. चलित चक्र का साधन कीजिये।

खण्ड - 5

दशा साधन

इकाई – 1 नक्षत्र से दशा निर्णय

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई पंचम खण्ड की प्रथम इकाई **'नक्षत्र से दशा निर्णय'** से सम्बिन्धत से है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ससन्धिद्वादश भाव तथा चलितचक्र निर्माणादि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यहॉ नक्षत्र से दशा निर्णय की चर्चा करते है।

ज्योतिष के महत्वपूर्ण आधारों में एक आधार नक्षत्र है। जातक के जीवन में उसकी स्थिति ज्ञानार्थ नक्षत्रों को आधार मानकर गणितीय विधि द्वारा दशा का साधन करते है।

कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में चलित चक्र एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, ससन्धि द्वादशभाव के आधार पर हम चलित चक्र का निर्माण कर पाते है। इस इकाई में चलितचक्र निर्माण का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.2 उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य कुण्डली निर्माण प्रक्रिया में जन्मकुण्डली निर्माणार्थ **नक्षत्र से दशा निर्णय** का बोध कराने से है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगें कि –

- नक्षत्र क्या है।
- नक्षत्र से दशा का साधन कैसे होता है।
- दशा के प्रकार कितने है।
- दशा चक्र का क्या उपयोग है ।
- दशा का गणितीय पक्ष क्या है ।

1.3 नक्षत्र एवं दशा निर्णय

दशा का अर्थ है – स्थिति। ज्योतिष शास्त्र में दशा मुख्यत: तीन प्रकार की कही गई है – एक विंशोत्तरी दशा , दूसरी अष्टोत्तरी दशा तथा तीसरी योगिनी दशा। दशा का ज्ञान नक्षत्रों पर ही आधारित होता है। जन्मकुण्डली में ग्रहों का जो भी शुभाशुभ फल होता है, वह उन ग्रहों की दशान्तर्दशाओं में जातक को प्राप्त होता है। यह एक सामान्य नियम है। दशाओं के अनेक प्रकार प्राचीन जातक शास्त्रों में बताये गए हैं। लेकिन व्यवहार में देखा गया है कि सभी दशाओं में से भी विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी व योगिनी दशाओं का अधिक प्रचार है। इनमें भी विंशोत्तरी दशा सब दशाओं में श्रेष्ठ है।

न क्षरतीति नक्षत्रम् । क्षरति अर्थात् चलति । जो चलता नहीं , जिसमें गति नहीं वो नक्षत्र है। अश्विनी से रेवती पर्यन्त 27 नक्षत्र होते है। भूसापेक्ष नक्षत्रों की गति मानी गई है । नक्षत्र ज्ञान से जन्म नक्षत्र का ज्ञान कर कृत्तिकादि नक्षत्र से गणना करते हुये दशाओं का साधन किया जाता है।

पराशर प्रोक्त सभी दशाओं में नक्षत्र दशा तथा उनमें भी विंशोत्तरी दशा सर्वश्रेष्ठ है। कलौ पाराशरी दशा की प्रसिद्धि के साथ - साथ कलियुग में विंशोत्तरी को ही प्रत्यक्ष फल देने वाली बताया गया है। यथा -

कलौ प्रत्यक्ष फलदा दशा विंशोत्तरी स्मृता।

अष्टोत्तरी न संग्राह्या मारकार्थं विचक्षणैः ।।

साथ ही लघुपाराशरी में स्पष्टतया 'दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता' कहकर विंशोत्तरी दशा को सर्व दशा शिरोमणि बताया है।

नक्षत्र से दशा साधन विधि –

अभिजित् रहित 27 नक्षत्रों में कृत्तिका से जन्म नक्षत्र तक गणना कर लें । तत् संख्या में 9 का भाग दें तो शेष निम्नोक्त क्रम से विंशोत्तरी दशेश होते हैं -

ग्रहा	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरू	शनि	बुध	केतु	शुक्र
दशा वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

अर्थात् 1 शेष बचे तो सूर्य, 2 शेष बचे तो चन्द्रमा, 5 शेष बचे तो गुरू व 0 शेष बचे तो शुक्र की दशा होती है। तत्पश्चात् उक्त क्रम से दशाएँ होती है।

चक्र द्वारा स्पष्ट है कि सूर्य की 6 वर्ष, चन्द्रमा की 10 वर्ष , मंगल की 7 वर्ष, राहु के 18 वर्ष , गुरू के 16 वर्ष, शनि के 19 वर्ष, बुध के 17 वर्ष, केतु के 7 वर्ष तथा शुक्र के 20 वर्ष की दशा होती है। कुल मिलाकर 120 वर्ष की विंशोत्तरी महादशा होती है। जन्म के चन्द्र नक्षत्र स्वामी से यह दशा प्रारम्भ होती है। यथा –

कृत्तिकातस्त्रिरावृत्या दशेशाः स्युः क्रमागताः।

क्रमो ज्ञेयो र चं भौ रा जीवार्किज्ञाः शिखी भृगुः।।

रस दिक्सप्त वस्वेके षोडशैकोनविंशतिः।

बोध्याः सप्तदश सप्त नखाः सूर्यादिवत्सराः।।

स्पष्टार्थ चक्र -

दशेश	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरू	शनि	बुध	केतु	शुक्र
जन्म नक्षत्र	कृत्तिका	रोहिणी	मृग0	आर्द्रा	पुन0	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू0 फा0
जन्म नक्षत्र	उ0फा0	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशा0	अनु0	ज्ये0	मूल0	पू0षा 0
जन्म नक्षत्र	उ0षा0	श्रवण	धनिष्ठा	शत0	पू0भा0	उ0भा0	रेवती	अश्वि नी	भरणी
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

चित्र द्वारा स्पष्ट है कि किस - किस नक्षत्र में किसकी दशा होगी तथा उसकी आयु कितनी होगी।

दशा का भुक्त भोग्य ज्ञान - जन्म नक्षत्र के द्वारा पहली विंशोत्तरी दशा का ज्ञान करके उन दशा वर्षों में से कितने वर्ष जन्म समय भोग्य होंगे, यह त्रैराशिक या अनुपात द्वारा ज्ञात किया जाता है। आप यह अनुपात इच्छानुसार स्पष्ट चन्द्रमा से या भयात भभोग से कर सकते हैं। स्पष्ट चन्द्रमा से साधित दशा भुक्त व भोग्य अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

दशा के प्रचार का क्षेत्र-

प्रायोगिक तौर पर वर्तमान में विंशोत्तरी दशा का प्रचार देश के पूर्वोत्तर भाग, राजस्थान एवं दक्षिण में है। जबकि अष्टोत्तरी दशा का प्रचार प्राय: गुजरात और उत्तराखण्ड में देखा जा रहा है। आजकल तो प्राय: सर्वत्र विंशोत्तरी का प्रचार हो गया है जहॉ अष्टोत्तरी दशा प्रचलित है वहॉ भी विंशोत्तरी का ही प्राधान्य देखा जाने लगा। योगिनी दशा का प्रचलन पर्वतीय क्षेत्, पहाड़ की तराई का क्षेत्र , सिन्ध, पंजाब आदि में अधिक है। आजकल सामान्यत: सर्वत्र इसका प्रचार देखा जा रहा है।

दशा ग्रहण करने के विषय में शास्त्रीय विधान –

1. मानसागरी में उल्लेख मिलता है कि जन्म यदि शुक्लपक्ष में हो तो अष्टोत्तरी दशा ग्रहण करे और यदि कृष्णपक्ष में जन्म हो तो विंशोत्तरी दशा ग्रहण करें ।
2. नक्षत्र के आधार पर विंशोत्तरी दशा ग्रहण करना चाहिये ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।
3. कृष्ण पक्ष में दिन में और शुक्लपक्ष में रात्रि में जन्म हो तो विंशोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिये ओर कृष्णपक्ष की रात तथा शुक्लपक्ष के दिन में जन्म हो तो अष्टोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिये।
4. कुछ विद्वानों का मत है कि गुजरात , पंजाब तथा सिन्धु पर्वत के प्रदेश में अष्टोत्तरी और अन्यत्र विंशोत्तरी दशा ग्राह्य है।

अष्टोत्तरी दशा में नक्षत्र का आरम्भ आर्द्रा से होता है।

बोध प्रश्न : -

1. विंशोत्तरी महादशा में कितने वर्षों की दशाओं की चर्चा है।

क. 20 ख. 40 ग. 60 घ. 120

2. दशा का शाब्दिक अर्थ होता है।

क. आयु ख. स्थिति ग. शुभ घ. दुर्दशा

3. नक्षत्रों की संख्या कितनी है –

क. 25 ख. 26 ग. 27 घ. 28

4. विंशोत्तरी दशा की गणना किस नक्षत्र से आरंभ करते है।

क. कृत्तिका ख. रोहिणी ग. अश्विनी घ. भरणी

5. शनि का दशा वर्ष होता है –

क. 20 ख. 19 ग. 16 घ. 7

6. गुरू की दशा वर्ष होता है –

क. 6 ख. 7 ग. 10 घ. 16

7. बुध की दशा वर्ष होता है –

क. 17 ख. 7 ग. 20 घ. 6

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि दशा का ज्ञान नक्षत्रों पर ही आधारित होता है। जन्मकुण्डली में ग्रहों का जो भी शुभाशुभ फल होता है, वह उन ग्रहों की दशान्तर्दशाओं में जातक को प्राप्त होता है। यह एक सामान्य नियम है। दशाओं के अनेक प्रकार प्राचीन जातक शास्त्रों में बताये गए हैं। लेकिन व्यवहार में देखा गया है कि सभी दशाओं में से भी विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी व योगिनी दशाओं का अधिक प्रचार है। इनमें भी विंशोत्तरी दशा सब दशाओं में श्रेष्ठ है।

न क्षरतीति नक्षत्रम्। क्षरति अर्थात् चलति। जो चलता नहीं , जिसमें गति नहीं वो नक्षत्र है। अश्विनी से रेवती पर्यन्त 27 नक्षत्र होते है। भूसापेक्ष नक्षत्रों की गति मानी गई है । नक्षत्र ज्ञान से जन्म नक्षत्र का ज्ञान कर कृत्तिकादि नक्षत्र से गणना करते हुये दशाओं का साधन किया जाता है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली -

दशा – स्थिति

नक्षत्र - अश्विनी से लेकर रेवती पर्यन्त

विंशोत्तरी – 120 वर्ष की दशा

अष्टोत्तरी – 108 वर्ष की दशा

योगिनी - 36 वर्ष की दशा

भूसापेक्ष – पृथ्वी के सापेक्ष

कृत्तिकादि- कृत्तिका हो आदि में जिसके

गणना – गिनती

प्राचीन - पुराना

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

बोध प्रश्नों के उत्तर -

1. घ
2. ख
3. ग
4. क
5. ख
6. घ
7. क

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष सर्वस्व - डॉ सुरेश चन्द्र मिश्र – रंजन पब्लिकेशन्स
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा - बी0एल0ठाकुर – चौखम्भा प्रकाशन , वाराणसी
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान - पण्डित मीठालाल हिंमतराम ओझा
4. जन्मपत्रव्यवस्था - चौखम्भा प्रकाशन
5. ताजिनीलकण्ठी - नीलकण्ठ दैवज्ञ

1.8 सहायक/उपयोगी पाठयसामग्री

1. ज्योतिष सर्वस्व
2. सचित्र ज्योतिष शिक्षा

3. ताजिकनीलकण्ठ
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान
5. ज्योतिष रहस्य
6. जन्मपत्रव्यवस्था
7. ज्योतिष प्रवेशिका

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. दशा से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।
2. नक्षत्र किसे कहते है। उनके नाम लिखिये ।
3. नक्षत्र से दशा साधन कीजिये ।

इकाई – 2 विंशोत्तरी दशा एवं अन्तर्दशा

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई पंचम खण्ड दशाफल विचार के द्वितीय इकाई '**विंशोत्तरी दशाफल**' शीर्षक से संबंधित है। सामान्यत: जन्म कुण्डली में ग्रहों का जो भी शुभाशुभ फल होता है, वह उन ग्रहों की दशान्तर्दशाओं में जातक को प्राप्त होता है।

दशा का शाब्दिक अर्थ होता है – स्थिति। '**कलौ पाराशरीदशा**' के अनुसार कलियुग में विंशोत्तरी दशा का विशेष महत्व है। अभीष्ट काल में किसी जातक के स्थिति का शुभाशुभ ज्ञान दशा के आधार पर किया जाता है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने लग्न, राशि, नक्षत्र, भाव, ग्रहस्पष्ट, फलादेश कर्म, कारकादि विषयों का विस्तृत अध्ययन कर लिया हैं। यहॉं हम इस इकाई में विंशोत्त्री दशा साधन एवं उसके फलादेश सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. दशा को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. विंशोत्तरी दशा के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. विंशोत्तरी दशा का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. विंशोत्त्री दशा का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. विंशोत्त्री दशा से फलादेशादि को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

2.3 विंशोत्तरी दशा परिचय -

समस्त चराचर प्राणियों के जीवनकाल में उनका कौन सा समय शुभ है, अथवा कौन सा समय अशुभ हैं, इसका विवेक ज्योतिष शास्त्र के उस अभीष्ट कालावधि में प्रचलित दशा व महादशा के आधार पर होता है। जन्माङ्ग चक्र में ग्रहों की जो शुभाशुभ फल की स्थिति होती है, वही फल उन ग्रहों की दशान्तर्दशाओं में जातक को प्राप्त होता है। विंशोत्तरी दशाओं का प्रचलन विन्ध्य से उत्तर दिशाओं के प्रान्तों में है। दशाओं के सम्बन्ध में **आचार्य पराशर ने वृहत्पराशरहोराशास्त्र** के दशाध्याय में प्रतिपादित किया है –

दशा: बहुविधास्तासु मुख्या विंशोत्तरी मता।
कैश्चिदष्टोत्तरी कैश्चित् कथिता षोडशोत्तरी।।

द्वादशाब्दोत्तरी विप्र दशा पञ्चोत्तरी तथा।
दशा शतसमा तद्वत् चतुराशीतिवत्सरा ।।
द्विसप्ततिसमा षष्टिसमा षट्त्रिंशवत्सरा।
नक्षत्राधाररिकाश्चैता: कथिता: पूर्वसूरिभि: ।।

अर्थात् दशा के अनेक भेद है, परन्तु उनमें भी मुख्य दशा **विंशोत्तरीय** दशा है, जो सर्वसाधारण के लिए हितकारी है । अन्य विद्वानों ने अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, पञ्चोत्तरी, शताब्दि, चतुरशीतिसमा, द्विसप्ततिसमा, षष्टिसमा, षट्त्रिंशत्समा आदि ये सभी जन्मनक्षत्राधारित दशाओं की चर्चा की हैं।

एवं च –

अथ कालदशा चक्रदशा प्रोक्ता मुनीश्वरै:।
कालचक्रदशा चाऽन्या मान्या सर्वदशासु या ।।
दशाऽथ चरपर्याया स्थिराख्या च दशा द्विज।
केन्द्राद्या च दशा ज्ञेया कारकादिग्रहोद्भवा ।।
ब्रह्मग्रहाश्रितर्क्षाद्या दशा प्रोक्ता तु केनचित्।
माण्डूकी च दशा नाम तथा शूलदशा स्मृता ।।
योगार्धजदशा विप्र दृग्दशा च तत: परम्।
त्रिकोणाख्या दशा नाम तथा राशिदशा स्मृता ।।
पञ्चस्वरदशा विप्र विज्ञेया योगिनीदशा।
दशा पिण्डी तथांशी च नैसर्गिकदशा तथा ।।

उपर्युक्त प्रसङ्ग के अनुसार दशाओं में कालदशा, चक्रदशा है तथा सभी दशाओं में मान्य कालचक्र दशा कही गयी है। इनके अतिरिक्त चरदशा, स्थिरदशा, केन्द्रदशा, कारकदशा एवं ब्रह्मग्रहदशा भी कही गई है । किसी ने मण्डूकदशा, शूलदशा, योगार्धदशा, दृग्दशा, त्रिकोणदशा, राशिदशा, पञ्चस्वरदशा, योगिनीदशा, पिण्डदशा, नैसर्गिक दशा, अष्टवर्ग दशा, सन्ध्या दशा, पाचक दशा एवं अन्य तारादि विभिन्न दशाभेद कहा है। परन्तु सभी दशायें सर्वसम्मत नहीं हैं अर्थात् व्यवहारोपयोगी नहीं है।

पराशरोक्त सभी दशाओं में नक्षत्र दशा तथा उनमें भी विंशोत्तरी दशा सर्वश्रेष्ठ है। कलौ पाराशरी दशा की प्रसिद्धि के साथ – साथ कलियुग में विंशोत्तरी को ही प्रत्यक्ष फलदायक कहा है -

कलौ प्रत्यक्ष फलदा दशा विंशोत्तरी स्मृता।

अष्टोत्तरी न संग्राह्या मारकार्थं विचक्षणैः ।।

साथ ही लघुपराशरी में स्पष्टतया **'दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता'** कहकर विंशोत्तरी दशा को सर्वदशा शिरोमणि कहा है।

दशा, अन्तर्दशा, महादशा का ज्ञान सर्वतोभावेन लोककल्याणकारी है, जिसके ज्ञान से हम किसी भी चराचर प्राणी का व सृष्टि के समस्त पदार्थ का शुभाशुभ फल का ज्ञान करने में समर्थ हो सकते है। विंशोत्तरी दशा साधन की गणितीय विधि आचार्यों ने नक्षत्रों के आधार पर कहा है, तथा उसके आधार पर किसी जातक के उसके सम्पूर्ण जीवन में होनेवाली शुभाशुभ फल का विधान प्रतिपादित किया है।

विंशोत्तरी दशा साधन -

कृत्तिकातः समारभ्य त्रिरावृत्तय दशाधिपाः।
आ- चं- कु – रा- गु- श- बु -के शुपूर्वा विहगाः क्रमात् ।।
वह्निभाज्जन्मभं यावद् या संख्या नवतष्टिता।
शेषाद्दशाधिपो ज्ञेयस्तमारभ्य दशां नयेत् ।।
विंशोत्तरशतं पूर्णमायुः पूर्वमुदाहृतम्।
कलौ विंशोत्तरी तस्माद् दशा मुख्या द्विजोत्तम ।।

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके क्रम से सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरू, शनि, बुध, केतु और शुक्र – ये तीन आवृत्ति में दशाधिकारी होते है। कृत्तिका नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर जो संख्या हो, उसमें 9 का भाग दें, शेष तुल्य पूर्वोक्त दशा – क्रम से दशाधिप होते हैं। कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके पूर्वकथित दशाक्रम से ग्रहों की दशा लगानी चाहिये। कलियुग में 120 वर्ष की पूर्णायु कही गई है। अत: अन्य दशाओं की अपेक्षा विंशोत्तरी दशा ही प्रमुख मानी जाती है।

नक्षत्रों से दशा बोधक चक्र –

दशेश	**आ(सूर्य)**	**चन्द्र**	**भौम**	**राहु**	**गुरू**	**शनि**	**बुध**	**केतु**	**शुक्र**
वर्ष	**6**	**10**	**7**	**18**	**16**	**19**	**17**	**7**	**20**
नक्षत्र	**कृ.**	**रो.**	**मृ.**	**आ.**	**पु.**	**पुष्य**	**श्ले.**	**म.**	**पू. फा.**
	उ.फा.	**ह.**	**चि.**	**स्वा.**	**वि.**	**अ.**	**ज्ये.**	**मू.**	**पू. षा.**
	उ.षा.	**श्र.**	**ध.**	**श.**	**पू.**	**उ. भा.**	**रे.**	**अ.**	

भा. भ.

रव्यादि ग्रहों के दशावर्ष -

दशासमा: क्रमादेषां षड् दशाऽश्वा गजेन्दव: ।

नृपाला: नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखा: ।।

सूर्यादि नवग्रहों के दशावर्ष संख्या क्रम से ये हैं – 6, 10, 7, 18, 16, 19,17,7, 20 ।

अर्थात् सूर्य – 6 वर्ष, चन्द्रमा के – 10 वर्ष, मंगल – 7 वर्ष, राहु – 18 वर्ष, गुरू – 16 वर्ष, शनि – 19 वर्ष, बुध – 17 वर्ष, केतु – 7 वर्ष, शुक्र – 20 वर्ष।

लग्न और सूर्यादि ग्रहों के दशाक्रम –

उदयरविशशांकप्राणिकेन्द्रादिसंस्था: ।

प्रथमवयसि मध्येऽन्त्ये च दद्यु: फलानि ।।

नहि न फलविपाक: केन्द्रसंस्थाद्यभावे ।

भवति हि फलपक्ति: पूर्वमापोक्लिमेऽपि ।।

अर्थात् सूर्य – चन्द्र इन तीनों में जो अधिक बलवान हो पहले उसकी दशा होती है फिर उसके बाद केन्द्र स्थान में स्थित ग्रहों की दशा होती है। यह दशा जीवन के प्रथमवय में होती है। उसके बाद मध्यवय में प्रथमवय में होती है। उसके बाद मध्यवय में प्रथमदशाप्रद से पणफरस्थित ग्रहों की दशा होती है। उसके बाद अन्तवय में प्रथमदशा प्रद से आपोक्लिम स्थित ग्रहों की दशा होती है।

दशा वर्ष –

आयु: कृतं येन हि यत्तदेव

कल्प्या दशा सा प्रबलस्य पूर्वा ।

साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य

तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्य ।।

जिस ग्रह की जितनी आयुर्दाय हो, उसकी उतनी ही दशा होती है। यह दशा भी बलानुसार होती है। इसमें सबसे बली ग्रह की दशा पहले होती है।

यदि दो – तीन आदि ग्रहों में बल साम्य हो तो उनमें जिसके अधिक वर्ष हों उसकी दशा प्रथम होती है। अगर वर्ष में भी समानता हो तो सूर्य के सान्निध्य वश जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसी की दशा पहले होती है।

2.4 बोध प्रश्न

1. दशा का शाब्दिक अर्थ होता है।

क. आयु ख. स्थिति ग. शुभ घ. दुर्दशा

2. विंशोत्तरी महादशा में कितने वर्षों की दशाओं की चर्चा है।

क. 20 ख. 40 ग. 60 घ. 120

3. विंशोत्तरी दशा का प्रचलन कहॉ है।

क. मध्य देश में ख. विन्ध्य से दक्षिण के प्रान्तों में ग. विन्ध्य से उत्तर के प्रान्तों में घ. कोई नही

4. चन्द्रमा ग्रह की दशा वर्ष है।

क. 6 वर्ष ख. 10 वर्ष ग. 18 वर्ष घ. 16 वर्ष

5. शुक्र की दशायु है।

क. 17 वर्ष की ख. 7 वर्ष की ग. 20 वर्ष की घ. 19 वर्ष की

दशा साधन विधि – अभिजित् रहित 27 नक्षत्रों में कृत्तिका से जन्म नक्षत्र गणना करें। तत्संख्या में 9 का भाग देने पर शेष निम्नोक्त क्रम से विंशोत्तरी दशेश होते है। अर्थात् 1 शेष बचे तो सूर्य, 2 शेष बचे तो चन्द्रमा, 5 शेष बचे तो गुरू 8 शेष बचे तो केतु व 0 शेष बचे तो शुक्र की दशा होती है।

विंशोत्तरी दशा फल –

रवि दशा फल –

मूलत्रिकोणे स्वक्षेत्रे स्वोच्चे वा परमोच्चगे।
केन्द्रत्रिकोणलाभस्थे भाग्यकर्माधिपैर्युते ।।
सूर्ये बलसमायुक्ते निजवर्गबलैर्युते।
तस्मिन्दाये महत् सौख्यं धनलाभादिकं शुभम् ।।
अत्यन्तं राजसन्मानमश्वसन्दोल्यादिकं सुखम्।
सुताधिपसमायुक्ते पुत्रलाभं च विन्दति ।।
धनेशस्य च सम्बन्धे गजान्तैश्वर्यमादिशेत्।
वाहनाधिपसम्बन्धे वाहनत्रयलाभकृत् ।।
नृपालतुष्टिर्वित्ताढय: सेनाधीश: सुखो नर:।
बलवाहनलाभश्च दशायां बलिनो रवे: ।।

यदि सूर्य जन्मसमय में अपने मूलत्रिकोण में, अपने क्षेत्र में अपने उच्च में अपने परमोच्च में केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में, भाग्येश कर्मेश के साथ में निज वर्ग में बलवान होकर बैठा हो तो उसकी दशा

में धनलाभ, अधिक सुख, राजसम्मानादि की प्राप्ति होती है। सन्तानेश के साथ हो तो पुत्रलाभ, धनेश के साथ सूर्य हो तो हाथी आदि धनों का लाभ और वाहनेश के साथ हो तो वाहन का लाभ कराता है। ऐसा जातक राजा की अनुकम्पा से धनाढय होकर सेनानायक बनकर सुखी होता है। इस प्रकार बलयुत रवि की महादशा में बल, वाहन, और धन का लाभ होता है।

अन्य स्थिति में फल - यदि जातक के जन्मसमय में सूर्य अपने नीच राशि का हो, 6,8,12 भाव में में निर्बल पापग्रहों से युत हो या राहु – केतु से युत हो या दु:स्थान 6,8,12 के अधिपति से युत हो तो सूर्य की महादशा में महान कष्ट, धन- धान्य का विनाश, राजक्रोध, प्रवास, राजदण्ड, धनक्षय, ज्वरपीड़ा, अपयश, स्वबन्धुओं से वैमनश्यता, पितृकष्ट, भय, गृह में अशुभ, चाचा को कष्ट, मानसिक अशान्ति और अकारण जनों से द्वेष होता है। यदि सूर्य के पूर्वोक्त नीचादि स्थानों में रहने पर भी उस शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो कभी – कभी बीच – बीच में सुख भी होता है। यदि केवल पापग्रहों की ही दृष्टि हो तो सदैव पाप फल ही कहना चाहिये।

चन्द्रफल –

एवं सूर्यफलं विप्र संक्षेपाददुदितं मया।
विंशोत्तरीमतेनाऽथ ब्रुवे चन्द्रदशाफलम्॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
शुभग्रहेण संयुक्ते पूर्णे चन्द्रे बलैर्युते॥
कर्मभाग्यधिपैर्युक्ते वाहनेशबलैर्युते।
आद्यन्तैश्वर्य सौभाग्य धन धान्यादिलाभकृत्।
गृहे तु शुभकार्याणि वाहनं राजदर्शनम्॥
यत्नकार्यार्थसिद्धिः स्याद् गृहे लक्ष्मीकटाक्षकृत्।
मित्रप्रभुवशाद् भाग्यं राज्यलाभं महत्सुखम्॥
अश्वान्दोल्यादिलाभं च श्वेतवस्त्रादिकं लभेत्।
पुत्रलाभादिसन्तोषं गृहगोधनसङ्कुलम्॥
धनस्थानगते चन्दे तुङ्गे स्वक्षेत्रगेऽपि वा।
अनेकधनलाभं च भाग्यवृद्धिर्महत्सुखम्॥
निक्षेपराजसन्मानं विद्यालाभं च विन्दति।

जन्मकाल में यदि चन्द्रमा अपने उच्च राशि का हो या अपने क्षेत्र में हो, केन्द्र, 11, त्रिकोण में हो और पूर्ण बली चन्द्र शुभ ग्रहों से युत हो, 4,9,10 भावों के स्वामी से युक्त हो तो उसकी महादशा में

प्रारम्भ से अन्त तक धन – धान्य, सौभाग्यादि की वृद्धि, गृह में मांगलिक कार्य, वाहनसुख, राजदर्शन, यत्न से कार्य सिद्धि, घर में धनागम, मित्रों के द्वारा भाग्योदय, राज्यलाभ, सुख, वाहनप्राप्ति एवं धन और वस्त्रादि का लाभ होता है। जातक पुत्रलाभ, मानसिक शान्ति एवं घर में गौओं द्वारा सुशोभित होता है। चन्द्रमा द्वितीय भाव में अपने उच्च या स्वगृहगत हो तो अनेक प्रकार से धनलाभ, भाग्यवृद्धि, राजसम्मान तथा विद्या का लाभ होता है।

अन्य स्थिति में फल - चन्द्रमा अपने नीच का हो या क्षीण हो तो धन की हानि होती है। बलयुत चन्द्र तृतीय भाव में हो तो कभी – कभी सुख और धन की प्राप्ति होती है। निर्बल चन्द्र पापग्रह से युत होकर तृतीय में हो तो जड़ता, मानसिक रोग, नौकरों से पीड़ा, धनहानि और माता या मामा से कष्ट होता है। दुर्बल चन्द्रमा पापग्रह से युत होकर 6,8,12 स्थान में स्थित हो तो राजद्वेष, मानसिक दु:ख, धन- धान्यादि का विनाश, मातृकष्ट, पश्चाताप, शरीर की जड़ता एवं मनोव्यथा होती है। बलयुत चन्द्रमा के दु:स्थान में रहने से बीच – बीच में कभी – कभी लाभ और सुख भी होता है। अशुभकारक रहने पर शान्ति करने से शुभ का निर्देश करना चाहिये।

भौम दशा फल –

स्वभोच्चादिगतस्यैवं नीचशत्रुभगस्य च।
ब्रवीमि भूमिपुत्रस्य शुभाऽशुभदशाफलम्॥
परमोच्चगते भौमे स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे।
स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा॥
सम्पूर्णबलसंयुक्ते शुभदृष्टे शुभांशके।
राज्यलाभं भूमिलाभं धनधान्यादिलाभकृत्॥
आधिक्यं राजसम्मानं वाहनाम्बरभूषणम्।
विदेशे स्थानलाभं च सोदराणां सुखं लभेत्॥
केन्द्रे गते सदा भौमे दुश्चिक्ये बलसंयुते।
पराक्रमाद्वित्तलाभो युद्धे शत्रुञ्जयो भवेत्॥
कलत्रपुत्रविभवं राजसम्मानमेव च।
दशादौ सुखमाप्नोति दशान्ते कष्टमादिशेत्॥

मंगल अपने परमोच्च में हो, अपने उच्च में हो या अपने मूल त्रिकोण में हो, स्वगृह में हो या केनद्रत्रिकोण में हो, लाभ भाव में हो, धनभाव में हो, पूर्णबल युत हो, शुभ ग्रहों से अवलोकित हो, शुभ नवमांश में हो तो राज्यलाभ, भूमिप्राप्ति, धन – धान्यादि का लाभ, राजसम्मान, वाहन, वस्त्र,

आभूषणादि का लाभ, प्रवास में भी स्थानलाभ और सहोदर बन्धु सौख्य होता है । यदि मंगल बलयुत होकर केन्द्र या तृतीय भाव में हो तो पराक्रम से धनलाभ, युद्ध में शत्रु की पराजय, स्त्री – पुत्रादि का सुख और राजसम्मान प्राप्त होता है , परन्तु भौम दशा के अन्त में सामान्य कष्ट भी होता है।

अन्य स्थिति में फल - भौम अपने नीचादि दुष्ट भाव में निर्बल होकर स्थित हो या पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो उसकी दशा में धन- धान्य का विनाश, कष्ट आदि अशुभ फल कहना चाहिये।

बुध दशा फल –

अथ सर्वनभोगेषु यः कुमारः प्रकीर्तितः।
तस्य तारेशपुत्रस्य कथयामि दशाफलम् ।।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
मित्रक्षेत्रसमायुक्ते सौम्ये दाये महत्सुखम् ।।
धनधान्यादिलाभं च सत्कीर्तिधनसम्पादाम्।
ज्ञानाधिक्यं नृपप्रीतिं सत्कर्मगुणवर्द्धनम् ।।
पुत्रदारादि सौख्यं व्यापाराल्लभते धनम्।
क्षीरेण भोजनं सौख्यं व्यापाराल्लभते धनम् ।।
शुभदृष्टियुते सौम्ये भाग्ये कर्माधिपे दशा।
आधिपत्ये बलवती सम्पूर्णफलदायिका ।।

सभी ग्रहों में जिसको कुमार कहा जाता है, उस बुध की महादशा का फल इस प्रकार है – यदि बुध अपने उच्च में हो या स्वक्षेत्र में हो या केन्द्र - त्रिकोण मित्रगृह में बैठा हो तो उसकी दशा में सुख, धन – धान्य का लाभ, सुकीर्ति, ज्ञानवृद्धि, राजा की सहानुभूति, शुभ कार्य की वृद्धि, पुत्र – स्त्रीजन्य सुख, रोगहीनता, दुग्धयुत भोजन एवं व्यापार से धनलाभ होता है। यदि बुध पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो या शुभ ग्रह से युत हो, कर्मेश होकर भाग्य स्थान में बैठा हो और पूर्ण बली हो तो उक्त फल पूर्ण होगा, अन्यथा सामान्य फल की प्राप्ति होती है।

अन्य फल - यदि बुध पापग्रह से युत दृष्ट हो तो राजद्वेष, मानसिक रोग, अपने बन्धु – बान्धवों से वैर, विदेश – भ्रमण, दूसरे की नौकरी, कलह एवं मूत्रकच्छ्र रोग से परेशानी होती है । यदि बुध 6,8,12 वें स्थान में हो तो लाभ तथा भोग एवं धन का नाश होता है। वात, पाण्डुरोग, राजा, चोर, और अग्नि से भय, कृषि सम्बन्धी भूमि और गाय का विनाश होता है। सामान्यतया दशा के प्रारम्भ में धन – धान्य, विद्या लाभ, सुख पुत्र कलत्रादि लाभ, सन्मार्ग में धन व्यय आदि शुभ होता है। मध्य

काल में राजा से आदर प्राप्त होता है, और अन्त में दु:ख प्राप्त होता है।

गुरू दशा फल –

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे केन्द्र लाभत्रिकोणगे।
मूलत्रिकोणलाभे वा तुङ्गाशे स्वांशगेऽपि वा ।।
राज्यलाभं महत्सौख्यं राजसन्मानकीर्तनम्।
गजवाजिसमायुक्तं देवब्राह्मणपूजनम् ।।
दारपुत्रादिसौख्यं च वाहनाम्बरलाभजम्।
यज्ञादिकर्मसिद्धिः स्याद्वेदान्तश्रवणादिकम् ।।
महाराजप्रसादेनाऽभीष्टसिद्धिः सुखावहा।
आन्दोलिकादिलाभश्च कल्याणं च महत्सुखम् ।।
पुत्रदारादिलाभश्च अन्नदानं महत्प्रियम्।

गुरू यदि स्वोच्च, स्वक्षेत्र, केन्द्र, त्रिकोण या लाभ, मूल त्रिकोण, अपने उच्च नवमांश या अपने नवमांश में बैठा हो तो राज्य की प्राप्ति, महासुख, राजा से सम्मान, यश- घोड़े हाथी आदि की प्राप्ति, देव – ब्राह्मण में निष्ठा, स्त्री - पुत्रादि से सुख, वाहन वस्त्रलाभ, यज्ञादि धार्मिक कार्य की सिद्धि, वेद – वेदान्तादि का श्रवण, महाराजा की कृपा से अभीष्ट की प्राप्ति, सुख, पालकी आदि की प्राप्ति, कल्याण, महासुख, पुत्र कलत्रादि का लाभ, अन्नदान आदि शुभ फल प्राप्त होता है।

अन्य फल – यदि गुरू नीच या अस्त, पापग्रहों से युत या 8,12 भावों में स्थित हो तो स्थाननाश, चिन्ता, पुत्रकष्ट, महाभय, पशु – चौपायों की हानि, तीर्थयात्रा आदि होता है। गुरू की दशा आरम्भ में कष्टकारक, मध्य तथा अन्त में चतुष्पदों से लाभदायक, राजसम्मान, ऐश्वर्य, सुख आदि का अभ्युदय कराने वाली होती है।

शुक्रदशाफल –

परमोच्चगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे।
नृपाऽभिषेक – सम्प्राप्तिर्वाहनाऽम्बरभूषणम् ।।
गजाश्वपशुलाभं च नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
अखण्डमण्डलाधीश राजसन्मानवैभवम् ।।
मृदंगवाद्यघोषं च गृहे लक्ष्मीकटाक्षकृत्।
त्रिकोणस्थे निजे तस्मिन् राज्यार्थगृहसम्पदः ।।
विवाहोत्सवकार्याणि पुत्रकल्याणवैभवम्।

सेनाधिपत्यं कुरूते इष्टबन्धुसमागम् ।।
नष्टराज्याद्धनप्राप्तिं गृहे गोधनसङ्ग्रहम् ।।

यदि शुक्र अपने परम उच्च, उच्च स्वराशि या केन्द्र में बैठा हो तो उसकी दशा में जीवों को राज्याभिषेक की प्राप्ति, वाहन, वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़े, पशु आदि का लाभ, सदा सुस्वादु भोजन, सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी से सम्मान एवं स्वगृह में लक्ष्मी की अनुकम्पा से मृदंग वाद्य – वादनपूर्ण उत्सव होता है। यदि शुक्र त्रिकोण में हो तो उस शुक्र की दशा में राज्य, धन, गृह का लाभ, गृह में विवाहादि मांगलिक कार्य, पुत्र – पौत्रादि का जन्म, सेनानायक, घर में शुभ चिन्तक मित्र का समागम, गौ आदि पशुओं की वृद्धि एवं नष्ट राज्य या धन की पुन: प्राप्ति होती है।

अन्य फल – यदि शुक्र 6,8,12 वें भाव में या स्वनीच राशिस्थ हो तो उसकी दशा में स्वबन्धु – बान्धवों में वैमनश्यता, पत्नी को पीड़ा, व्यवसाय में हानि, गाय, भैंस आदि पशुओं से हानि, स्त्री – पुत्रादि या अपने बन्धु – बान्धवों का विछोह होता है।

यदि शुक्र भाग्येश या कर्मेश होकर लग्न या चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो उसकी दशा में महत् सौख्य, देश या ग्राम का पालक, देवालय – जलाशयादि का निर्माण, पुण्य कर्मों का संग्रह, अन्नदान, सदैव सुमधुर भोजन की प्राप्ति, उत्साह, यश एवं स्त्री – पुत्र आदि से सुखानुभूति होती है।

शनि दशा फल –

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे मित्रक्षेत्रेऽथ वा यदि ।
मूलत्रिकोणे भाग्ये वा तुंगाशे स्वांशगेऽपि वा ।।
दुश्चिक्ये लाभगे चैव राजसम्मानवैभवम् ।
सत्कीर्तिर्धनलाभश्च विद्यावादविनोदकृत् ।।
महाराजप्रसादेन गजवाहनभूषणम् ।
राजयोगं प्रकुर्वीत सेनाधीशान्महत्सुखम् ।।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि राज्यलाभं करोति च ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिलाभकृत् ।।

यदि शनि अपने उच्च, स्वक्षेत्र, मित्रक्षेत्र, मूलत्रिकोण, भाग्य, अपने उच्चांश, अपने नवमांश, तृतीय, लाभस्थान में बैठा हो तो राजसम्मान, सुन्दर यश, धनलाभ, विद्याध्ययन से स्वान्त सुख, महाराजा की कृपा से सेनानायक, हाथी, वाहन, आभूषण आदि का लाभ, परम सुख, गृह में लक्ष्मी की कृपा, राज्यलाभ, पुत्र कलत्र धनादि का लाभ, गृह में कल्याण आदि का शुभ फल प्रदान करने वाला होता है।

षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वाऽस्तंगतेऽपि वा ।

विषशस्त्रादिपीडा च स्थानभ्रंशं महद्भयम् ।।
पितृमातृवियोगं च दारपुत्रादिपीडनम् ।
राजवैषम्यकार्याणि ह्यनिष्टं बन्धनं तथा ।।
शुभयुक्तेक्षिते मन्दे योगकारकसंयुते ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा मीनगे कार्मुके शनौ ।।
राज्यलाभं महोत्साहं गजाश्वाम्बरसंकुलम् ।

यदि शनि 6,8,12 में हो, नीच या अस्तंगत हो तो विष या शस्त्र से पीड़ा, स्थान का विनांश, महाभय, माता – पिता से वियोग, पुत्र कलत्रादि को पीड़ा, राजवैमनश्यता से कार्य में अनिष्ट, बन्धन आदि प्राप्त होता है। यदि शनि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध रखता हो या केन्द्र - त्रिकोण लाभ में हो या मीन, धन राशिस्थ हो तो राज्यलाभ, हाथी, घोड़े, वस्त्र, महोत्सवादि का कार्य कराता है।

राहु का दशा फल –

राहोस्तु वृषभं केतुर्वृश्चिकं तुंगसंज्ञकम् ।
मूलत्रिकोणकं ज्ञेयं युग्मं चापं क्रमेण च ।।
कुम्भाली च गृहौ चोक्तौ कन्या मीनौ च केनचित् ।
तद्दाये बहुसौख्यं च धनधान्यादिसम्पदाम् ।।
मित्रप्रभुवशादिष्टं वाहनं पुत्रसम्भवः ।
नवीनगृहनिर्माणं धर्मचिन्ता महोत्सवः ।।
विदेशराजसन्मानं वस्त्रालंकारभूषणम् ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे योगकारकसंयुते ।।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये शुभराशिगे ।
महाराजप्रसादेन सर्वसम्पत्सुखावहम् ।।
यवनप्रभुसन्मानं गृहे कल्याणसम्भवम् ।

राहु का उच्च राशि वृष और केतु का वृश्चिक है। राहु का मूलत्रिकोण मिथुन और केतु का धनराशि है। राहु का कुम्भ और केतु का वृश्चिक स्वगृह राशि है। अन्य मत से कन्या और मीन भी राशिगृह है। राहु या केतु अपने उच्चादि स्थानगत हैं तो उनकी महादशा में धन – धान्यादि सम्पत्ति का अभ्युदय, मित्र एवं मान्य जनों की सहानुभूति से कार्यसिद्धि, वाहन, पुत्रलाभ, नवीन गृहनिर्माण, धार्मिक चिन्ता, महोत्सव, विदेश में भी राजसम्मान, वस्त्र, अलंकार एवं आभूषण की प्राप्ति होती है। राहु केतु योगकारक ग्रहों के साथ हों या शुभग्रह से युत दृष्ट होकर केन्द्र, त्रिकोण, लाभ तृतीय भाव में शुभ

राशिगत हों तो राजा – महाराजा की कृपा से सभी सम्पत्तियों का आगमन और विदेशीय यवनराज से भी धनागम तथा अपने घर में कल्याण होता है।

यदि राहु 8,12 भाव में हो तो उसकी दशा कष्टकारक होती है, यदि पापग्रह से सम्बन्ध रखता हो या मारकेश से युत हो या अपने नीच राशिगत हो तो स्थानभ्रष्ट, मानसिक रोग, पुत्र – स्त्री, का विनाश एवं कुभोजन की प्राप्ति होती है। दशा – प्रारम्भ में शारीरिक कष्ट, धन – धान्य का विनाश, दशा के मध्य में सामान्य सुख और अपने देश में धनलाभ तथा दशा के अन्त में स्थानभ्रष्ट, मानसिक व्यथा एवं कष्ट की प्राप्ति होती है।

केतु दशाफल –

केन्द्रे लाभे त्रिकोणे वा शुभराशौ शुभेक्षिते।
स्वोच्चे वा शुभवर्गे वा राजप्रीतिं मनोनुगम्॥
देशग्रामाधिपत्यं च वाहनं पुत्रसम्भवम्।
देशान्तरप्रयाणं च निर्दिशेत् तत्सुखावहम्॥
पुत्रदारसुखं चैव चतुष्पाज्जीवलाभकृत्।
दुश्चिक्ये षष्ठलाभे वा केतुर्दाये सुखं दिशेत्॥
राज्यं करोति मित्रांशं गजवाजिसमन्वितम्।
दशादौ राजयोगाश्च दशामध्ये महद्भयम्॥
अन्ते दूराटनं चैव देहविश्रमणं तथा।
धने रन्ध्रे व्यये केतो पापदृष्टियुतेक्षिते॥
निगडं बन्धुनाशं च स्थानभ्रंशं मनोरूजम्।
शूद्रसंगादिलाभं च कुरूते रोगसंकुलम्॥

यदि केतु केन्द्र, लाभ, त्रिकोण या शुभ राशिगत हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो, अपने उच्च, शुभ वर्ग में स्थित हो तो राजा से प्रेम, मनोनुकूल वातावरण, देश या ग्राम का अधिकारी, वाहनसुख, सन्तानोत्पत्ति, विदेशभ्रमण, सुखकारक, स्त्री – पुत्र सुख एवं पशुओं से लाभ होता है। यदि केतु 3,6,11 भाव में स्थित हो तो उसकी दशा में सुख, राज्यलाभ, मित्रों का सहयोग एवं हाथी, घोड़े आदि सवारी का लाभ होता है। केतु की दशा के आरम्भ में राजयोग, मध्य में भय एवं अन्त में दूरगमन और शारीरिक कष्ट होता है। 2,8,12 वें भाव में केतु स्थित हो तो जातक पराश्रित, बन्धुनाश, स्थानविनाश, मानसिक रोग, अधम व्यक्ति का संग और रोगयुत होता है।

जन्मकालिक दशा का भुक्त भोग्य साधन –

दशामानं भयातघ्नं भभोगेन हृतं फलम्।

दशाया भुक्तवर्षाद्यं भोग्यं मानाद् विशोधितम् ।।

जन्मसमय में जिस ग्रह की महादशा हो, उस ग्रह की वर्षसंख्या से भयात् को गुणा करे और उसमें भभोग से भाग देने पर वर्षादि लब्धि प्राप्त होती है, वही उस ग्रह के भुक्त वर्षादि होते है। उसको दशा वर्षसंख्या में घटाने से भोग्य वर्षादि स्पष्ट होते है।

उदाहरण –

माना कि किसी जातक का जन्म संवत् 2049 कार्तिक शुक्ल 10 तिथि बुधवार को है। स्पष्ट सूर्य 6/18/1/4 शतभिषा के दो चरण भयात् 19/15 भभोग 66/32, पलात्मक भयात् 19 × 60 + 15 = 1155, तथा पलात्मक भभोग 66 × 60 + 32 = 3992 हुआ। पलात्मक भयात 1155 को राहु दशावर्ष 18 से गुणा करने पर 20790 हुआ, इसमें पलात्मक भभोग 3992 से भाग देने पर भुक्त वर्षादि 5/2/14/51 होता है। इसको दशा वर्ष 18 में घटाने पर राहु का भोग्य वर्षादि 12/9/15/9 होता है।

महादशा क्रम को स्पष्ट रूप से समझने के लिए सारिणी अधोनिर्मित चक्र को ध्यान से देखें -

स्पष्टार्थ महादशाचक्रम् –

रा. भु.	रा. भो.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	क.	भौ.	ग्रह
5	12	16	19	17	7	20	6	10	7	वर्ष
2	9									मास
14	15									दिन
51	9									घटी
2049	2062	2078	2097	2114	2121	2141	2147	2157	2164	संवत्
6	4	4	4	4	4	4	4	4	4	सू. रा.
18	3	3	3	3	3	3	3	3	3	सू. अं.
1	10	10	10	10	10	10	10	10	10	सू. क.

भावेश सम्बन्ध के अनुसार दशा फल –

लग्नेशस्य दशाकाले सत्कीर्तिर्देहजं सुखम् ।
धनेशस्य दशायां तु क्लेशो वा मृत्युतो भयम् ।।
सहजेशदशाकाले ज्ञेयं पापफलं नृणाम् ।
सुखाधीशदशायां तु गृहभूमिसुखं भवेत् ।।
पञ्चमेशस्य पाके च विद्याप्तिः पुत्रजं सुखम् ।
रोगेशस्य दशाकाले देहपीडा रिपोर्भयम् ।।

लग्नेश के दशाकाल में सुयश और शारीरिक सुख, धनेश की दशा में क्लेश या मृत्युभय, तृतीयेश की दशा अशुभकारक, चतुर्थेश की दशा में गृह – भूमि सुख की प्राप्ति, पंचमेश की दशा में विद्या की प्राप्ति, और पुत्रजन्य सुख एवं षष्ठेश की दशा में शारीरिक कष्ट और शत्रुभय का आभास होता है।

सप्तमेशस्य पाके तु स्त्रीपीडा मृत्युतो भयम् ।
अष्टमेशदशाकाले मृत्युभीतिर्धनक्षतिः ।।
धर्मेशस्य दशायां च भूरिलाभो यशःसुखम् ।
दशमेशदशाकाले सम्मानं नृपसंसदि ।।
लाभेशस्य दशाकाले लाभे बाधा रूजोभयम् ।
व्ययेशस्य दशा नृणां बहुकष्टप्रदा द्विज ।।
दशारम्भे शुभस्थाने स्थितस्यापि शुभं फलम् ।
अशुभस्थानगस्यैवं शुभस्यापि न शोभनम् ।।

सप्तमेश की दशा में पत्नी को कष्ट और मृत्युभय,अष्टमेश की दशा में मरण की आशंका और धननाश, नवमेश की दशा में अधिक लाभ, यश और सुख, दशमेश की दशा में राजसभा में सम्मान, एकादशेश की दशा में लाभ में अवरोध, रोगभय, एवं द्वादशेश की दशा जातक को बहुत कष्टदायक होती है। दशमेश शुभ स्थान में स्थित हो तो दशाफल शुभ एवं अशुभ स्थान 6,8 आदि में हो तो दशेश शुभ ग्रह होने पर भी अशुभ फल देने वाले होते है।

पंचमेशेन युक्तस्य कर्मेशस्य दशा शुभा ।
नवमेशेन युक्तस्य कर्मेशस्यातिशोभना ।।
पंचमेशेन युक्तस्य ग्रहस्यापि दशा शुभा ।
तथा धर्मपयुक्तस्य दशा परमशोभना ।।
सुखेशसहितस्यापि धर्मेशस्य दशा शुभा ।
पंचमस्थानगस्यापि मानेशस्य दशा शुभा ।।

एवं त्रिकोणनाथानां केन्द्रस्थानां दशा: शुभा: ।
तथा कोणस्थितानां च केन्द्रेशानां दशा: शुभा: ।।
केन्द्रेश: कोणभावस्थ: कोणेश: केन्द्रगो यदि ।
तयोर्दशां शुभां प्राहुर्ज्योर्ति:शास्त्रविदो जना: ।।

पंचमेश से युत कर्मेश की दशा शुभ फलदायक होती है, भाग्येश से युत कर्मेश की दशा अत्यन्त शुभ फलकारक होती है। अन्य ग्रह भी पंचमेश से युत हों तो उन ग्रहों की दशा भी शुभकारक होती है तथा धर्मेश से युत ग्रह की दशा परमसुखकारक होती है। धर्मेश चतुर्थेश से युत हो तो उसकी दशा भी शुभकारक होती है। दशमेश यदि पंचम स्थान में हो तो भी उसकी दशा शुभकारक होती है। इसी प्रकार केन्द्रेश कोणस्थान में हो या केन्द्रेश त्रिकोण में और त्रिकोणेश केन्द्र में हो तो उनकी दशा भी शुभ फलकारक होती है।

षष्ठाष्टमव्ययाधीशा अपि कोणेशसंयुता ।
तेषां दशाऽपि शुभदा कथिता कालकोविदै: ।।
कोणेशो यदि केन्द्रस्थ: केन्द्रेशो यदि कोणग: ।
ताभ्यां युक्तस्य खेटस्य दृष्टियुक्तस्य चैतयो: ।।
दशां शुभप्रदां प्राहुर्विद्वांसो दैवचिन्तका: ।
लग्नेशो धर्मभावस्थो धर्मेशो लग्नगो यदि ।।
एतयोस्तु दशाकाले सुखधर्मसमुद्भव: ।
कर्मेशो लग्नराशिस्थो लग्नेश: कर्मभावग: ।।
तयोर्दशाविपाके तु राज्यलाभो भवेद् ध्रुवम् ।
त्रिषडायगतानां च त्रिषडायाधिपैर्युजाम् ।।
शुभानामपि खेटानां दशा पापफलप्रदा ।
एवं भावेशसम्बन्धादूहनीयं दशाफलम् ।।

यदि 6,8,12 भावों के अधिपति भी कोणेश से युत हों तो उनकी दशा भी शुभ फल देने वाली होती है। कोणेश यदि केन्द्र में हों और केन्द्रेश कोणस्थान में हों तो उन केन्द्रेश और कोणेश से युत ग्रहों की दशा भी शुभ फलप्रद होती है और उन दोनों की दृष्टियुत ग्रहों की दशा भी शुभ फल प्रदान करने वाली होती है। लग्नेश धर्मभाव में और धर्मेश लग्न में हो तो दोनों के दशाकाल में जातक को सुख और धर्म की वृद्धि होती है। कर्मेश लग्न में और लग्नेश कर्मभाव में हो तो उन दोनों के दशाकाल में जातक को राज्य का लाभ होता है।

यदि 3,6,11 स्थानों में स्थित ग्रहों या उनके स्वामीयों से युत या दृष्ट शुभ ग्रहों की दशा भी अशुभ फलप्रद होती है। मारक स्थानगत ग्रह या मारकेश से युत ग्रह, अष्टम स्थान में स्थित ग्रह या

अष्टमेश से युत दृष्ट शुभ ग्रहों की दशा भी अशुभ फलदायक होती है। इस प्रकार भावेश और स्थानेश के परस्पर सम्बनध, दृष्टि, युति आदि के तारतम्य से शुभ या अशुभ फल का विवेचन करना चाहिये।

प्रत्येक राशियों का नवमांशानुसार दशाफल –

मेषे तु रक्तपीडा च वृषभे धान्यवर्द्धनम्।
मिथुने ज्ञानसम्पन्नश्चान्द्रे धनपतिर्भवेत्॥
सूर्यर्क्षे शत्रुबाधा च कन्या स्त्रीणां च नाशनम्।
तौलिके राजमन्त्रित्वं वृश्चिके मरणं भवेत्॥
अर्थलाभे भवेच्चापे मेषस्य नवभागके।

मेष राशि का फल –

मेषे तु रक्तपीडा च वृषभे धान्यवर्द्धनम्।
मिथुने ज्ञानसम्पन्नश्चान्द्रे धनपतिर्भवेत्॥
सूर्यर्क्षे शत्रुबाधा च कन्या स्त्रीणां च नाशनम्।
तौलिके राजमन्त्रित्वं वृश्चिके मरणं भवेत्॥
अर्थलाभो भवेच्चापे मेषस्य नवभागके।

मेष राशि की मेष के ही नवमांश में कालचक्रदशा हो तो रक्तपीड़ा, वृष के नवमांश में धन – धान्य की वृद्धि, मिथुन में ज्ञानयुति, कर्क के नवमांश में धनाधीश, सिंह के नवमांश में शत्रुपीड़ा, कन्या में स्त्री का विनाश, तुला में राजा का मन्त्री, वृश्चिक में मरण एवं धन के नवमांश में कालचक्रदशा हो तो अर्थ का लाभ होता है।

वृष राशि का फल –

मकरे पापकर्माणि कुम्भे वाणिज्यमेव च।
मीने सर्वार्थसिद्धिश्च वृश्चिकेष्वग्नितो भयम्॥
तौलिके राजपूज्यश्च कन्यायां शत्रुवर्धनम्।
शशिभे दारसम्बाधा सिंहे च त्वक्षिरोगकृत्॥
मिथुने वृत्तिबाधा स्याद् वृषभस्य नवांशके।

वृष राशि में मकर के नवमांश में काल चक्र दशा हो ता पापकार्य में प्रवृत्ति, कुम्भनवमांश दशा में वाणिज्य लाभ, मीन में सभी कार्यों में सफलता, वृश्चिक में अग्निभय, तुला में राजमान्य, कन्या में शत्रुवृद्धि, कर्क की दशा में पत्नी को कष्ट, सिंह में नेत्र रोग, एवं मिथुन में व्यवसाय में बाधायें उत्पन्न होती है।

मिथुनगत नवमांश राशियों के दशाफल –

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषे तु ज्वररोगकृत् ।
मीने तु मातुलप्रीतिः कुम्भे शत्रुप्रवर्द्धनम् ।।
मृगे चौरस्य सम्बाधा धनुषि शस्त्रवर्धनम् ।
मेषे तु शस्त्रसंघातो वृषभे कलहो भवेत् ।।
मिथुने सुखमाप्नोति मिथुनस्य नवमांशके ।।

मिथुनगत वृष की नवमांश दशा में धनलाभ, मेष में ज्वरपीड़ा, मीन में मामा से प्रीति, कुम्भ में शत्रु की वृद्धि, मकर में चौर – बाधा, धनु में शस्त्रवृद्धि, मेष में शस्त्र से भय, वृष में कलह, और मिथुन की दशा में सुख की प्राप्ति होती है।

कर्कगत नवमांश राशियों के दशाफल –

कर्कटे संकटप्राप्तिः सिंहे राजप्रकोपकृत् ।
कन्यायां भ्रातृपूजा च तौलिके प्रियकृन्नरः ।।
वृश्चिके पितृबाधा स्यात् कुम्भे धान्यविवर्धनम् ।
मीने च सुखसुखसम्पत्तिः कर्कटस्य नवांशके ।।

कर्कटगत कर्क की नवमांश दशा में संकट, सिंह में राजक्रोध, कन्या में भ्रातृ आदर, तुला में दूसरे का उपकार, वृश्चिक में पितृबाधा, धनु में ज्ञान और धन का अभ्युद, मकर में जल से भय, कुम्भ में धान्यवृद्धि एवं मीन में सुख और सम्पत्ति की वृद्धि होती है।

सिंह गत राशियों का दशाफल –

वृश्चिके कलहः पीडा तौलिके ह्यधिकं फलम् ।
कन्यायामतिलाभश्च शशांके मृगबाधिका ।।
सिंहे च पुत्रलाभश्च मिथुने शत्रुवर्द्धनम् ।
वृषे चतुष्पादाल्लाभे मेषांशे पशुतो भयम् ।।
मीने तु दीर्घयात्रा स्यात् सिंहस्य नवभागके ।

सिंह राशिगत वृश्चिक के नवमांश में कालचक्रदशा हो तो कलह और पीड़ा, तुला में अधिक लाभ, कन्या में विशेष लाभ, कर्क में मृगादिन्य जन्तुओं से बाधा,सिंह में पुत्रलाभ, मिथुन में शत्रुवृद्धि , वृष में गौ आदि चतुष्पदों से लाभ, मेष में पशुओं से भय और मीन में लम्बी यात्रा होती है ।

कन्या गत नवांश राशियों के दशाफल –

कुम्भे तु धनलाभश्च मकरे द्रव्यलाभकृत् ।

धनुषि भ्रातृसंसर्गो मेषे मातृविवर्द्धनम् ।।
वृषभे पुत्रवृद्धिः स्यान्मिथुने शत्रुवर्द्धनम् ।
शशिभे तु स्त्रियां प्रीतिः सिंहे व्याधिविवर्द्धनम् ।।
कन्यायां पुत्रवृद्धिः स्यात्कन्याया नवमांशके ।

कन्यागत नवमांश में कुम्भ की दशा हो तो धनलाभ, मकर में भी धनलाभ, धनु में भाइयों का संसर्ग, मेष में माता का सुख, वृष मे सन्तानवृद्धि, मिथुन में शत्रुवृद्धि, कर्कट में स्त्री से प्रीति, सिंह में रोगाधिक्य और कन्या में पुत्र की प्राप्ति होती है ।

तुलागत नवमांश राशियों के दशाफल –

तुलायामर्थलाभश्च वृश्चिके भ्रातृवर्द्धनम् ।
चापे च तातसौख्यं च मृगे मातृविरोधिता ।
कुम्भे पुत्रार्थलाभश्च मीने शत्रुविरोधिता ।।
अलौ जायाविरोधश्च तुले च जलबाधता ।
कन्यायां धनवृद्धिः स्यात तुलाया नवभागके ।।

तुला में तुला के ही नवमांश में कालचक्रदशा हो तो धनलाभ, वृश्चिक में भातृ की वृद्धि, धनु में पितृसुख, मकर में मातृविरोध, कुम्भ में पुत्र एवं धन का लाभ, मीन में शत्रु से विरोध, वृश्चिक में पत्नी से विरोध, तुला में जल से भय एवं कन्या में धनागम होता है ।

वृश्चिकगत नवमांश राशियों के दशाफल –

कर्कटे ह्यर्थनाशश्च सिंहे राजविरोधिता ।
मिथुने भूमिलाभश्च वृषभे चाऽर्थलाभकृत् ।।
मेषे सर्पादिभीतिः स्यान्मीने चैव जलाद् भयम् ।
कुम्भे व्यापारतो लाभो मकरेऽपि रूजोभयम् ।
चापे तु धनलाभः स्यात् वृश्चिकस्य नवांशके ।।

वृश्चिकगत कर्कट की नवमांश में कालचक्रदशा हो तो धननाश, सिंह में राजा से वैमनश्यता, मिथुन में भूमिलाभ, वृष में अर्थलाभ, मेष में सर्पभय, मीन में जलभय, कुम्भ में व्यापार से लाभ, मकर में रोगभय और धनु में धनलाभ होता है ।

धनुराशिगत नवमांश राशियों के दशाफल –

मेषे तु धनलाभः स्यात् वृषे भूमिविवर्द्धनम् ।
मिथुने सर्वार्थसिद्धिः स्यात्कर्कटे सर्वसिद्धिकृत् ।।

सिंहे तु पूर्ववृद्धिः स्यात्कन्यायां कलहो भवेत्।
तौलिके चार्थलाभः स्यात् वृश्चिके रोगमाप्नुयात्।।
चापे तु सुतवृद्धिः स्याच्चापस्य नवमांशके।

धनुगत मेष राशि के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो धनलाभ, वृष में भूमि की प्राप्ति, मिथुन में सर्वसिद्धि, कर्कट में सभी कार्य सफल, सिंह में पूर्वागत धन की वृद्धि, कन्या में कलह, तुला में अर्थलाभ, वृश्चिक में रोगप्राप्ति एवं धनु में पुत्रवृद्धि होती है।

मकरगत नवमांश राशियों के दशाफल –

मकरे पुत्रलाभः स्यात्कुम्भे धान्यविवर्द्धनम् ।
मीने कल्याणमाप्नोति वृश्चिके विषबाधिता।।
तौलिके त्वर्थलाभश्च कन्यायां शत्रुवर्द्धनम्।
शशिभे श्रियमाप्नोति सिंहे तु मृगबाधिता।।
मिथुने वृक्षबाधा च मृगस्य नवभागके।

मकरगत मकर के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो पुत्रलाभ, कुम्भ में धान्यवृद्धि, मीन में कल्याणप्राप्ति, वृश्चिक में विषभय, तुला में अर्थलाभ, कन्या में शत्रुवृद्धि, कर्क में लक्ष्मी की प्राप्ति, सिंह में वन्य जन्तुओं का भय एवं मिथुन में वृक्षों से गिरने का भय होता है।

कुम्भगत नवमांश राशियों के दशाफल –

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषभे त्वक्षिरोगकृत्।
मीने तु दीर्घयात्रा स्यात्कुम्भे धनविवर्द्धनम्।।
मकरे सर्वसिद्धिः स्याच्चापे शत्रुविवर्द्धनम्।
मेषे सौख्यविनाशश्च वृषभे मरणं भवेत्।।
युग्मे कल्याणमाप्नोति कुम्भस्य नवमांशके।

कुम्भ राशि में वृष के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो धन – वृद्धि, मेष में नेत्र में रोग, मीन में लम्बी यात्रा, कुम्भ में धन – धान्य की वृद्धि, मकर में सभी कार्यों की सिद्धि, धन में शत्रुवृद्धि, मेष में सुख का विनाश, वृष में मरण एवं मिथुन में कल्याण की प्राप्ति होती है।

मीनगत नवमांश राशियों के दशाफल –

कर्कटे धनवृद्धिः स्यात् सिंहे तु राजपूजनम्।
कन्यायामर्थलाभस्तु तुलायां लाभमाप्नुयात्।।
वृश्चिके ज्वरमाप्नोति चापे शत्रुविवर्द्धनम्।
मृगे जायाविरोधश्च कुम्भे जलविरोधिता।।

मीने तु सर्वसौभाग्यं मीनस्य नवभागके।

मीन राशि में कर्कट के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो धनवृद्धि, सिंह में राजा से पूजन, कन्या में धनलाभ, तुला में अपने व्यवसाय से लाभ, वृश्चिक में ज्वरपीड़ा, धन में शत्रुवृद्धि, मकर में पत्नी से वैमनश्यता, कुम्भ में जल से भय और मीन में सभी प्रकार से सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

2.5 सारांशः-

दशा फल विचार एक ऐसी इकाई हैं, जिसके अध्ययन के पश्चात् आप ये समझ पायेंगे कि एक मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन में कब और क्या – 2 हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में सर्वप्रथम दशा ज्ञान से हम ग्रहों की प्रचलित दशा – अन्तर्दशा का ज्ञान करते है तथा उस दशा में होने वाली शुभाशुभ फल का विचार हम उपर्युक्त ज्ञान से भली – भॉति करनें में समर्थ हो सकेंगे।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

दशा – दशा का अर्थ है – स्थिति।

विंशोत्तरी महादशा – 120 वर्षों की दशा

केन्द्रेश – केन्द्र का स्वामी अर्थात् 1,4,7,10 स्थान का स्वामी

त्रिकोणेश – 5,9 स्थान का स्वामी

युग्म – जोड़ा

कालचक्र – समय चक्र

2.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.ख

2. घ

3. ग

4. ख

5. ग

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र – आचार्य पराशर
2. ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र
3. वृहज्जातक – वराहमिहिर
4. जातकपारिजात – वैद्यनाथ

5. सचित्र ज्योतिष शिक्षा –

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दशा किसे कहते है। विंशोत्तरी महादशा का साधन की विधि बतलाते हुए विस्तार से उसका उल्लेख कीजिये।

2. विंशोत्तरी महादशा के सूर्यादि ग्रहों में होने वाली शुभाशुभ फल का विवेचन कीजिये।

इकाई – 3 योगिनी दशा एवं अन्तर साधन

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 योगिनी दशा परिचय
योगिनी दशा की परिभाषा व स्वरूप
योगिनी दशा फल
3.4 बोध प्रश्न
3.5 सारांशः
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई पॉचवें खण्ड के तृतीय इकाई **'योगिनी दशा' नामक** शीर्षक से संबंधित है। दशा में योगिनी दशा एक महत्वपूर्ण इकाई है जो कुल 36 वर्षों का होता है। योगिनी दशा में मंगला से लेकर संकटा तक आठ प्रकार के योगों का उल्लेख है। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

योगिनी दशा अपने नाम के स्वरूप फल देते है। भगवान शिव के इसके उत्पत्तिकर्ता मानें जाते है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में उत्तर के प्रान्तों में इसका अधिक प्रचलन है।

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने विंशोत्तरी दशा फल तथा अष्टोत्तरी दशा फल का विस्तृत अध्ययन कर लिया हैं। यहॉ हम इस इकाई में योगिनी दशा साधन से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन विस्तार पूर्वक करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. योगिनी दशा को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
2. योगिनी दशा के महत्त्व को समझा सकेंगे।
3. योगिनी दशा का निरूपण करने में समर्थ होंगे।
4. योगिनी दशा का स्वरूप वर्णन करने में समर्थ होंगे।
5. योगिनी दशा से फलादेशादि को निरूपित करने में समर्थ होंगे।

3.3 योगिनी दशा परिचय

मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा संकटा च योगिन्योऽष्टौ प्रकीर्तिता: ।।
मंगलातोऽभवच्चन्द्र: पिंगलातो दिवाकर: ।
धन्यातो देवपूज्योऽभूद् भ्रामरीतोऽभवत् कुज: ।।
भद्रिकातो बुधो जातस्तथोल्कात: शनैश्चर: ।
सिद्धातो भार्गवी जात: संकटातस्तमोऽभवत् ।।
जन्मर्क्षं च त्रिभिर्युक्तं वसुभिर्भागमाहरेत् ।
एकादिशेषे विज्ञेया योगिन्यो मंगलादिका ।।
एकाद्येकोत्तरा ज्ञेया: क्रमादासां दशासमा: ।

नक्षत्रयातभोगाभ्यां भुक्तं भोग्यं च साधयेत् ।।

योगिनी दशाओं के बारे में ऐसा कहा जाता है कि स्वयं भगवान शिव ने इस दशा को कहा था। **मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटा** – ये **आठ योगिनी** दशा होती है। मंगला से चन्द्रमा, पिंगला से सूर्य, धान्या से गुरू, भ्रामरी से मंगल, भद्रिका से बुध, उल्का से शनि, सिद्धा से शुक्र और संकटा से राहु की उत्पत्ति है। जन्मनक्षत्र संख्या में 3 जोड़कर 8 का भाग देने पर एकादि शेष से मंगलादि योगिनी दशायें होती है। मंगलादि योगिनी दशावर्ष एकादि वर्ष जानना चाहिये अर्थात् 1,2,3,4,5,6,7,8 क्रम से वर्ष जानना चाहिये। जन्मकालिक भयात् भभोग के द्वारा दशा के भुक्त, भोग्य वर्षादि का साधन करना चाहिये।

उदाहरण –

माना कि किसी जातक का जन्म हस्त नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ हैं, अत: जन्मनक्षत्र से 13 + 3 = 16। इसमें आठ का भाग दिया तो शेष 0 बचा अर्थात् 8 हुआ, अत: आठवीं संकटा की दशा में जन्म हुआ, संकटा के वर्षमान 8 है। हस्त नक्षत्र भयात 16।5 भभोग 65।20 प्रथम चरण में जन्म है। पलात्मक भयात 965 को आठ से गुणनकर पलात्मक भभोग 3920 से भाग दिया, लब्ध भुक्त वर्षादि 1।11।19 को 8 में घटानें पर 6।0।11 भोग्य वर्षादि सिद्ध हुये।

अपि च –

योगिनी दशा विचार –

मंगला पिंगला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा संकटा च एतासां नामवत्फलम् ।।
एकं द्वौ गुणवेदबाणरससप्ताष्टांकसंख्या: क्रमात् ।
स्वीयस्वीयदशा विपाकसमये ज्ञेयं शुभं वाऽशुभम् ।।
षट्विंशैर्विभजेद्दिनीकृतमथैकद्वित्रिवेदेषुषट् ।
सप्ताष्टघ्नदशा भवेयुरिति ता एवं दशान्तर्दशा: ।।
चन्द्र: सूर्यो वाक्पतिर्भूमिपुत्रश्चान्द्रिर्मन्दो भार्गव: सैहिकेय: ।
एते नाथा मंगलादिप्रदिष्टा: सौम्या: सौम्यानामनिष्टा: खलानाम् ।।
अत्रप्रकारान्तरेण योगिनीनां स्वामिना: -
पिंगलातो भवेत्सूर्यो मंगलातो निशाकर: ।
भ्रामरीतो भवेत्क्ष्माजो धान्यतोऽभूद्विधो: सुत: ।।
भद्रिकातो गुरूरभूतिसद्धात: कविसम्भव: ।
उल्कातो भानुतनय: संकटास्त्वभूत्तम: ।।

अस्या एव दशान्ते च केतुरेवं विधीयते।
य: खेटोऽस्तगृहं तथारिभवनं नीचं प्रयातो यथा।।
वर्षेशाद्रिपुगो हि तस्य गदिता सर्वा दशा मध्यमा।
यश्च्चोस्थलमाश्रित: स्वभवने मूलत्रिकोणे खगो।।
मित्रागारमुपागतो निगदिता तस्याऽखिला सौख्यदा।

उपर्युक्त श्लोक में मंगलादि आठ योगिनीयों के नाम है, तथा प्रकारान्तर से उनके स्वामियों का नाम भी उल्लेखित

गया है। योगिनी दशा का न्यूनाधिक रूप से सारे भारतवर्ष में विशेषकर पर्वतीय क्षेत्रों में तो बहुत प्रचार है। इन दशाओं का प्रणेता भगवान शिव को माना जाता है। वृहत्पराशरहोराशास्त्र में आचार्य पराशर के द्वारा प्रतिपादित है कि मंगला से चन्द्रमा, पिंगला से सूर्य, धान्या से गुरू, भ्रामरी से मंगल, भद्रिका से बुध, उल्का से शनि, सिद्धा से शुक्र और संकटा से राहु की उत्पत्ति है, इसका आशय है कि इन योगिनियों के ये ग्रह प्रभावक माने जाते है। जब मंगला की दशा हो तो चन्द्र की दशा समझकर जन्म लग्न में चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार दशा को उत्तम, या अधम कल्याणकारी मानना चाहिये। इसी प्रकार अन्य योगिनियों के विषय में भी समझना चाहिये।

जन्म नक्षत्र में 3 जोड़कर 8 का भाग देने से शेष के अनुसार मंगला से योगिनी दशा होती है। भ्रामरी दशा के नीचे से प्रारम्भ कर अश्विनी आदि नक्षत्रों को क्रमश: लिखने से योगिनी दशा चक्र होता है। इसमें अभिजित् का ग्रहण नहीं है। इनके 1,2,3,4,5,6,7,8 क्रमश: दशा वर्ष होते है।

योगिनी दशा के विषय में माना जाता है कि अल्पायु लोगों के जीवन में इसकी एक आवृत्ति, मध्यायु लोगों को दो आवृत्ति तथा दीर्घायु लोगों को तीन आवृत्ति होती है। इसकी एक आवृत्ति 36 वर्षों की होती है।

दशा का भुक्त भोग्य काल ज्ञान पूर्व में प्रतिपादित किया गया है। एक और उदाहरण के लिये यहॉ समझाया जा रहा है

जन्म नक्षत्र रेवती से आर्द्रादि क्रमानुसार राहु की दशा वर्तमान है। सजातीय भयात 1250 व भभोग 3905 पल है।

भयात 1250 व भभो्र 3905 पल है। भयात 1250 × दशावर्ष 12 = 15000/ पलात्मक भभोग 3905 = 3 वर्ष 10 मास 2 दिन भुक्त है। इसे 12 वर्षों में से घटाया तो 8.01.28 वर्षादि राहु का अष्टोत्तरी दशा भोग्य है।

योगिनी दशा बोध चक्र

	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा
स्वामी	चन्द्रमा	सूर्य	गुरू	मंगल	बुध	शनि	शुक्र	राहु
वर्ष	1	2	3	4	5	6	7	8
नक्षत्र				अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा
	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	मघा	पू0फा0	उ0फा0	हस्त
	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल	पू0षा0	उ0षा0
	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पू0भा0	उ0भा0	रेवती		

चन्द्रस्पष्ट $11.20^0 .55$ तथा रेवती का अंशात्मक भोग्य $9^0 .05$ अर्थात् 545 कला भोग्य है। इसे दशा वर्ष 12 से गुणाकर 800 कला का पूर्ववत् भाग देने से $545 \times 12 = 6540 \div 800 =$ भोग्य दशा 8.02;03 वर्षादि है। यह दिनों का अन्तर क्यों पड़ा, इस विषय में उपपत्ति विशोंतरी महादशा के दौरान लिखा जा चुका है। पाठक गण वहाँ ध्यान दें। इसी पद्धति से योगिनी दशा का भुक्त भोग्य भी जाना जा सकता है।

योगिनी के महादशा व अन्तर्दशा का कोष्ठक –

मंगला दशा एक वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	**मंगला**	**पिंगला**	**धान्या**	**भ्रामरी**	**भद्रिका**	**उल्का**	**सिद्धा**	**संकटा**
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	0	0	1	1	1	2	2	2
दिन	10	20	0	10	20	0	10	20

पिंगला दशा दो वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	**पिंगला**	**धान्या**	**भ्रामरी**	**भद्रिका**	**उल्का**	**सिद्धा**	**संकटा**	**मंगला**
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	1	2	2	3	4	4	5	0

दिन	10	2	20	10	1	20	10	20

धान्या दशा तीन वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	3	4	5	6	7	8	1	2
दिन	0	0	0	0	0	0	0	0

भ्रामरी दशा चार वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या
वर्ष	0	0	0	0	0	0	0	0
मास	5	6	8	9	10	1	2	4
दिन	10	20	0	10	20	10	20	0

भद्रिका दशा पॉच वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी
वर्ष	0	0	0	1	0	0	0	0
मास	8	10	11	1	1	3	5	6
दिन	10	0	20	10	10	10	0	20

उल्का दशा छः वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	उल्का	सिद्धा	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका

वर्ष	1	1	1	0	0	0	0	0
मास	0	2	4	2	4	6	8	10
दिन	0	0	0	0	0	0	0	0

सिद्धा दशा सात वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	**सिद्धा**	**संकटा**	**मंगला**	**पिंगला**	**धान्या**	**भ्रामरी**	**भद्रिका**	**उल्का**
वर्ष	1	1	0	0	0	0	0	1
मास	4	6	2	4	7	9	11	2
दिन	10	20	10	20	0	10	20	0

संकटा दशा आठ वर्ष – अन्तर्दशा

योगिनी	**संकटा**	**मंगला**	**पिंगला**	**धान्या**	**भ्रामरी**	**भद्रिका**	**उल्का**	**सिद्धा**
वर्ष	1	0	0	0	0	1	1	1
मास	9	2	5	8	10	1	4	6
दिन	10	20	10	0	20	10	0	20

3.4 बोध प्रश्न –

1. योगिनी दशा कुल कितने वर्षों का होता है।

क. 30 वर्ष ख. 34 वर्ष ग. 36 वर्ष घ. 40 वर्ष

2. योगिनी दशा सर्वप्रथम किसके द्वारा कहा गया था।

क. विष्णु के द्वारा ख. ब्रह्मा के द्वारा ग. प्रजापति के द्वारा घ. शिव के द्वारा

3. निम्नलिखित में सिद्धा से उत्पत्ति है –

क. बुध की ख. मंगल की ग. शुक्र की घ. सूर्य की

4. योगिनी दशा क्रम में पिंगला के पश्चात् आता है।

क. भ्रामरी ख. मंगला ग. सिद्धा घ. धान्या

5. मंगला का अर्थ है –

क. मंगल करने वाला ख. विपत्ति लाने वाला ग. नाश करने वाला घ. सुख प्रदान करने वाला

दशा फल विचार के मौलिक नियम –

दशाफल विचार कि विषय में लघुपराशरी विद्याधरी में पाराशरीय नियमों का उल्लेख किया गया है। यहाँ केवल मौलिक व प्रारम्भिक सूत्र बताये जा रहे हैं, जो समस्त फल का आधार देते है –

शुभ फलप्रद दशा विचार –

1. पराशरीय मत से केन्द्रेशों व त्रिकोणेशों के सम्बन्ध पर आधारित सभी कारक ग्रहों की दशायें उत्कृष्ट फल देती है।
2. कारकों के सम्बन्धी ग्रहों की दशा में भी कारक ग्रहों का फल मिलता है। जैसे - कर्क लग्न का कारक मंगल यदि शनि से योग करता हो तो शनि की दशा में भी उत्कृष्ट फल मिलेंगे।
3. जो ग्रह जन्म समय में स्वोच्च, मूलत्रिकोण, स्वक्षेत्र, अधिमित्र क्षेत्र, मित्र क्षेत्र, शुभ ग्रह क्षेत्र में शुभ दृष्ट हो या षड्वर्गों के शुभ वर्गों में गया हो तो क्रमिक ह्रास से क्रमश: अच्छा ही फल देता है। उदाहरणार्थ यदि कोई ग्रह उच्च में है तो वह अत्यन्त शुभ फल करेगा लेकिन पापदृष्टि अशुभ भाव स्थिति आदि से उसकी शुभता में क्रमिक ह्रास होगा। इसके विपरीत कोई ग्रह साधारण सम ग्रह की राशि में है, लेकिन शुभ ग्रहों से दृष्ट, शुभ भावस्थिति है तो वह अत्यन्त शुभ फल देगा ही, इसमें क्या सन्देह है। इस प्रकार उहापोह पूर्वक महादशा का

फल स्थिर किया जाता है। निसर्ग शुभ ग्रह प्राय: शुभ फलदायक होते है।

अशुभ दशा निर्णय -

1. उक्त तथ्यों के विपरीत होने पर दशा का फल अशुभ होगा। नीचगत, अस्तंगत, शत्रुक्षेत्री , अशुभ वर्गों में गया हुआ, पापदृष्ट तथा अशुभ भाव स्थित ग्रह की दशा अशुभ फल देती है।
2. पापी ग्रह वक्री भी हो तो उसकी दशा महान कष्टदायक होती है।
3. पाराशर मत से मारक ग्रहों की दशा कष्टप्रद होती है। तथा निसर्ग पापग्रह की दशा भी अशुभ फल ही देती है।

कुछ विशेष नियम –

1. दशा प्रवेश के समय यदि चन्द्रमा बलवान हो तथ अपनी जन्म राशि से शुभ गोचर भावों में हो तो महादशा का फल काफी बुरा होते हुये भी कुछ कम हो जाता है।

2. इसके विपरीत दशा प्रवेश कालीन चन्द्रमा की अशुभता व निर्बलता शुभ दशा के शुभ फल में कमी करेगी।
3. जो दशापति बलवान हों, वे अपनी दशा में अपना पूरा फल देते हैं। तथा बलहीन होकर कुछ भी फल देने में समर्थ नहीं होते है। मध्यम बली ग्रह का मध्य फल समझना चाहिये। उदाहरणार्थ – लग्नेश दशा नियमत: शुभ होनी चाहिये, लेकिन वह नीच अस्तंगत, अशुभवर्गी आदि होकर पाप पीड़ित हो तो कुछ भी विशेष शुभ फल अपनी दशा में नहीं दे सकेगा।
4. सामान्यत: राहुयुक्त ग्रह की दशा कष्टप्रद होती है तथा अन्त में विशेष शोक देती है। इसके विपरीत यदि राहु किसी योगकारक ग्रह के साथ स्थित हो अथवा उसी ग्रह की राशि में राहु हो तो अरिष्ट नहीं होता है।
5. अपने उच्च से आगे की राशियों में स्थित ग्रह सामान्यत: नीच राशि की ओर बढ़ने के कारण शुभ फल में क्रमिक कमी लाता है, लेकिन यदि शुभ नवमांश में हो तो वह अच्छे फल भी देता है।
6. इसी प्रकार उच्च राशि की ओर बढ़ता ग्रह सामान्यत: अच्छा फल देता है। लेकिन नवमांश लग्न में शत्रुक्षेत्री या नीच आदि होने पर उसकी शुभता कम हो जायेगी।
7. शुभ ग्रहों के मध्य में विद्यमान पाप ग्रह अशुभ फल नहीं देता तथा अशुभ ग्रहों के मध्य में स्थित शुभ ग्रह शुभ फल नहीं देता।
8. दशा प्रवेश के समय यदि दशेश या अन्र्तदशेश उच्च, त्रिकोण, स्वराशि में हो तो शुभ होता है। विपरीत स्थिति में अशुभ आदि होता है।
9. सभी पाप ग्रह दशा के शुरू में अपनी उच्चादि राशि के अनुसार उसके बाद में साथी या द्रष्टा गहों की प्रकृति के अनुसार तथा लगभग दशा काल के मध्य में स्थान या भावानुसार फल देते हैं एवं अन्त में प्राय: सभी पाप दशायें उपद्रव करती है।
10. प्राय: ग्रह जिस द्रेष्काण में स्थित हो, अपने दशा काल के भी उसी तृतीयांश में अपना फल विशेषतया देता है।

दशा फल में राहु केतु की विशेषता -

1. त्रिकोणस्थ राहु – केतु यदि 2,7 भावेशों के साथ हों तो मारक होते है।
2. त्रिकोणेशों से युत या दृष्ट यदि 2,7 भावों में हो तो आयु व धन वर्धक होते है।
3. द्विस्वभाव राशिगत राहु – केतु यदि त्रिकोणेशों से युक्त हो या राहु – केतु की अधिष्ठित राशियों के स्वामी त्रिकोणेशों से युक्त हों तो वे सदैव राज्य व धन देते है।

4. चर या स्थिर राशि गत राहु – केतु केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों ओर कारक ग्रहों से युक्त हो तो स्वदशा में विशेष समृद्धि देते है।
5. राहु – केतु अशुभ स्थानों में स्थित होकर भी कारक ग्रहों से युक्त हो तो शुभ फल एवं शुभ भावों में स्थित होकर भी मारक ग्रहों से युक्त हो तो मारक फल ही देंगे।

अन्तर्दशा फल विचार –

उक्त प्रकार से ग्रह की सम्पूर्ण महादशा , अन्तर्दशा, योगिनी दशा, सूक्ष्म दशा का आधारभूत फल जानकर उसकी अन्तर्दशाओं का फल निर्णय करना चाहिये।

1. महादशेश जिस स्थान में स्थित हो, उस स्थान को लग्न मानें तथा जो ग्रह उससे 3,10,11 उपचय भावों में 4,10 केन्द्रों में या 5,9 त्रिकोणों में स्थित हो तो वह अपनी अर्न्तदशा में शुभ फल देता है।
2. इसके विपरीत महादशेश से 1,7,6,8,12 भावों में स्थित हो तो अपनी दशा में शुभ फल नहीं देता, बल्कि महादशा फल नियमों के अनुसार उस अन्तर्दशेश की भी शुभाशुभता का निश्चय कर अधिक शुभ या अधिक अशुभ भाग वाले फल का निर्णय करना चाहिये।
3. दशानाथ से द्वितीय भावगत अन्तर्दशेश मिला – जुला फल देता है।
4. यदि कारक महादशा में मारक अन्तर्दशा या मारक दशा में कारक अर्न्तदशा हो तो मिश्रित फल होता है।
5. परस्पर मित्र ग्रहों की दशा – अन्तर्दशा शुभ व शत्रु ग्रहों की अशुभ फल देती है।
6. निसर्ग पाप ग्रहों की दशा, अशुभ ग्रहों की या 6,8,12 भावेशों की दशा अशभ फल देती है ।

3.5 सारांश –

ज्योतिष शास्त्र में दशाओं का ज्ञान परमावश्यक है, दशा क्रम में विंशोत्तरी के पश्चात् **योगिनी** का नाम आता है। योगिनी दशा कुल 36 वर्ष का होता है। ये दशायें स्वनामानुसार अपना – अपना फल देते है। वस्तुत: प्रचलन के दृष्टिकोण से सर्वाधिक विंशोत्तरी एवं अष्टोत्तरी का ही विचार किया जाता है। परन्तु भारतवर्ष के कई प्रान्तों में योगिनी दशा का भी प्रचलन है। सर्वाधिक दशाओं का उल्लेख वृहत्पराशरहोराशास्त्र में आचार्य पराशर जी ने किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आशा है कि पाठक गण योगिनी दशा का ज्ञान सुगमता पूर्वक प्राप्त कर सकेंगे।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

विंशोत्तरी – 120 वर्षों की दशा

अष्टोत्तरी – 108 वर्षों की दशा

योगिनी - 36 वर्षों की दशा

परस्पर – एक दूसरे का

3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

1. ग

2. घ

3. ग

4. घ

5. क

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहत्पराशरहोराशास्त्र - आचार्य पराशर

2. जातकपारिजात – आचार्य वैद्यनाथ

3. वृहज्जयोतिसार – चौखम्भा प्रकाशन

4. ज्योतिष सर्वस्व – सुरेश चन्द्र मिश्र

5. वृहज्जातक – आचार्य वराहमिहिर

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. योगिनी दशा का उल्लेख करते हुये उसके फलादेश कर्त्तव्यादि का विस्तारपूर्वक उल्लेख करें।

2. ज्योतिषोक्त योगिनी दशा का क्या महत्व है तथा इसका सर्वाधिक प्रचलन कहॉ है।